लक्ष्मीनारायण संहिता अंतर्गत

पुरुषोत्तम मास माहात्म्य

(अधिक मास माहात्म्य)

संक्षिप्त



प्रकाशकः सहज आरोग्यम एवं मानव अभ्युदय संस्थान - वड़ोदरा

लक्ष्मीनारायण संहिता अंतर्गत

पुरुषोत्तम मास माहात्म्य

(अधिक मास माहात्म्य)

संक्षिप्त

अनुवादक

डॉ. हर्षद सतासीया ‘सहज’ वेदांताचार्य (Ph.D.)

प्रकाशक

सहज आरोग्यम एवं मानव अभ्युदय संस्थान - वड़ोदरा

पुरुषोत्तम मास माहात्म्य

अनुवादक

डॉ. हर्षद सतासीया 'सहज' (वेदांताचार्य, Ph.D.)

प्रकाशन तिथि

विक्रम संवत २०८३, अधिक मास

शुभेच्छक एवं सहायक

- श्रीहरि शरणागति मंडल
- श्रीपरमधाम स्मृति मंदिर तथा गादी स्थान जुनागढ

सार्वजनिक सूचना

यह असाधारण और अमूल्य जानकारी जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से और वर्तमान डिजिटल युग को ध्यान में रखते हुए, इस पुस्तक को ई-बुक के रूप में प्रकाशित किया गया है। जिससे इस पुस्तक को किसी स्मार्टफोन, कंप्यूटर या अन्य डिजिटल गैजेट में आसानी से भेजा और पढ़ा जा सके।

इसके अतिरिक्त, इस पुस्तक में आधुनिक हिंदी व्याकरण का प्रयोग किया गया है, जो प्राचीन व्याकरण से थोड़ा भिन्न है लेकिन वर्तमान समय में समझने में सरल है। आशा है कि धर्म प्रेमी जनता इस ज्ञान का उपयोग कर आत्म-कल्याण के साथ साथ अपनी मनोकामनाएं पूर्ण करेगी।

समर्पण



जिनकी प्रेरणा और इच्छा से यह कार्य सिद्ध हो सका ऐसे विद्वत वरेण्य, महा महोपाध्याय,
लक्ष्मी नारायण संहिता के संपादक, पंडित प्रवर श्रीकृष्णवल्लभाचार्यजी के
कर कमलों में सादर समर्पित

पुण्यस्मृति



धीरुभाई सवजीभाई सतासीया

ग्राम : गोविंदपुर
तहसील : धारी
जिला : अमरेली (गुजरात)



बाबुभाई भीमजीभाई देवाणी

ग्राम : मोटी कुंकावाव
तहसील : बगसरा
जिला : अमरेली (गुजरात)

सौजन्य



अ.नि. वसंतलाल विजुभाई मोदी अ.नि. नलिनीबेन वसंतलाल मोदी

तथा मोदी परिवार



अ.नि. जयंतभाई जेकीशनदास सुखारामवाला अ.नि. कलावतीबेन जयंतभाई सुखारामवाला।

तथा सुखारामवाला परिवार

अनुवादक का अभिवादन



पुरुषोत्तम नारायण, जो करुणा के सागर हैं, उनकी सभी लीलाएँ जीवों पर बिना किसी स्वार्थ के कृपा करने वाली होती हैं। जीवों को अपने ही कर्मों के कारण अत्यंत दुखी और त्रिविध तापो से पीड़ित देखकर परमेश्वर का हृदय द्रवित हो उठता है। कलियुग में अधिकांश जीवों में सत्कर्म करने की क्षमता नहीं होती; साथ ही रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता के कारण जीव बहुत ही कम समय में भक्ति, व्रत या जप-तप से ऊब जाता है। ऐसी स्थिति में परमात्मा, उनका धाम या शाश्वत पुण्य प्राप्त करना अत्यंत दुर्लभ हो जाता है।

फिर भी, पुरुषोत्तम नारायण ने कृपा करके पुरुषोत्तम मास (अधिकमास) को अपने समान ही ऐश्वर्य प्रदान किया है। इस मास में किए गए व्रत, जप, तप और पूजन जैसे सत्कर्म सकाम भक्त को शाश्वत पुण्य प्रदान कर शाश्वत काल तक इच्छित भोग और लोक प्राप्त कराते हैं, जबकि निष्काम भक्त को पुनर्जन्म से मुक्ति देकर परमात्मा का सान्निध्य और नित्य सुख प्रदान करते हैं। जो मनुष्य एक दिन, दो दिन, सप्ताह, पक्ष या पूरे महीने भर इस पुरुषोत्तम मास का व्रत करते हैं, वे पुरुषोत्तम नारायण की कृपा से अपनी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं।

श्रीश्वेतायन व्यास द्वारा रचित श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान के अध्याय २९३ से ३२२ तक पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की महिमा का वर्णन किया गया है। इन अध्यायों में पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के प्रत्येक दिन के व्रत, पूजन और उनके पुण्य फलों का निरूपण है। जब तक किसी कार्य की वास्तविक महिमा समझ में न आए, तब तक उसे पूरी निष्ठा से नहीं किया जा सकता। इसी बात को ध्यान में रखते हुए लक्ष्मीनारायण संहिता के अंतर्गत इन अध्यायों का

अनुवाद करना अत्यंत आवश्यक लगा। इन अध्यायों को पढ़ते समय मुझे ऐसा महसूस हुआ मानो पुरुषोत्तम नारायण ने हर किसी के हाथ में इस पुरुषोत्तम मास रूपी 'चिंतामणि' रख दि है। लेकिन अज्ञानता के कारण मनुष्य इसका लाभ नहीं उठा पाता।

लक्ष्मीनारायण संहिता में पुरुषोत्तम मास के प्रत्येक दिन की कथा, व्रत विधि और फल का वर्णन करके पुरुषोत्तम नारायण ने जीव सृष्टि पर एक अविस्मरणीय उपकार किया है। इस संहिता के माध्यम से कम आयु, कम बुद्धि और कम बल वाला साधारण मनुष्य भी आसानी से इस व्रत का पालन कर इच्छित सुख और शाश्वत मुक्ति प्राप्त कर सकेगा। जो फल बड़े-बड़े यज्ञों, अनुष्ठानों और कठिन तपस्या से भी प्राप्त नहीं होता, वह फल पुरुषोत्तम मास के मात्र एक दिन के व्रत से मिल जाता है। इतना सरल मार्ग न कभी पहले था और न कभी होगा।

अनादि श्रीकृष्णनारायण महाप्रभु की परावाणी स्वरूप 'श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता' का अनुवाद करना मुझ जैसे सामान्य ज्ञान वाले व्यक्ति के बस की बात नहीं है। यह संहिता बड़े-बड़े विद्वानों के अभिमान को चूर-चूर कर देती है। यदि यह कार्य पूर्ण हो पाया है, तो इसमें साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण की कृपा ही एकमात्र कारण है। मैंने अपनी मति के अनुसार इस अनुवाद का प्रयास किया है, यदि इसमें कोई त्रुटि रह गई हो, तो प्रभु क्षमा करें।

जीव प्राणी मात्र के लिए परम हितकारी इस पुस्तक को हर मनुष्य तक पहुंचाने के लिए 'सहज आरोग्यम एवं मानव अभ्युदय संस्थान वड़ोदरा' ने इस पुस्तक को बहुत अच्छी डिजाइन के साथ तैयार किया और स्मार्ट फोन के इस युग में 'इ बुक' के रूप में ही इसे प्रस्तुत करने का निर्णय किया जो समयोचित लगता है। यह संस्थान ऐसे आध्यात्मिक एवं आरोग्य संबंधित अनेक समाज उपयोगी कार्यों को कर रहा है और भविष्य में भी करता रहे ऐसी पुरुषोत्तम नारायण के चरणों में प्रार्थना है।

इस पवित्र कार्य में अ.नि.वसंतभाई मोदी के परिवार ने आर्थिक सहयोग दिया है, यह संस्थान उस परिवार का हार्दिक आभार व्यक्तकरता है। टाइपिंग, प्रूफ

रीडिंग और डिजाइनिंग आदि अति आवश्यक कार्यों में अपना अमूल्य समय देकर सेवा करने वाले पारुलबेन सतासीया एवं इस संस्थान के ट्रस्टी पिनल मिस्त्री और डॉ. प्रिया धामेलिया भी धन्यवाद के पात्र है। और इस कार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े सभी लोगों का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूं, लक्ष्मीनारायण संहिता के अनुसार, उन्होंने अपनी मुक्ति निश्चित ही सिद्ध कर ली है, इसमें कोई संशय नहीं है।

सनातन धर्म के हर संप्रदाय में पुरुषोत्तम मास का अद्वितीय स्थान है। केवल इस मास की महिमा का प्रचार-प्रसार करने मात्र से भी शाश्वत पुण्य प्राप्त किया जा सकता है। अतः सभी सज्जनों से विनम्र निवेदन है कि इस लक्ष्मीनारायण संहिता के अंतर्गत वर्णित पुरुषोत्तम मास माहात्म्य का अधिक से अधिक प्रचार करें, ताकि संपूर्ण मानव जाति इस अमूल्य अवसर का लाभ उठाकर इच्छित सुख प्राप्त कर सके। आधुनिक समय में सोशल मीडिया के माध्यम से हम साहित्य को अनेक लोगों तक पहुँचा सकते हैं। इन साधनों का उपयोग कर आइए हम सहजता से मोक्ष के भागी बनें।

– डॉ. हर्षद सतासीया 'सहज' वेदांताचार्य (Ph.D.)

अनुक्रमणिका

सहज आरोग्यम नामक यूट्यूब चैनल पर अवश्य श्रवण करने योग्य सनातन के स्तोत्र एवं मूल मात्र कथाओं का प्लेलिस्ट

इन वीडियो को देखने के लिए इस पर क्लिक करें

- अधिक मास माहात्म्य/पुरुषोत्तम मास माहात्म्य
- सनातन के विविध स्तोत्र
- ભાગવત દશમ સ્કંધ (મૂળ માત્ર, ગુજરાતી)
- રાસ પંચાધ્યાયી
- दुर्गा स्तुति
- शिव स्तुति
- लक्ष्मी स्तुति
- લક્ષ્મીનારાયણ સંહિતા ના સ્તોત્ર

अनुक्रमणिका

जो अध्याय पढ़ना हो उस पर क्लिक करें

अध्याय-१

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

लक्ष्मी ने कहा - हे देव ! आपने बारह महीनों और उनमें आने वाले व्रत के दिनों के बारे में बताया, अब मैं तेरहवें "अधिक मास" की संपूर्ण विधि सुनने के लिए उत्सुक हूं।

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी ! सुनो, दो अमावस्या के बीच जो महीना पूर्ण होता है वह "चान्द्र मास" कहलाता है और दो संक्रांति के मध्य जो मास पूर्ण होता है उसे 'सौर मास' कहा जाता है, जिस चान्द्र मास में सूर्य संक्रांति नहीं होती, अर्थात सूर्य जिस महीने में एक ही राशि का उपभोग करता हैं परंतु दूसरी राशि पर संक्रमण नहीं करता, उस सूर्य-संक्रांति रहित मास को "अधिक मास" कहा जाता है।

चान्द्र मास में २९ दिन, २६ घटिका और ५० पल का उपभोग होता है, जबकि सौर मास में ३० दिन, २६ घटिका, १९ पल, ३१ विपल और ५२ क्षण का उपभोग होता है। इन दोनों मासों में चान्द्र मास की जो कलाएं शेष रह जाती हैं, उनका जब समूह बनता है, तब यह तेरहवां चान्द्र मास "अधिक मास" बनता है। अर्थात ३२ सौर मास और १६ दिन बीतने पर तथा ३३ चान्द्र मास और १६ दिन बीतने पर यह अधिक मास आता है। सभी महीनों का अवशेष (मल रूप) होने के कारण इसे 'मल मास' भी कहा जाता है। परंतु पुरुषोत्तम के संयोग, उनके आश्रय और इस मास के देवता पुरुषोत्तम होने के कारण इसे 'पुरुषोत्तम मास' कहा जाता है। स्वयं अक्षराधिपति श्रीहरि ने इस अनाथ मलमास को देख कर कृपावश उसे शरण में लिया, जिससे वह अक्षर की समानता को प्राप्त हुआ। पहले बारह महीने बार-बार गर्जना करते थे कि हमारे जैसा तारने वाला तीनों लोकों में कोई नहीं है, परंतु जब श्रीहरि स्वयं मल मास के अधिष्ठाता देव बने, तब उन बारह महीनों का गर्व चूर हो गया।

[1]अन्य मासों में किए गए पुण्य, जप, होम और दान आदि की तुलना में इस

1. अन्यमासकृतात्पुण्याज्जपाद्धोमात्प्रदानकात् । अनन्तगुणकं त्वत्र कृतं भवति सर्वथा ॥ २४ ॥

अनुक्रमणिका

अधिक मास में किए गए वे कर्म सर्वथा अनंत गुना पुण्य फल देने वाले होते हैं। कुरुक्षेत्र में ग्रहण के समय स्नान करने से जो फल मिलता है, गया में पिंडदान से पितरों को जो तृप्ति मिलती है उससे जो फल मिलता है, जगन्नाथ पुरी में रथयात्रा का जो महान फल मिलता है, अयोध्या-दर्शन और सरयू स्नान का जो फल मिलता है, द्वारिका में गोमती-सागर-संगम स्नान का जो फल मिलता है, बद्रीक्षेत्र में स्वर् गंगा में स्नान का जो फल मिलता है, रामेश्वरम में समुद्र स्नान का जो फल मिलता है, गिरनार में सोनरखी स्नान का जो फल मिलता है, प्रभास क्षेत्र में स्नान का जो फल मिलता है, कुंकुमवापी के अश्वपट्ट सरोवर में स्नान का जो फल मिलता है, नर्मदा के ओंकारेश्वर तीर्थ में स्नान का जो फल मिलता है, पुष्कर में स्नान का जो फल मिलता है, गंडकी में स्नान का जो फल मिलता है, कपिलाश्रम में गंगा सागर संगम पर स्नान का जो फल मिलता है, कुंभ लग्न में कृष्णा नदी के जल में स्नान का जो फल मिलता है, तथा गोदावरी, सिंधु, कावेरी आदि नदियों में और सोमवती अमावस्या जैसे पर्वों पर स्नान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, वह सब पुण्य फल अधिक मास में प्रतिपदा (पड़वा) के दिन मात्र स्नान करने से प्राप्त हो जाता है। ब्राह्ममुहूर्त में पुरुषोत्तम नारायण का ध्यान कर नदी, तालाब, सरोवर, झरने, कुएं, बावड़ी या घर में (सूर्योदय से पूर्व) स्नान करना शाश्वत फलदायी है। अधिक मास में प्रतिपदा, पूर्णिमा, अमावस्या और एकादशी के दिन (सूर्योदय से पूर्व) स्नान करने से जो अखंड पुण्य होता है, वैसा अन्य किसी में नहीं होता। इन तिथियों में स्नान मात्र से पापों का नाश कर मनुष्य कोटि कल्पों तक स्वर्ग प्राप्त करता है। साथ ही इन दिनों में श्रीहरि की पूजा करने और नैवेद्य अर्पण करने से चार प्रकार की मुक्ति और शाश्वत वैकुंठ लोक की प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं है – ऐसा स्वयं श्रीकृष्ण कहते है।

कुरुक्षेत्र में एक लाख गाय, दस हजार भैंस और सौ हाथियों के दान से तथा कौरव स्थल में एक लाख घोड़ों के दान से जो पुण्य फल मिलता है, वह फल अधिक मास की प्रतिपदा को स्नान मात्र से मिलता है। अधिक मास का व्रत करने वाले को स्नान कर स्वर्ण या अन्य धातु की प्रतिमा में पुरुषोत्तम नारायण का आवाहन करना

चाहिए, फिर धीरे-धीरे पंचामृत से स्नान कराएं। उसके बाद शुद्ध जल से स्नान कराकर, तेल मर्दन कर पुनः स्नान कराएं, फिर वस्त्र, आभूषण अर्पण करें। धूप, दीप, नैवेद्य, छत्र, चंवर आदि अर्पित कर आरती करें और प्रदक्षिणा, नमस्कार, दंडवत और स्तुति कर पुष्पांजलि दें और क्षमा याचना करें तथा श्रीहरि पुरुषोत्तम नारायण से अधिक मास के व्रत की पूर्णता के लिए बार-बार प्रार्थना करें कि - हे प्रभु! इस अधिक मास में मैं 'दिन में एक बार भोजन, शाम को संध्या के बाद भोजन करना यानी 'नक्त भोजन', उपवास या फलाहार करूंगा। हे प्रभु! मेरा वह व्रत आपकी कृपा से निर्विघ्न रूप से पूर्ण हो। हे पुरुषोत्तम! मैं इस मास में प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व तीर्थ में, नदी में, कुएं में या घर में स्नान करूंगा और अपनी शक्ति के अनुसार पूजा दान तथा आपका भजन करूंगा मेरे द्वारा यह व्रत निर्विघ्न रूप से संपन्न हो, ऐसी कृपा करें। हे महाराज! मेरे देह (शरीर) से आलस्य का नाश करें। अपने प्रभाव से मेरे मानसिक विकारों (मल) का प्रक्षालन (शुद्धि) करें। हे परमेश्वर! मेरे पापों को जला दें और मुझे आत्म-मुक्ति प्रदान करें। हे स्वामिन्! हे कृष्णनारायण! हे लक्ष्मीनाथ! हे प्रभापते! हे पार्वती और माणिकी के स्वामी! मेरे घर में संपत्ति (समृद्धि) प्रदान करने वाले बनें। ऐसी प्रार्थना कर भगवान को शयन कराएं या विसर्जन करें। मध्याह्न और सायंकाल में भी पूजा-आरती करें, भगवान को झूले में झुलाएं, जल-क्रीड़ा कराएं और उद्यान में विराजमान करें। उनके सामने कीर्तन और नृत्य करें। साथ ही बालकों, साधुओं और ब्राह्मणों को भोजन कराएं, वस्त्र दान दें, गायों को घास दें और भगवान की कथा सुने या लक्ष्मी-नारायण संहिता का पाठ करें। कृष्ण, हरिकृष्ण, कृष्णनारायण आदि नामों का जप करें। गुरु की सेवा करें। अनाथ और आश्रित स्त्रियों को भोजन और दान दें, तभी पुरुषोत्तम मास फलीभूत होता है। भगवान के मंदिर में नित्य कच्चा अन्न, साग-भाजी, नमक, शक्कर, फल, घी, तेल, मसाले, सूखे मेवे इत्यादि का दान करें, गायों के लिए घास-चारा, पक्षिओं के लिए दाना, चींटियों के लिए आटा, कुत्तों के लिए रोटियां और जलचरों (मछलियों आदि) को आहार दें तथा पीपल, बरगद, बिल्व, तुलसी इत्यादि वृक्षों को जल से

अनुक्रमणिका

सींचे। अधिक मास का व्रत करने वाले को पृथ्वी (जमीन) पर सोना चाहिए, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा साधु या साध्वी की तरह व्रतधारी रहकर परलोक के लिए पुण्य कर्म करना चाहिए और मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।

घर में जितने भी सदस्य या परिवार जन रहते हों उन सभी को भी दिन में एक बार भोजन करके, शाम की संध्या के बाद भोजन करके, फलाहार करके, दूध पर रहकर, दही पर रहकर, केवल शाक (सब्जी) का भक्षण करके, एक ही प्रकार का अन्न खाकर, भिक्षा मांगकर या शाम को भगवान की पूजा करने के बाद अन्न ग्रहण करके - इत्यादि प्रकार से पुरुषोत्तम मास का व्रत करना चाहिए।

इस व्रत में सदा नर-नारी को श्रीहरि के चरणामृत का पान करना चाहिए। पलंग पर नहीं सोना चाहिए, काम-क्रोध आदि का त्याग करना चाहिए, शरीर के बाल नहीं कटवाने चाहिए, मैथुन का त्याग करना चाहिए और जिह्वा (इंद्रिय) का तप करना चाहिए। स्त्रियों को पुरुषों का और पुरुषों को स्त्रियों का सर्वथा स्पर्श नहीं करना चाहिए। घर से बाहर नहीं जाना चाहिए अथवा तीर्थयात्रा पर जाना चाहिए। बगीचे में, खेत में, वन में, देव मंदिर में, साधु-साध्वियों के बीच, तीर्थ के तट पर अथवा पर्ण कुटी (झोपड़ी) में अधिक मास के दौरान निवास करना उत्तम माना गया है। इस मास में भगवान की नवधा भक्ति करनी चाहिए।

[1] 'म' अर्थात मुक्ति, 'ल' अर्थात लाता है इसलिए इसे मल मास कहते हैं। अथवा 'मा' अर्थात माया और 'ल' अर्थात लीन होती है, जिस मास के द्वारा माया लीन हो जाए वह मलमास है। 'अधि' (मलमास) में किए गए पुण्य से प्राप्त होने वाला 'क' (सुख) अधिक होता है, इसलिए इसे 'अधिक मास' कहते हैं। इस मास में श्रीहरि अपने विभिन्न धामों से अपनी शक्तियों के साथ पृथ्वी पर पधारते हैं और आकाश मार्ग से देखते हैं कि कौन सत्कर्म कर रहा है? उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर वे लक्ष्मी जी को आदेश देते हैं कि -

[2] हे लक्ष्मी! आप मेरे आग्रह से पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वालों के घरों को

1. मं मुक्तिलाति गृह्णाति मलोऽयं मास उच्यते । मा माया लीयते येन मलोऽयं मास ईरितः ॥ १०६ ॥

2. पुरुषोत्तममासस्य व्रतिनां भवनानि वै । सर्वस्मृद्धिप्रपूर्णानि कुरु लक्ष्मि ! ममाऽऽग्रहात् ॥ ११७ ॥ मलमासाऽवमन्तॄणां गृहे वासो च मा तव । यत्र नास्ति ममाऽऽवासस्तत्र तेऽपि च माऽस्तु सः ॥ ११८ ॥

सभी समृद्धियों से परिपूर्ण करें। जो अधिक मास की अवहेलना (निंदा) करता है, उसके घर में आपका वास न हो। जहां मेरा वास नहीं है, वहां आपका वास भी न हो। ऐसा आदेश देकर, भक्तों द्वारा की गई पूजा को स्वीकार कर श्रीहरि अपने धाम के प्रति प्रस्थान करते हैं।

इस प्रकार, अधिक मास में नित्य श्रीहरि अपनी पत्नियों के साथ धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, पुष्प, दंडवत, प्रदक्षिणा, स्तुति इत्यादि (षोडशोपचार) पूजा को स्वीकार करने के लिए पधारते हैं और उस समस्त पूजा को ग्रहण कर, विसर्जित होकर पुनः अपने धाम लौट जाते हैं। इसलिए अधिक मास में नित्य श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, प्रतिपदा तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक प्रथम (२९३) अध्याय समाप्त ।

अनुक्रमणिका

अध्याय-२

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा – हे लक्ष्मी! अधिक मास की 'पुरुषोत्तम' संज्ञा कैसे हुई? वह मैं कहता हूं। एक समय पूर्णिमा के दिन बद्रिकाश्रम में भगवान श्रीनरनारायण के दर्शन करने के लिए वेद-वेदांगों के ज्ञाता और दिव्य विज्ञान वाले पत्नीव्रत, लोमश, मार्कण्डेय, नारद, व्यास, पैल, जाबालि, याज्ञवल्क्य, पिप्पलायन, वामदेव, भृगु, अंगीरा, कपिल, आरुणि, कात्यायन, कौशिक, बोधायन, जमदग्नि, कणाद, भार्गव, भरद्वाज, शतानंद, शौनक, जैमिनी, च्यवन, वशिष्ठ, मरीचि, पुलह और पुलस्त्य आदि हजारों ऋषि अपने शिष्यों के साथ पधारे। उन्होंने भगवान नारायण को दंडवत प्रणाम किया और सत्कार पाकर भगवान श्रीहरि के सम्मुख बैठ गए। शांत, सौम्य, प्रसन्न मुख वाले, तपोमूर्ति, अनंत कल्याणकारी गुणों के सागर और आनंद के धाम परब्रह्म श्रीनारायण के दर्शन वे इस प्रकार कर रहे थे मानो समाधि अवस्था में हों।

उसी समय देवता, पितर, तीर्थ, क्षेत्र, वन, सागर, सिद्ध और योगी भी श्रीहरि के दर्शन की इच्छा से वहां आए और प्रणाम कर परम शांति प्राप्त कर श्रीहरि के सामने बैठ गए। साथ ही, उस समय युग, संधि, संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, कला, मुहूर्त, घड़ि और प्रहर आदि भी अपने-अपने परिवार और स्वामी के साथ आए। उनमें से कोई भी स्वामी रहित नहीं था। अपने-अपने स्वामी के महात्म्य से सभी सौभाग्यशाली थे और अपने अधिकार के अनुसार फल देने वाले थे। तत्पश्चात स्वामी रहित, कृष्ण वर्ण (काले रंग) वाला, मलिन, अस्पृश्य, सभी के द्वारा तिरस्कृत और अरुचिकर मल मास आया। उसे लोग कहने लगे कि "सूर्य की संक्रांति रहित यह मल मास सभी कार्यों के लिए अयोग्य, शुभ कर्मों में निंदित, भाग्यहीन और लाभ रहित है। यह यहां कहां से आया? इसे दूर करो! दक्ष प्रजापति

ने चंद्रमा को २७ कन्याएं दीं, उनके अवशेष से यह उत्पन्न हुआ है, इसलिए यह उच्छिष्ट(जूठा/गंदा) रूप वाला है, इसे हटाओ।" ऐसे वचन सुनकर वह मल मास चिंताग्रस्त मन से मेरे दर्शन करता हुआ किसी अछूत की भांति दूर खड़ा रहा। वहां आए हुए सभी लोग मेरे दर्शन कर समाधिस्थ हो गए। उस समय मेरे हाथ का इशारा पाकर आश्वस्त हुआ मल मास वैकुंठ पहुंचा। वहां आकर भग्न हृदय से रोते हुए वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और दंडवत कर हाथ जोड़कर मुझ से कहने लगा – "हे नाथ! हे कृपा सिंधु! हे दीन वत्सल ! मेरी रक्षा करें।" ऐसा कहकर अश्रु पूरित नेत्रों के साथ वह नीचे मुख करके खड़ा रहा। उसे देखकर श्रीहरि ने कहा – "हे वत्स! तू शोक मत कर, मैं तेरा उद्धार करूंगा। मेरी शरण में आया हुआ कोई भी दु:खी नहीं रहता । तू अपना दु:ख बता।" ऐसा आश्वासन पाकर मल मास बोला – "हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, फिर भी मैं अपना मृत्यु समान दु:ख कहता हूं। कला, काष्ठ, मुहूर्त, घड़ि, पक्ष, मास आदि सभी अपने-अपने स्वामी के साथ आनंद करते है। मेरा कोई स्वामी नहीं है, इसलिए मैं सदा अशुभ हूं। ऋषि, देवता आदि सभी मेरा निरादर करते हैं, इसलिए मैं विनाश (मृत्यु) की इच्छा रखता हूं। ऐसे निकृष्ट जीवन से मृत्यु श्रेष्ठ है। परदु:ख असहिष्णु (दूसरों का दु:ख न सहने वाले) आप मेरा कल्याण करें, अन्यथा मैं मरूंगा, मरूंगा जरूर मरूंगा, इसमें कोई संशय नहीं है।" यह सुनकर नारायण ने कहा – "तू शोक न कर, तेरा कल्याण हो। तू मेरे साथ गोलोक के अधिपति कृष्णनारायण के पास चल। गोपियों के समूह में स्थित वे श्यामसुंदर कृष्ण तेरा दु:ख दूर करेंगे।" ऐसा कहकर नारायण उसका हाथ पकड़कर और पूजा सामग्री लेकर गोलोक गए। वहां विरजा नदी में स्नान किया। विरजा में स्नान करने से मल मास की सारी मलिनता नष्ट हो गई।

[1] मल मास की द्वितीया तिथि में स्नान करने वाले के अनेक जन्मों के पाप समूल नष्ट हो जाते है और व्रत करने वाले मनुष्य उस तिथि में स्नान मात्र से विरजा स्नान

1. मलमासद्वितीयायां तिथौ स्नातुर्मलानि वै । बहुजन्मोपार्जितानि नाशमेष्यन्ति मूलत: ॥ ७२ ॥ विरजास्नानपुण्यं च प्राप्स्यन्ते व्रतिनो जना: । स्नानमात्रेण गोलोकप्राप्ति: स्यान्नात्र संशय: ॥ ७३ ॥

अनुक्रमणिका

का पुण्य प्राप्त कर गोलोक को प्राप्त करते है, इसमें संशय नहीं है। राधाकृष्ण के समीप जाकर उन दोनों ने दंडवत प्रणाम किया। उनका सत्कार कर नारायण को प्रेम से गले लगाकर अपने सिंहासन पर बैठाकर मुस्कुराते हुए श्रीकृष्णनारायण आने का कारण पूछने लगे। तब नारायण ने पहले राधिकाजी सहित भगवान श्रीकृष्ण की पूजा की। पंचामृत, दूध और शुद्ध जल से स्नान कराकर वस्त्र और आभूषणों से श्रृंगार किया। धूप, दीप, आरती और स्तुति कर विविध नैवेद्य अर्पित किए, मलमास ने भी राधाकृष्ण की पूजा की, तब प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने कहा –

[1]जैसे तुमने आज द्वितीया के दिन यहां मेरी पूजा की है, वैसे ही तेरी (अधिक मास की) द्वितीया तिथि में जो लोग प्रातः और सायंकाल यथाशक्ति राधाकृष्ण की पूजा करेंगे, उस पूजा को मैं राधिका सहित ग्रहण करूंगा। इस द्वितीया तिथि में विशेष रूप से राधाकृष्ण की स्वर्ण मूर्ति बनाकर (अथवा यथाशक्ति प्राप्त राधाकृष्ण की मूर्ति का) गाय के दूध, पंचामृत और शुद्ध जल से अभिषेक करना चाहिए। उसके बाद वस्त्र-आभूषण, धूप-दीप और मिष्ठान अर्पित करने चाहिए। जो लोग मेरी ऐसी षोडशोपचार से पूजा करेंगे [2] मैं उन्हें भेंट स्वरूप वैसी ही असंख्य संपत्तियां दूंगा जैसी मेरे लोक में हैं तथा अंत में उन्हें समृद्ध और शाश्वत सुख वाला गोलोक प्रदान करूंगा। ऐसा आशीर्वाद पाकर मल मास भाग्यवान हो गया। उसने श्रीकृष्ण की स्तुति की और कहा – ''हे नाथ! मैं स्वामी वाला बनूं ऐसी कृपा करें।'' तब भगवान बोले –

[3]में अधिक मास की द्वितीया मैं अनंत उपचारों से पूजनीय हूं। पूजा में जो वस्तुएं मुझे अर्पित की जाएंगी उन्हें लाख गुना करके मैं भक्त को वापस दूंगा। व्रत करने वाले की जो भी इच्छा होगी, उसे मैं अनंत गुना करके दूंगा – ऐसा मैं श्रीकृष्ण कह रहा हूं । इस दिन वटवृक्ष (बड़) को जल देने से, साधु-ब्राह्मणों को भोजन कराने से, कन्याओं को साड़ी देने से और विष्णुभक्तों को दान देने से पूर्ण फल

1. यथाऽहं पूजितश्चात्र द्वितीयादिवसे त्वया । तथा तव तिथौ लोके द्वितीयायां प्रगे निशि ॥ ८७ ॥ राधाकृष्णं यथाशक्तिपूजयिष्यन्ति ये जनाः । तत्सर्वं संग्रहीष्यामि राधया सहितस्तदा ॥ ८८ ॥

2. दास्ये प्रत्युपदां तेभ्यो विविधाऽसंख्यसम्पदः ॥ ९२ ॥ यथा सन्ति मम लोके तथा दास्ये न संशयः । अन्ते दास्ये च गोलोकं समृद्धं सुखं च शाश्वतम् ॥ ९३ ॥

3. पूजायां यानि वस्तूनि त्वर्पितानि च तानि तु । लक्षगुणानि भक्ताय प्रदास्ये प्रवदाम्यहम् ॥ १०४॥ अधिमासद्वितीयायां पूज्यश्चाऽहमनन्तकैः । दास्येत्वनन्तकं तस्मै यद्यदिष्टं व्रतार्थिनः ॥ १०५ ॥

प्राप्त होता है।

[1] अधिक मास की द्वितीया को सभी शुभ वस्तुओं का दुगुना दान करना चाहिए उसका फल इस लोक और परलोक में करोड़ों गुना मिलता है। उसके बाद श्रीकृष्णनारायण ने नारायण से कहा कि – ‘‘मैं इस मल मास की पूरी स्थिति जानता हूं। सूर्य संक्रांति न होने से संसार ने इसका तिरस्कार किया है, परंतु अब यह मेरे घर (गोलोक में)आया है, इसलिए आज से यह मलिन नहीं है। आज से यह दिव्य, शुद्ध और पूजनीय है। पर इसका स्वामी कौन होगा? इस पर विचार करें। मैं और आप (नारायण) अन्य मासों के स्वामी है, अतः इस मास का स्वामी कौन बनेगा ? इसके लिए हम अक्षर धाम चलते हैं जहां पुरुषोत्तम नारायण का सदा वास है।’’

[2] जिसमें से मेरे जैसे असंख्य अवतार प्रकट होते है, गोलोक आदि धाम जिसके धाम के अंश है, वे अवतारी अनादि श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम विचार करके इस मास का स्वामी नियुक्त करेंगे। ऐसा विचार कर वे तीनों जहां पुरुषोत्तम नारायण सदा बिराजमान रहते है उस अक्षर धाम में गये।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में द्वितीया तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक दूसरा (२९४) अध्याय समाप्त ।

1. द्वितीयायां प्रदातव्यं सर्वं वै द्विगुणं शुभम् । कोटिगुणं प्रपद्येत फलं चात्र परत्र च ॥ १०८ ॥

2. अवतारा असंख्याता यस्माद्भवन्ति मादृशाः ॥ ११६ ॥ गोलोकादिकधामानि यद्धामांशा भवन्ति वै। स विचार्यैव चैतस्य स्वामिनं कल्पयिष्यति ॥ ११७ ॥ अवतारीत्वनादिश्रीकृष्णः श्रीपुरुषोत्तमः । योजयिष्यति यं त्वस्मिन् सोऽस्य स्वामी भविष्यति ॥ ११८ ॥

अध्याय-३

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा – हे लक्ष्मी! सुनो, श्रीकृष्ण, नारायण और अधिक मास ये तीनों गोलोक से ऊपर स्थित अक्षरधाम में दिव्य आकाश मार्ग से गए। वहां ब्रह्मधरा में स्नान करके वे तीनों पुरुषोत्तम रूप हुए। वहां आठ वर्ष की आयु वाले, द्विभुज (दो भुजाओं वाले) और करोड़ों नारायणों के समान रूप और तेज वाले मुक्तों के मंडलों को देखकर वे आश्चर्यचकित हो गए और वहां के उद्यानों, मुक्तों के महलों और विमान आदि वैभव को देखकर वे अपने स्वयं के धाम की वस्तुओं के प्रति वैराग्यवान हो गए। अक्षरधाम की वस्तुओं की तुलना में उन्हें गोलोक और वैकुंठ की सभी वस्तुएं आनंदहीन लगने लगीं। वे वैकुंठ और गोलोक से पुरुषोत्तम के पूजन के लिए जो वस्तुएं साथ लाए थे, वे सब फीकी और निस्तेज लगने के कारण मन से उदास हो गए। उसी समय, उन्होंने वहां अनंत योजन विस्तार वाला और दिव्य जल से युक्त रसात्मक ब्रह्म सरोवर देखा। उन तीनों ने उसमें स्नान किया और उस ब्रह्म सरोवर का जल अपनी भेंट सामग्री पर छिड़का, जिससे वे सभी वस्तुएं श्रीपुरुषोत्तम नारायण को अर्पण करने योग्य (भोग्य) हो गईं। तत्पश्चात, उन्होंने लाख योजन विस्तार वाला एक विशाल महल देखा। वहां द्वारपालों से आज्ञा लेकर वे अंदर प्रविष्ट हुए, जहां असंख्य दिव्य मुक्तआत्माओं द्वारा सेवित राजाधिराज पुरुषोत्तम नारायण विराजमान है।

श्रीकृष्ण और नारायण को आये हुए देखकर पुरुषोत्तम नारायण अत्यंत आनंदित हुए। उन दोनों द्वारा बार-बार नमस्कार किए जाने पर श्रीहरि ने उनसे अपने-अपने धाम के कुशल समाचार पूछे। "आपकी कृपा से सब कुशल है" ऐसा कहने वाले उन दोनों को श्रीहरि ने आसन पर बैठाया। अधिक मास भी पुरुषोत्तम नारायण को पांच दंडवत प्रणाम करके एक दास की भांति उनके समीप खड़ा

रहा। तब अक्षराधिपति श्रीहरि ने पूछा कि - "यह कौन है? और तुम्हारे साथ मेरे धाम में क्यों आया है?" तब सबसे पहले श्रीकृष्ण और नारायण ने अपने साथ लाए हुए दिव्य उपचारों से श्रीहरि का महापूजन किया, उनकी स्तुति की और सुखपूर्वक बैठकर आतिथ्य सत्कार स्वीकार करने के बाद कहा कि - यह अधिक मास को ऋषियों द्वारा सभी शुभ कर्मों में वर्जित (निषिद्ध) माना गया है। मैंने (श्रीकृष्ण ने) इसे सौभाग्य प्रदान किया है, परंतु अधिष्ठाता देव के बिना शुभ महीनों में इसकी गणना नहीं होगी। मल मास के इस महा दुःख को आपके सिवा कोई और दूर नहीं कर सकता, इसलिए कृपा करके हमारे लिए इसका दुःख दूर करें। यह सुनकर पुरुषोत्तम नारायण ने कहा कि - "आप दोनों यहां आये, यह बहुत अच्छा किया। मलमास का हाथ थामकर आप लोक में कीर्ति प्राप्त करेंगे। जिसका हाथ आपने पकड़ा है, उसका हाथ मैंने ही पकड़ा है।"

[1] इस कारण, मैं इसे (अधिक मास को) अपनी तरह सर्वोपरि बनाऊंगा। जैसा मैं स्वयं के गुणों से युक्त हूं, वैसा ही इसे बनाऊंगा। सामर्थ्य, पूजनीय भाव और श्रेष्ठ पराक्रम के द्वारा मैं इसे अपने तुल्य (समान) करता हूं। क्या इससे ज्यादा और कोई अपेक्षा है?

[2] मेरे अन्य सभी गुण मैंने अधिक मास को समर्पित कर दिए हैं और आपके संतोष के लिए मैंने अपनी 'पुरुषोत्तम' संज्ञा (नाम) भी इसे अर्पित कर दी है। मैं परब्रह्म पुरुषोत्तम इस मास का स्वामी बनता हूं। संपूर्ण जगत मेरे नाम से ही इसका नाम लेगा (इसे पुरुषोत्तम मास कहेगा)। यह मास मेरे स्वरूप वाला होकर जगत-पूज्य, सर्व-वंदनीय और सभी महीनों में उत्तम बनेगा। मेरे प्रभाव से इस मास में व्रत, जप, पूजा, दान, स्नान या भोजन कराना आदि अल्प पुण्य करने वालों के भी, दुःख, दरिद्रता, ताप, आधि, व्याधि तथा समस्त पीड़ाएं दूर हो जाएंगी और उन्हें सभी प्रकार के सुख प्राप्त होंगे।

1. अत एनं करिष्यामि सर्वोपरि मया समम् । यथाहं स्वगुणैर्युक्तस्तथैनं विदधामि वै ॥ ३४ ॥ सामर्थ्यैश्चाऽर्च्यभावेन तथा वरपराक्रमैः । मम तुल्यं विदधामि ततोऽन्यत् किमपेक्ष्यते ॥ ३५ ॥
2. मम सर्वे गुणाश्चान्येऽधिमासाय समर्पिताः । पुरुषोत्तमसंज्ञा मे वस्तुष्ट्यै चार्पिता तथा ॥ ३८ ॥ अस्य स्वामी भवाम्येव ब्रह्मेशः पुरुषोत्तमः । मम नाम्ना जगत्सर्वं तन्नामाऽपि ग्रहीष्यति ॥ ३९ ॥

अनुक्रमणिका

[1] पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वाले मेरे ही व्रत को करने वाले हैं। जैसे मनुष्य चिंतामणि से इच्छित सुख प्राप्त करते हैं, वैसे ही वे मुझसे समस्त इच्छित सुख प्राप्त करेंगे। इस मास का व्रत करने वाले स्वर्ग, सत्यलोक, विराटलोक, वैकुंठ, कैलाश, श्वेतद्वीप अथवा जो उन्हें मान्य धाम होगा, उसे प्राप्त करेंगे।

[2] जैसे मैं पुरुषोत्तम नारायण सकाम (इच्छा रखने वाले) और निष्काम जनों की इच्छापूर्ति करने वाला हूं, वैसे ही मैंने इस अधिक मास को भी सब की इच्छा पूरी करने वाला तथा मोक्ष देने वाला बनाया है। जैसे मैं परिपूर्ण हूं, वैसे ही इसे भी मैंने अव्यय बनाया है। मुझे पाने के लिए यति, ब्रह्मचारी, साधु, योगी और तपस्वी आदि हजारों वर्षों तक कठिन प्रयत्न करते हैं, फिर भी वे सबसे ऊपर स्थित मेरे धाम को प्राप्त नहीं कर पाते परंतु पुरुषोत्तम मास का व्रत करके मनुष्य केवल एक मास में ही मेरे धाम को प्राप्त करने वाले बनेंगे। इसके अलावा, कई प्रकार के भीषण तप करने वाले भी मेरी भक्ति के बिना मेरे धाम को नहीं पा सकते, लेकिन अधिक मास का व्रत करने वाले केवल एक मास के व्रत से मेरी कृपा द्वारा शाश्वत अक्षर धाम को प्राप्त करेंगे।

[3] जो मनुष्य पुरुषोत्तम मास का सेवन (पूजन-व्रत) करेंगे, वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि प्राप्त करेंगे। चातुर्मास का व्रत करने वाले स्वर्ग भोगकर पुनः जन्म-मरण को प्राप्त होते है, परन्तु पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वाले शाश्वत अक्षर धाम को प्राप्त करते हैं। इस मास का व्रत करने वाले अपनी एक सौ आठ पीढ़ियों का उद्धार करेंगे। इस मास का व्रत करने वालों के अपराधों को मैं नहीं गिनूंगा, क्योंकि मुझे अपने भक्तों की भक्ति अत्यंत प्रिय है। मेरे मास में व्रत करने वालों के मनोरथ पूर्ण करने में, मैं विलंब नहीं करूंगा। मेरे इस मास को पाकर भी जो स्नान, पूजा और सत्कर्मों से रहित रहेंगे, वे काग और सियार जैसी नीच योनियों को प्राप्त करेंगे।

1. पुरुषोत्तममासस्य व्रतिनो मद्व्रता हि ते । मत्तः प्राप्स्यन्ति सर्वे ते यथा चिन्तामणेर्जनः ॥ ४८ ॥
2. तथाऽयं वै जनेष्टस्य पूरको मोक्षदः कृतः । यथाहं परिपूर्णोऽस्मि तथाऽयं चाव्ययः कृतः ॥ ५२ ॥
3. ये जनाः सेवयिष्यन्ति मासं श्रीपुरुषोत्तमम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धिमाप्स्यन्ति ते जनाः ॥ ६५ ॥

[1] जो अधम लोग मेरे मास का व्रत करने वालों को दुःख पहुंचाएंगे, वे दूसरों द्वारा पीटे जाने वाले और सदा बंधन में रहनेवाले गधे बनेंगे। इसके अतिरिक्त, जो मेरे मास का तिरस्कार करेंगे और इस मास में भक्ति में विघ्न डालेंगे वे वृक्ष पर उल्टे लटक कर स्वयं का मल खाने वाले चमगादड़ बनेंगे। हर तीसरे वर्ष में प्राप्त होने वाले इस पुरुषोत्तम मास में जो आत्म-कल्याण नहीं करते, वे यमलोक को प्राप्त होते हैं। इसलिए इस पुरुषोत्तम मास को पुण्य कर्म के बिना व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए।

कन्या, युवती, सुहागिन स्त्री, विधवा और वृद्धा - जो कोई भी स्त्री अपने अभीष्ट सुख की प्राप्ति के लिए इस मास में स्नान, व्रत, मेरी पूजा, मन्त्र जप आदि पुण्य कर्म करेंगी, उन्हें मैं पुरुषोत्तम सब कुछ प्रदान करूंगा। जो लोग इस मास को बिना किसी पुण्य कर्म के शून्य ही व्यतीत कर देते हैं, उनका सौभाग्य भी शून्य हो जाता है। जो धनाढ्य गृहस्थ इस मास में दान आदि सत्कर्म नहीं करते, उनके कोष (खजाने) रिक्तता (शून्यता) को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, यति और त्यागी भी यदि व्रत और पूजाके बिना यह मास व्यतीत करते हैं, तो वे भी तपस्वी होने के बावजूद भक्ति-रहित माने जाते हैं। इसलिए सभी को इस मास का सेवन करके आत्म-कल्याण सिद्ध कर लेना चाहिए।

हे कृष्ण! हे नारायण! मेरा यह अटल वचन सुनो, मेरी आज्ञा से ब्रह्मांडों में रहने वाले लोग जहां-जहां यह मास हो वहां-वहां इस मास के अधिष्ठाता देव के रूप में मेरी सर्वथा पूजा करेंगे, वे मेरे भक्त मेरे शाश्वत अक्षर धाम को प्राप्त करेंगे। साथ ही, उन-उन अवतारों के वे भक्तभी मेरे इस मास के प्रभाव से गोलोक, वैकुंठ, अमृत इत्यादि अपने इष्ट भगवान के धाम को प्राप्त करेंगे।

[2] हे राधिकेश्वर कृष्ण! हे लक्ष्मीश नारायण! आप दोनों ने अधिक मास की तृतीया तिथि (३) को मेरा पूजन किया है, इसी प्रकार जो मनुष्य इस तृतीया तिथि

1. मम मासे व्रतिनां ये दुःखं कुर्वन्ति चाऽधमाः । परताडनपाशास्ते भविष्यति प्रगर्दभाः ॥ ७८ ॥

2. तृतीयायां मम मासे युवाभ्यां पूजितोऽस्म्यहम् । तथा ये पूजयिष्यन्ति तेषां पूर्णमनोरथाः ॥ १०० ॥ सर्वथैव भविष्यन्ति स्नानदानजपादिभिः । युवां चिन्तां कुरुतं मा लक्ष्मीश राधिकेश्वर ॥ १०१॥

को मेरा पूजन करेंगे, उनके सभी मनोरथ उस स्नान, पूजन, दान और जप आदि के द्वारा सर्वथा पूर्ण होंगे। अब आप दोनों चिंता न करें।

इस प्रकार पुरुषोत्तम नारायण का आदेश पाकर और उन्हें प्रणाम करके वे तीनोंने वहां से प्रस्थान किया । हे लक्ष्मी! सुनो, अधिक मास की तृतीया तिथि को जो स्नान करेंगे, उन्हें ब्रह्म धरा और ब्रह्म सरोवर में स्नान करने से जो अक्षय और शाश्वत पुण्य मिलता है, वही पुण्य प्राप्त होगा। जैसे कृष्ण और नारायण ने मेरी पूजा की, वैसे ही जो मनुष्य इस दिन मेरी पूजा करेंगे और दान आदि देंगे, उन्हें शाश्वत फल की प्राप्ति होगी।

पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की तृतीया को नारायण और कृष्ण ने मेरा पूजन किया है, इसलिए मनुष्यों को भी तृतीया के दिन मेरी, श्रीकृष्ण की और नारायण की महा पूजा करनी चाहिए। वह पूजा सुख और मोक्ष देने वाली होगी। जैसा मैं अक्षरधाम में हूं, वैसा ही मैं इस अधिक मास के रूप में संपूर्ण ब्रह्मांड में स्थित हूं और सभी के अंतरात्मा में स्थित हूं। राधा-लक्ष्मी आदि के द्वारा सेवित मैं कृष्णनारायण सब कुछ जानता हूं परंतु मुझे कोई भी यथार्थ रूप से जान नहीं सकता। हे लक्ष्मी! पार्वती, प्रभा, माणिकि आदि के साथ विहार करने वाला मैं अनेक रूपों वाला होता हुआ भी एक ही हूं, ऐसा आप जानें।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में तृतीया तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक तीसरा (२९५) अध्याय समाप्त ।

अध्याय-४

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी ! सुनो, उसके बाद वे तीनों गोलोक में गए। वहां क्षण भर विश्राम करने के पश्चात नारायण और पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) ने श्रीकृष्ण की पूजा की। गोलोक में पुरुषोत्तम मास की महिमा अत्यधिक बढ़ गई। श्रीकृष्ण को नमस्कार करने के बाद नारायण और पुरुषोत्तम मास वैकुंठ आए। वहां भी अधिक मास को बहुत महत्व मिला और विष्णु ने उसे वैकुंठ में वास दिया, जिससे वह महीनों का राजा बनकर गौरव के साथ वैकुंठ में स्थित हुआ। महालक्ष्मी ने भी उसकी पूजा की तथा नारायण ने भी तृतीया के दिन दोपहर के तुरंत बाद अपने पार्षदों को भेजकर प्रत्येक ब्रह्मांड में यह घोषणा करवा दी कि - यह अधिक मास पुरुषोत्तम नारायण के प्रभाव से महान, उत्तम, पुरुषोत्तम के समान देवत्व वाला, पुरुषोत्तम नाम वाला, स्वर्ग देने वाला तथा मोक्ष देने वाला बन गया है। पुरुषोत्तम ने अपने गुण इसे अर्पित किए है इसलिए यह पुरुषोत्तम से तनिक भी कम नहीं है। नर-नारी, देवी-देवता या जो कोई भी स्थावर-जंगम (चराचर) है, यदि वे, इस मास के एक समय भी भक्ति-भाव से व्रत या पूजन करेंगे, तो वे मेरी इच्छा से संपूर्ण पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का फल प्राप्त करेंगे तथा अपना इच्छित सर्वस्व प्राप्त करेंगे, तो फिर त्रिकाल पूजन और संपूर्ण मास का व्रत करने वालों के विषय में तो कहना ही क्या? इस मास में जो-जो भक्त जिस-जिस रूप में मेरी पूजा करेंगे, वे उस-उस धाम में मेरे उन-उन रूपों को प्राप्त करेंगे ऐसा मैं नारायण कहता हूं।

हे लक्ष्मी! इस प्रकार दिव्य शरीरधारी महादुंदुभि द्वारा ब्रह्मांडों में बार-बार घोषणा की गई। पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) भी तृतीया की शाम को करोड़ों लोगों द्वारा सत्कार, पूजा और उत्तम भोजन प्राप्त कर श्रम को प्राप्त हुआ। चतुर्थी के

अनुक्रमणिका

दिन सुबह जड़ और चेतन ऐसे कई व्रत करने वाले वैकुण्ठ में आए। उनमें क्षीरसागर से करोड़ों दासियों के साथ रमादेवी वैकुण्ठ में पधारीं। वरमाला से सुसज्जित और वधू का रूप धारण किए हुए वे सर्वांग में लक्ष्मी के ही समान थीं, उनमें कोई कमी नहीं थी। नारायण की आज्ञा से लक्ष्मी आदि द्वारा भली-भांति सत्कार पाकर, रमा को नारायण ने अपनी गोद में बैठाया। यह देख लक्ष्मी आदि अत्यंत आश्चर्यचकित हुईं। तत्पश्चात लक्ष्मी ने रमा से पूछा, ''आप किसकी पुत्री हैं? आप कहां से और कैसे आई हैं? और आपने क्या करके नारायण को पति के रूप में प्राप्त किया है? वह सारा वृत्तांत मुझे सुनाइए। तब हाथ में स्थित वरमाला श्रीहरि के कंठ में अर्पित कर, नारायण के चरणों के अंगूठे को धोकर उस चरणामृत का पान किया और उनकी प्रदक्षिणा की। फिर कुमकुम से श्रीहरि के मस्तक पर सुशोभित तिलक कर अक्षत लगाए। आधी वरमाला अपने कंठ में धारण की और श्रीहरि को खीर (पायस) का भोग लगाकर तांबूल (पान) अर्पित किया। उस तांबूल की प्रसादी स्वयं ग्रहण कर, अक्षत और खील (लाजा) सहित पुष्पांजलि अर्पित की और श्रीहरि की पत्नी बनकर लक्ष्मी से कहने लगीं - हे पूजनीय महालक्ष्मी! तृतीया की रात्रि में सभी ने नारायण के नाम से दुदुंभि की यह घोषणा सुनी थी की- ''पुरुषोत्तममास (अधिकमास) में जो मेरी पूजा करेगा, उसके सभी मनोरथ मैं पूर्ण करूंगा''।

मैंने क्षीर सागर स्थित अपने घर में वह ध्वनि सुनी और नारायण को पति रूप में पाने की इच्छा की। तत्पश्चात, अधिकमास की तृतीया तिथि को सायंकाल में भोजन और जल का त्याग कर व्रत रखा, स्नान किया और श्रीहरि की पूजा की। फिर अपने पिता क्षीर सागर से अनुमति लेकर, उनकी आज्ञा से तोरणों, ध्वजाओं और केले के स्तंभों से सुसज्जित एक भव्य मंडप बनवाया। उस मंडप के मध्य में एक उत्तम और रमणीय झूले में स्वर्ण की नारायण की मूर्ति विराजमान की। उन्हें स्नान कराकर भाव पूर्वक दिव्य वस्त्र, आभूषण और समुद्र के रत्न अर्पित किए।

इसके बाद धूप, दीप, नैवेद्य, जलपान, आरती, स्तुति, प्रदक्षिणा, अभिवादन और पुष्पांजलि अर्पित करते हुए यह संकल्प किया कि – 'हे नारायण! हे विश्वात्मन! आप मेरे पति बनें।' इसके बाद चरणामृत का पान कर, मैंने सुकोमल पलंग पर श्रीहरि को प्रेम पूर्वक अपने साथ सुलाया। निद्रा में भी मैंने यही देखा कि मैं श्रीहरि की चरण सेवा कर रही हूं। स्वप्न में श्रीहरि ने अपनी कृपा-दृष्टि से मुझे भाव विभोर करते हुए कहा, 'हे प्रिये! इस व्रत से मैं तुम्हारा स्वीकार करता हूं। में प्रातःकाल तुम्हें अपने लोक में ले जाने के लिए मैं आऊंगा' – इतना कहकर वे अदृश्य हो गए।

मैंने पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की चतुर्थी के ब्राह्ममुहूर्त में पुरुषोत्तम नारायण का ध्यान किया, स्नान किया और शय्या पर शयन कर रहे श्रीहरि को जगाया और अत्यंत भक्तिभाव से दूध आदि से स्नान कराकर, श्रृंगार कर, विवाह करने वाले वर की भांति सुशोभित किया। तत्पश्चात अग्नि-मंडल में १०८ आहुति दीं, पांच बत्तियों वाली आरती उतारी और चार प्रदक्षिणा की। फिर मैंने प्रार्थना की – 'हे पुरुषोत्तम मास में वरदान देने वाले नारायण! आप ही मेरे पति बनें' – यह कहकर पुष्पांजलि, अर्घ्य, नमस्कार और क्षमायाचना अर्पित की। विसर्जन, चरणामृत पान और प्रसाद ग्रहण करने के बाद 'कृष्णनारायण' नाम का भजन करते हुए बालिकाओं और कन्याओं को भोजन करवाया एवं दान दिया। इसके बाद पिता को प्रणाम कर पारण किया। जैसे ही मैं अपने भवन में गई, वैसे ही ये नारायण मेरे समक्ष प्रकट हो गए। अत्यंत प्रसन्न और तेजस्वी नारायण ने अपने कर-कमलों से मुझे अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा कि –

[1] पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की तृतीया को तुमने एक समय मेरी पूजा की, रात्रि में चरण सेवा की और चतुर्थी के दिन प्रातः काल मेरी महा पूजा की। हे रमा! मात्र इतने व्रत से ही तुमने मुझे प्राप्त कर लिया है। आज से तुम मेरी शाश्वत

1. मलमासे ह्येककाले तृतीयायां त्वयाऽर्चितः ॥ ६७ ॥ निशि संवाहितश्चापि चतुर्थ्यां चातिपूजितः । प्रातरेव त्वया मान्ये ! चार्जितोऽस्मि व्रतेन वै ॥ ६८ ॥

पत्नी हुई, इसलिए अब मेरे साथ चलो। साथ ही, तुम्हारे इस व्रत के प्रभाव से तुम्हारी जो दासियां हैं, वे भी मेरे वैकुंठ लोक को प्राप्त कर सर्वथा मेरी दासियां बनें। ऐसा कहकर मुझे गरुड़ और हजारों विमान दिखाए। फिर मैंने अपने पिता के पास जाकर यह सारा वृत्तांत सुनाया। उन्होंने भी वहां आकर मेरा हाथ श्रीहरि के हाथ में सौंप दिया। तत्पश्चात पिता की आज्ञा लेकर, उनके द्वारा दी गई दासियां और भेंट को साथ लेकर, मैं गरुड़ पर सवार होकर इस वैकुंठ लोक में आ गई। अधिक मास में रात्रि और प्रातः काल श्रीनारायण के पूजन के कारण ही मैं उन्हें पति रूप में पा सकी और यहां आई। इस प्रकार, मुझे पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का फल प्राप्त हुआ।

[1] जिस प्रकार मैंने नारायण की पूजा की, उसी प्रकार जो कन्या या युवती उनकी पूजा करेगी, वह नारायण को प्राप्त करेगी। पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की चतुर्थी के दिन सुबह, दोपहर या शाम को जो भी मनुष्य जिस इच्छा से श्रीहरि का पूजन करेगा, वह श्रीहरि की इच्छा से अपने इच्छित सभी भोग्य पदार्थों, ईश्वर लोक या मोक्ष को प्राप्त करेगा। हे लक्ष्मी! जिस प्रकार मैं अल्प मात्र व्रत करने से सदा सौभाग्यवती हुई हूं, उसी प्रकार अन्य कन्या या युवती भी यह व्रत करके सदा सौभाग्यवती होंगी। यदि विधवा भी इस प्रकार अधिकमास की चतुर्थी को श्रीहरि का पूजन करेगी, तो वह भी निश्चित रूप से वैकुंठ को प्राप्त करेगी। वृद्धा, रोगिणी, तिरस्कृत, कर्म से भ्रष्ट हुई, अनाथ, विधवा, कुलटा, स्वैरिणी, कामिनी, ज्ञातिहीन, मैथुन में सदा आसक्त, मांस-मदिरा का सेवन करने वाली, रजस्वला के दोष में स्थित या संस्कार विहीन - जो कोई भी नारी इस कथा को सुनकर पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में चतुर्थी के दिन श्रीहरि को प्राप्त करने की इच्छा से एक समय भोजन, सायंकाल की संध्या के बाद भोजन (नक्त भोजन), फलाहार, केवल दुग्ध पान या केवल जलपान रूपी व्रत करेगी, वह अपने सभी

1. मया नारायणपूजा कृता तद्वत् करिष्यति । कन्यका युवती वापि प्राप्स्यत्येनं नरायणम् ॥ ७९ ॥

पापों या अति-पापों का नाश कर अत्यंत पवित्र, दिव्या और शुद्धा होकर भगवान के सनातन वैकुंठ धाम को प्राप्त करेगी।

[1] हे लक्ष्मी! नारायण की गोद में बैठी हुई मैं रमा फिर से पूर्णतः सत्य कहती हूं कि - पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की चतुर्थी (४) का व्रत करने वाली वह स्त्री श्रीहरि के धाम को प्राप्त करेगी। अधिक क्या कहना? जिसके योग से माया भी अमायिकी (दिव्य) हो जाती है, तो स्त्री की मुक्ति हो जाए इसमें क्या बड़ी बात है? इसलिए यह अधिक मास का व्रत सर्वथा करना चाहिए, जिसके बल से भुक्ति (सांसारिक सुख) तथा मुक्ति सब प्राप्त होते हैं।

ऐसा कहकर रमा ने वात्सल्य बढ़ाने वाली लक्ष्मी को प्रणाम किया। नारायण भी उन्हें उनके भवन में ले जाकर उनकी भावनाओं को पूर्ण करने वाले हुए। हे प्रिये! इस प्रकार क्षीरसागर की पुत्री रमा किस तरह नारायण प्रिया हुईं, वह कथा मैंने तुम्हें सुनाई। इस कथा के सुनने या पढ़ने मात्र से मनुष्य को पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के व्रत का फल प्राप्त होता है।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में चतुर्थी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक चौथा (२९६) अध्याय समाप्त ।

1. रमाऽहं संस्थिता नारायणांऽके लक्ष्मि ! सर्वथा । कथयामि पुनः सत्यं सा प्राप्स्यति हरेः पदम् ॥ १०० ॥

अनुक्रमणिका

अध्याय-५

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की पंचमी का व्रत और पूजन करके शारदा ने किस प्रकार अतुल ऐश्वर्य, शाश्वत कौमार्य (अखंड कुमारिका अवस्था), रजस्वला-दोष से मुक्ति, प्रत्येक मुख में निवास, लोक में पूजनीयता तथा वैकुंठनाथ का पत्नीत्व प्राप्त किया, वह सुनो। पत्नीत्व होने के साथ कौमार्य और कौमार्य होने के साथ पत्नीत्व - इन विरुद्ध धर्मों की एक ही व्यक्ति में स्थिति श्रीहरि की प्रसन्नता से शारदा को प्राप्त हुई।

ब्रह्म धाम में स्थित अनादि श्रीकृष्णनारायण के अंग से ब्रह्मविद्या 'शारदा' नाम की सुंदरी के रूप में प्रकट हुई, जो नारायण की आज्ञा से विराट लोक में आई और विराट में लीन हो गई। वह कन्या ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ विराट की पुत्री के रूप में प्रकट हुई। लंबे समय तक पिता के घर में निवास करते हुए वह सोचती थी कि ब्रह्मा की सृष्टि में प्रत्येक मुख में स्थित होने के लिए मेरा प्राकट्य हुआ है किंतु यदि मैं सृष्टि में कुमारी रहकर ही निवास करूंगी, तो मैं असंस्कृत (बिना संस्कार वाली), अस्पृश्य, अशुद्ध और सभी के द्वारा बहिष्कृत ही रहूंगी। संस्कार के बिना कुमारी का शरीर किसी भी कर्म के योग्य नहीं माना जाता।

[1] कुमारी अवस्था में स्थित नारी की देह शुभ कैसे हो? विवाह संस्कार के पश्चात ही उसकी शुद्धि होती है, अन्यथा कभी नहीं। परंतु पुरुष की पराधीनता वाला यह विवाह भी अत्यंत दुःखदायी है। जननेंद्रिय की पराधीनता से उत्पन्न मलिनता - जैसे रजस्वला होना (मासिक धर्म), गर्भधारण और मैथुन आदि - पत्नी भाव के ये सभी कर्म सर्वथा पराश्रित और भारी दुःख देने वाले हैं। मैं क्या करूं? कहां जाऊं ? मुझे किसी के अधीन नहीं होना है। साथ ही, रजस्वला धर्म जो एक

1. कुमारिकास्थितौ नारीदेहः कथं शुभो भवेत् । विवाहकरणे शुद्धिर्नान्यथा तु कदाचन ॥ १६ ॥

अनुक्रमणिका

मलिनता है, मैं उसे भी नहीं चाहती। इसलिए, जिससे अमलिनता (निर्मलता), पवित्रता, रजस्वला-मुक्त स्थिति, पत्नी-धर्म से मुक्ति और अखंड कुमारित्व सिद्ध हो सके, मुझे वैसा ही प्रयत्न करना चाहिए। यदि मेरा यह इष्ट संकल्प पूरा नहीं हुआ, तो मैं देह त्याग कर दूंगी, इसमें कोई संशय नहीं है। इस प्रकार नित्य चिंतन करती हुई और उसके साधन की खोज करती हुई उस शारदा ने [1] अधिक मास में व्रत के विषय में विष्णु नारायण के दुंदुभि की यह घोषणा सुनी कि - पुरुषोत्तम ने कहा है कि - पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का व्रत करने वालों के मनोरथ पूर्ण होंगे। जो जन एक काल या दो काल(सुबह या शाम) मेरी पूजा करेंगे, वे नर, नारी या नपुंसक भी मेरी कृपा मात्र से अलभ्य लाभ प्राप्त करेंगे और मैं उन्हें इच्छित सर्वस्व प्रदान करूंगा।

इस उद्घोष को सुनकर अति हर्षित हुई विराट की पुत्री कुमारी शारदा ने वह व्रत और पूजन करने का निर्णय किया। पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की पंचमी को प्रातः शीघ्र जागकर, स्नान कर श्रीहरि की मूर्ति का ध्यान किया और अपने भवन में दिव्य पूजा सामग्रियों का संग्रह कर विष्णु नारायण का भाव पूर्वक पूजन किया। उस कुमारी ने सुवर्णमयी भगवान लक्ष्मीनारायण की मूर्ति का आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य और आचमन देकर, पंचामृत एवं शुद्ध जल से स्नान कराकर तथा शुद्ध वस्त्र धारण कराकर श्रृंगार किया। फिर चंदन, अक्षत, कुमकुम, तुलसीदल, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल और तांबूल अर्पित करके आरती, दंडवत, प्रदक्षिणा, स्तुति और प्रणाम करके क्षमायाचना की तथा हाथ में पुष्पांजलि लेकर कहा कि, "दुंदुभि का नाद कराने वाले हे लक्ष्मीनारायण! हे अक्षर, गोलोक और वैकुंठवासी पुरुषोत्तम नारायण! यदि आप व्रत करने वाले भक्तको वास्तव में उसकी इच्छित वस्तु देते हैं, तो मैं जो मांगती हूं वह मुझे प्रदान करें। मेरा कौमार्य शाश्वत रहे, मैं कभी रजस्वला न होऊं और फिर भी मुझे कभी

1. शुश्राव दुन्दुभिः विष्णोरधिमासव्रताय वै । पुरुषोत्तममासस्य व्रतिनां वै मनोरथाः ॥ २६ ॥ परिपूर्णा भविष्यन्तीत्याह श्रीपुरुषोत्तमः । एककालं द्विकालं वा पूजयिष्यन्ति मां जनाः ॥ २७ ॥ नरो नारी च षण्ढो वा मत्कृपालेशतो हि सः । अलभ्यलाभवान् स्याच्च दास्ये सर्वे तदिप्सितम् ॥ २८ ॥

अशुद्धता प्राप्त न हो; मेरा पत्नीत्व और सौभाग्य सदैव बना रहे, किंतु पत्नी होने के बावजूद मुझे कभी गर्भधारण न करना पड़े। शरीर में ये सभी परस्पर विरुद्ध धर्म हैं जो अत्यंत दुर्लभ हैं, फिर भी मैं उन्हीं की याचना करती हूं। यदि आप सत्य वक्ता हैं और अधिक मास में केवल एक समय व्रत-पूजन करने से भी इच्छित फल देने वाले हैं, तो मेरा यह मनोरथ पूर्ण करें, अन्यथा हे देव! ऐसी झूठी घोषणा न करायें। मैं आपको छत्र, चंवर, पादुका, कोमल शय्या और चरण सेवा के लिए स्वयं को समर्पित करती हूं। हे शरणागत वत्सल! हे भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाले! इस पुष्पांजलि को स्वीकार कर मुझे यह इच्छित वर दें कि - जो कुमारी हो वह पत्नी नहीं होती और जो पत्नी हो वह कुमारी नहीं होती, फिर भी कौमार्य और पत्नीत्व का कोई भी दोष मुझे कभी स्पर्श न करें। हे प्रभु! करने, न करने और अन्यथा करने में समर्थ आपके लिए कुछ भी असंभव नहीं है; यदि आप ऐसा वरदान नहीं देते, तो आपकी यह घोषणा व्यर्थ है।

ऐसा कहकर, पुष्पांजलि और श्रीफल युक्त अर्घ्य श्रीविष्णु को समर्पित किया। चावल (अक्षत) चढ़ाकर आत्म-समर्पण रूपी दक्षिणा अर्पित की और हृदय में नारायण का विसर्जन किया। इतने में ही, मंद-मंद मुस्कुराते हुए लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम नारायण उनके सम्मुख प्रकट हुए और कहने लगे - हे शारदे! विश्वासपूर्वक व्रत करने वाली तुम्हारी इस पूजा से मैं अत्यंत प्रसन्न हूं। तुम्हारे विश्वास के पाश (बंधन) में बंधा हुआ मैं तुम्हें सर्वस्व देने में समर्थ हूं। फिर भी मेरा एक वचन सुनो। कुमारित्व (कौमार्य) और पत्नीत्व कभी एक साथ एक स्थान पर दिखाई नहीं देते, इसलिए तुम कुछ और मांग लो। लोक में आजीवन कुमारित्व कलंकित माना जाता है, अतः तुम पत्नीत्व का वरण करो। इसके अतिरिक्त यदि तुम्हारी स्त्री-राज्य, महद-राज्य, माया-राज्य या अन्य कोई कामना हो तो वह मांग लो, परंतु विधि-विरुद्ध मत मांगो। अब विचार करके शीघ्र मुझे बताओ। श्रीहरि के ये वचन सुनकर शारदा ने कहा - हे स्वामिन्! मैंने तो आपके ही उद्घोष

को सुनकर यह अभ्यर्थना की थी। अपने सत्य की रक्षा के लिए आप जैसा उचित समझें वैसा ही करें। भक्त में दुराग्रह नहीं होता और जो आग्रही (जिद्दी) हो वह भक्त नहीं होता। मैं आपकी शरणागत हूं, आपकी भक्त हूं। मुझे नारी के दुखों का अनुभव न हो। ऐसा कहकर, आदरपूर्वक पूजित और भोजन कराये हुए श्रीहरि विचार करने लगे कि - इसकी मनोकामना कैसे पूर्ण करूं? तत्पश्चात उन्होंने संकल्प किया - मैं इस शारदा को व्याप्य-व्यापक रूपिणी और अनेक रूपों में प्रकट होने की दिव्य महा सिद्धि प्रदान करता हूं।

ऐसा संकल्प कर प्रभु ने अपने शंख का जल शारदा के मुख में दिया। क्षण भर में ही वह सर्व-सामर्थ्यनिधि स्वरूपा हो गई। इसके बाद भगवान ने कहा - हे शारदे! तुम सदा दिव्यरूपा, गर्भादि दोषों से मुक्त और वैकुंठ वासिनी होकर मेरी पत्नी बनो। मैं तुम्हें योनि की मलिनता से रहित अपना पत्नीत्व प्रदान करता हूं। तुम्हारा यह दिव्य रूप सदा मल-मूत्रादि से अस्पृश्य रहेगा। हे प्रिये! तुम दूसरा स्वरूप धारण कर कुमारी भाव से संपन्न 'सरस्वती' रूप में प्रकट हो। उस रूप से तुम ब्रह्मा के माध्यम से प्रजाओं में जाओ। वाणी रूप में तुम्हारा वह स्वरूप प्रत्येक मुख में व्यापक होगा। तुम्हारे उस सरस्वती रूप में सदा सात्विक भाव और कुमारित्व बना रहेगा। इसके अतिरिक्त, किसी निमित्त से तीसरा रूप धारण कर तुम अंत:सलिला (आंतरिक जल प्रवाह वाली) 'सरस्वती नदी' बनो। तुम्हारे उस स्वरूप में चंचलता और बहिर्भाव न हो। उस रूप में भी तुम ऋतु धर्म से रहित और सदा पवित्र रहो। हे शारदे! तुम में कभी कोई अशुद्धि न रहे। वाणी इत्यादि की अशुद्धि केवल वक्ता को लगे, तुम सदा शुद्ध रहो। इस प्रकार मैंने तुम्हें तुम्हारी इच्छा के अनुसार पत्नीत्व और कुमारित्व, दोनों प्रदान किए हैं। अब और क्या चाहती हो? कहो। तब शारदा ने कहा - हे स्वामिन्! सरस्वती, शारदा, सरस्वती नदी तथा वाणी रूप में मेरे जो भी उपासक हों, वे आपके प्रताप से वैकुंठ को प्राप्त करें।

[1] अधिकमास की पंचमी को प्रातःकाल विधिपूर्वक पूजन कर, नारायण स्वरूप आपको पाकर जिस प्रकार मेरी समस्त मनोकामनाएं पूर्ण हुई हैं, उसी प्रकार आपका तथा पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का पूजन करने वाले नर-नारी आपके चरणकमलों के माध्यम से वैकुंठ को प्राप्त करें । तब श्रीहरि ने भी पुरुषोत्तम मास की पुष्टि करने वाला, सत्य फल प्रदान करने वाला तथा दुंदुभि के नाद की सार्थकता सिद्ध करने वाला वचन कहा कि 'तथास्तु'।

उसके बाद पुरुषोत्तम मास (अधिकमास) ने भी शारदा से कहा कि - जो कोई नर-नारी आपमें और मुझमें भक्ति रखेंगे, मैं पुरुषोत्तम उनका उद्धार करने वाला, दोषों को हरने वाला, सुख देने वाला तथा अभीष्ट (मनोवांछित) फल प्रदान करने वाला बनूंगा।

शारदा का यह दुर्लभ चरित्र जो कोई भी पढ़ेगा या सुनेगा, उसके लिए दुर्लभ भी सुलभ हो जाएगा। जो तर्क से परे अतर्क्य है वह भी सिद्ध होगा। अप्राप्य की प्राप्ति होगी। अनिष्ट, इष्ट (मंगल) में बदल जाएगा और असंभव भी संभव हो जाएगा। पृथ्वी पर, स्वर्ग में या अन्य कहीं भी जो कुछ दुर्लभ होगा, वह सुलभ हो जाएगा। जब इससे साक्षात् श्रीकृष्णनारायण ही प्राप्त हो जाते हों, तो अन्य वस्तुओं की तो बात ही क्या? भगवान नारायण अपनी कृपा से पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में किए गए अल्प मात्र सत्कर्म का भी असंख्य गुना फल प्रदान करते हैं।

[2] हे लक्ष्मी ! जिस प्रकार शारदा को पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की पंचमी का व्रत करने से आश्चर्यजनक सिद्धि प्राप्त हुई, उसी प्रकार इस तिथि में पूजन करने वाला मनुष्य आश्चर्यकारी भुक्ति(सांसारिक सुख) और मुक्ति(मोक्ष) को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त, पुरुषोत्तम मास (अधिकमास) की पंचमी तिथि में किए गए जप, होम, व्रत, दान, ध्यान, मंत्र जप, तप अथवा कथा-श्रवण आदि सत्कर्म हजार गुना फल देने वाले होते हैं। ऐसा कहकर, शारदा को साथ लेकर

1. अधिमासस्य पञ्चम्यां प्रातः सम्पूज्य वै क्रमात् । नारायणं यथा प्राप्ताऽस्म्यहं पूर्णमनोरथा ॥ ८३ ॥ तथा ते पूजकाश्चाधिमासस्य पूजकास्तथा । नरा नार्यः समायान्तु वैकुण्ठं तव पादयोः ॥ ८४॥
2. लब्धं लक्ष्मि ! यथा देव्या शारदाया विचित्रकम् । तथा विचित्रां भुक्तिंच मुक्तिंच लभतेऽर्चकः ॥ ९३ ॥ जपो होमो व्रतं दानं ध्यानं माला तपः श्रुतम् । पञ्चम्यां तत्कृतं सहस्त्रादिगुणं भविष्यति ॥ ९४॥

श्रीहरि वैकुंठ पधारे और सरस्वती स्वरूपा उन्हें ब्रह्मा द्वारा सर्जित प्रजा में 'वाणी' के रूप में स्थापित किया।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में पंचमी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक पांचवां (२९७) अध्याय समाप्त ।

अध्याय-६

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! अब आप सुख और संपत्ति प्रदान करने वाली, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली और पुरुषोत्तम भगवान के योग वाली दिव्य कथा सुनें।

सृष्टि के आरंभ में, पितर और स्वधा के सद्गुणों से उत्पन्न मेना, धन्या और कलावती नाम की तीन कन्याएं थीं। उन तीनों योगिनीयों ने अपने पिता के घर में विहार करते समय दुंदुभि द्वारा की गई श्रीहरि की यह घोषणा सुनी कि - यह अधिकमास मेरे स्वयं के नाम 'पुरुषोत्तम' से आरंभित किया है। इस मास में जो एक समय या दो समय का (सुबह-शाम) व्रत रखकर मेरा पूजन करेगा, उसके मनोरथ मैं पूर्ण करूंगा - ऐसा में स्वयं नारायण कह रहा हूं।

पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की शुक्ल षष्ठी के दिन प्रातःकाल यह घोषणा सुनकर तीनों कन्याओं ने विचार किया कि आज श्रीहरि का व्रत करना चाहिए, जिससे प्रसन्न होकर स्वयं नारायण हमें हमारी इच्छित वस्तु प्रदान करेंगे। उन्होंने सोचा कि - हमें पुरुषोत्तम भगवान से कुछ ऐसा मांगना चाहिए जिससे पितर को नित्य संतोष और शाश्वत तृप्ति प्राप्त हो। उसमे, पति के रूप में विष्णु की याचना कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनकी अनेक पत्नियां हैं, जिससे सौतन का दुःख सदा बना रहता है और वह दुःख समस्त सुखों का नाश करने वाला है। पिता या भाई के रूप में भी विष्णु को नहीं मांगना चाहिए, क्योंकि विवाह तक ही उनके घर में रहा जा सकता है, उसके बाद पिता या भाई का वियोग दुःख ही देता है। पुत्र के रूप में भी विष्णु की याचना नहीं करनी चाहिए क्योंकि उन्हें ताड़ना (डांटना) या शिक्षा देने में अपराध होने का भय रहता है। ससुर के रूप में उनकी मर्यादा रखनी पड़ती है जो बंधनकारी दुःख देती है। इस प्रकार, अति निकट के

अनुक्रमणिका

संबंधों में अपराध का भय है और अति दूर रहने पर सेवा नहीं हो पाती, तो फिर विष्णु को किस स्वरूप में मांगा जाए?

जब वे तीनों कन्याएं इस प्रकार परामर्श करते हुए मौन हो गईं, तब आकाशवाणी हुई - हे कन्याओं! तुम कृष्णनारायण को 'दामाद' (जमाता) के रूप में मांगो। उन्हें अपनी पुत्री दान करने से शाश्वत सर्व सुख प्राप्त होगा। पुत्री को माता के समान कहा गया है और माता-पिता अपनी पुत्री के सुख में ही स्वयं को सुखी मानते हैं। दामाद भी पुत्र के समान ही होता है, और वह दान का श्रेष्ठ पात्र होने के कारण पूजनीय और संतोष देने योग्य है। जिसकी पुत्री सदा वैकुंठनाथ के धाम में निवास करती है, वे माता-पिता पुण्यशाली हैं और अपने १०८ कुलों का उद्धार करने वाले हैं। इसलिए तुम अधिकमास का व्रत-पूजन करो और श्रीहरि को दामाद के रूप में मांगो तथा यह प्रार्थना करो कि तुम्हारी पुत्री को वहां सौतन का दुःख न हो। यह कहकर आकाशवाणी मौन हो गई। उन कन्याओं ने भी श्रीहरि को दामाद बनाने का निश्चय कर व्रत किया। छठ के दिन प्रातः स्नान कर उन्होंने तीन स्वर्ण मूर्तियों में पुरुषोत्तम, कृष्ण और नारायण का आवाहन किया। आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पंचामृत स्नान, शुद्ध जल स्नान, वस्त्र, आभूषण, कुमकुम, अक्षत, पुष्प माला, चंदन, धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, प्रदक्षिणा, दंडवत प्रणाम, छत्र, चंवर, शय्या, पादुका और फलार्घ्य आदि अर्पण कर पुष्पांजलि दी। क्षमा याचना करके "हे श्रीहरि! आप हमारे दामाद बनिए" ऐसे वरदान मांगे, हे श्रीहरि! आपके पार्षद दुंदुभि की घोषणा सुनकर हमने यह व्रत किया है, अतः आप पुत्री के माध्यम से हमें पूर्ण सुख प्रदान करें। हम नक्त (सूर्यास्त के बाद रात्रि में) भोजन कर पुनः पूजा करेंगी, ऐसी प्रार्थना करके विसर्जन करके दोपहर में उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा हवन करवाया और देवताओं, ऋषियों, मुनियों तथा पितरों को भोजन कराकर तृप्त किया। प्रसन्न होकर उन्होंने आशीर्वाद दिया कि - पुरुषोत्तम, कृष्ण और नारायण आपके व्रत का फल प्रदान करें।

सायंकाल उन्होंने केले के खंभों और तोरणों से सुशोभित मंडप करवाके, दीप मालाएं प्रज्वलित की और बीच में रत्नों से जड़ित स्वर्ण सिंहासन पर मखमल की गद्दी बिछाकर पुरुषोत्तम, कृष्ण और नारायण की मूर्तियां विराजमान कीं। अक्षत, कुमकुम और सौभाग्य द्रव्यों से पूजन कर गायन और नृत्य किया। फिर धूप, दीप, आरती, नैवेद्य और फलार्घ्य अर्पित कर वे क्षण भर के लिए ध्यान मग्न हो गईं।

उनके ध्यान में पुरुषोत्तम, कृष्ण और नारायण पधारे। उसमें मेना ने देखा कि – अत्यंत पुष्ट, व्याघ्र चर्म धारण करने वाले, अत्यंत उज्ज्वल, ब्रह्मतेज से व्याप्त, साक्षात निर्गुण ब्रह्म ही जैसे सगुण नर रूप में आए हों, ऐसे भगवान शंकर मंद मुस्कान के साथ प्रसन्नता बरसा रहे थे। उनके गोद में स्थित अपनी भावी पुत्री, उसको देखकर बार-बार "हे मेरी माता!" ऐसा कह रही थी। भगवान शंकर ने मेना से कहा – तुम मेरे अंश रूप हिमालय की पत्नी बनोगी। वहां यह तुम्हारी पार्वती नाम की कन्या होगी। तुम उस कन्या का मुझे दान देकर मुझसे परम सुख प्राप्त करोगी।

[1] पुरुषोत्तम मास के एक दिन के व्रत का फल तुम्हारे लिए इष्ट और सर्वसुखदायक सिद्ध होगा – ऐसा कहकर पुरुषोत्तम स्वरूप भगवान शंकर अदृश्य हो गए।

इसके पश्चात धन्या ने ध्यान में सिंहासन पर विराजमान, अत्यंत युवा और मनोहर, हाथ में धनुष धारण किए हुए भगवान श्री राम के दर्शन किए। उनके पास उसने अपनी भावी कन्या सीता को देखा, जो मधुर वाणी में बार-बार "हे मां!" कहकर पुकार रही थी। भगवान श्री राम ने प्रसन्न होकर कहा – तुम राजा जनक की पत्नी बनोगी और यह महालक्ष्मी 'सीता' नाम की तुम्हारी पुत्री होगी। तुम मुझे उस कन्या का दान देकर मुझसे परम सुख प्राप्त करोगी। पुरुषोत्तम मास के एक दिन के

1. पुरुषोत्तममासस्यैकदिनस्य व्रतस्य च । तवेष्टं तु फलं सर्वसुखदं संभविष्यति ॥ ५६ ॥

व्रत का फल तुम्हें मनोवांछित सुख देने वाला होगा, ऐसा कहकर भगवान नारायण अदृश्य हो गए।

तदनंतर कलावती ने पीतांबरधारी, मोर पंख का मुकुट धारण करने वाले, बाल-गोपाल और फिर वही सुदर्शन चक्रधारी, राजाधिराज, समस्त शोभाओं से अति सुंदर दिखने वाले, दिव्य सिंहासन पर स्थित श्री कृष्ण के दर्शन किए। उनके पास रूप की साक्षात प्रतिमूर्ति अपनी भावी पुत्री राधा को देखा। वह (राधा) अत्यंत प्रेम-विह्वल होकर श्री कृष्ण के कंठ में हाथ डाले हुए, मीठी वाणी में बार-बार कलावती को ''मां'' कहकर संबोधित कर रही थी। श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर कलावती से कहा - द्वापर युग में यह राधा तुम्हारी पुत्री होगी। तुम भांडीर वन के समीप इसका कन्यादान करोगी । वह मेरी मूर्धन्या और शाश्वत पत्नी होगी। पुत्री के माध्यम से तुम मुझसे सर्व-सुख प्राप्त करोगी। पुरुषोत्तम मास के एक दिन के व्रत के फल स्वरूप तुम अभिलषित सुख को प्राप्त करोगी। ऐसा कहकर श्री कृष्ण उस स्थान से अदृश्य हो गए।

इसके तुरंत बाद वे तीनों कन्याएं ध्यान से जाग्रत हुईं। प्रसन्न मुख वाली और कृतकृत्य हुई उन कन्याओं ने बार-बार भगवान नारायण को नमस्कार किया और पुष्पांजलि अर्पित कर उनका विसर्जन किया। उस रात उन्होंने कन्याओं को भोजन कराया और स्वयं पारण करके पुरुषोत्तम, नारायण और कृष्ण की मूर्तियों का दान किया।

तत्पश्चात, आश्चर्यजनक रूप से सतयुग के आरंभ में पितर ने मेना का हिमालय से, धन्या का जनक से और कलावती का वृषभानु से विवाह विधिपूर्वक संपन्न कराया। उनमें मेना को पार्वती, धन्या को सीता और कलावती को राधा, पुत्री रूप में प्राप्त हुईं। सृष्टि के प्रारंभ में पार्वती शिव को, सीता रामचंद्र को और राधा श्रीकृष्ण को सौंपकर (अर्थात परब्रह्म को ही अपना दामाद बनाकर) मेना,

धन्या और कलावती ने अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति की।

[1] श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की छठ (षष्ठी) के दिन नक्त व्रत (सूर्यास्त के बाद भोजन) करके और तीनों काल (सुबह, दोपहर, शाम) पुरुषोत्तम नारायण की श्रद्धापूर्वक पूजा करके, उन कन्याओं ने व्रत के फल स्वरूप स्वयं श्रीहरि को दामाद के रूप में प्राप्त किया। उनकी पुत्रियां क्रमशः पार्वती, सीता और राधा भगवान शंभु, राम और कृष्ण के साथ शाश्वत कैलाश, वैकुंठ और गोलोक में रमण करती हैं। उनके माता-पिता भी नित्य मुक्त हैं और उन्होंने भी अत्यंत अभीष्ट सुख तथा अक्षय कीर्ति प्राप्त की है।

[2] हे लक्ष्मी! मैं तुमसे और अधिक क्या कहूं? जब एक माता अपनी पुत्री को इस लोक और परलोक में सुखी करना चाहती हो, तब उसे पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की षष्ठी का व्रत और पूजन करना चाहिए जैसे मेना आदि ने किया था। ऐसा करने से वह दामाद के रूप में साक्षात कृष्णनारायण को प्राप्त करेगी। साथ ही, उसे भुक्ति (सांसारिक सुख), मुक्ति और अन्य सब कुछ बिना किसी विशेष प्रयास के प्राप्त हो जाएगा। यदि पुत्री के दान (कन्यादान) के लिए भगवान कृष्णनारायण जैसा सुपात्र मिल जाए, तो समझना चाहिए कि चारों पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - की पराकाष्ठा प्राप्त हो गई है।

जहां सर्वव्यापी श्रीहरि स्वयं अपनी पुत्री के साथ रमण करते हों, वहां लौकिक या अलौकिक कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। यदि पुत्री के माध्यम से नारायण संतुष्ट हो जाएं तो भगवान के संतुष्ट होने पर क्या दुर्लभ या अप्राप्य रह जाता है? हे लक्ष्मी! इस प्रकार मैंने तुम्हें नारायण की कृपा के बारे में बताया। पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में व्रत करने वालों की सभी मनोकामनाएं पुरुषोत्तम भगवान पूर्ण करते हैं।

1. एवं लक्ष्मि ! व्रतं नक्तमधिमासे प्रपूजनम् ॥ ८० ॥ षष्ठ्यां कालत्रये कृत्वा पुराणपुरुषोत्तमात् । प्राप्तं व्रतफलं प्राप्ता जामातारो हरिः स्वयम् ॥ ८१ ॥
पुत्र्यस्ताः शंभुना रामेण च कृष्णेन शाश्वते । कैलासे चाथ वैकुण्ठे गोलोके च रमन्ति हि ॥ ८२ ॥

2. किम्वधिकं च ते वक्ष्ये लक्ष्मि ! लोके परत्र च । माता स्वीयां सुपुत्रीं वै सुखिनी कर्तुमिच्छति ॥ ८४ ॥ तदा तया प्रकर्तव्यं व्रतं चाधिकमासिकम् । षष्ठ्यां व्रतं पूजनं च यथा मेनादिभिः कृतम् ॥ ८५ ॥

अनुक्रमणिका

[1] यदि व्रत करने वाली माता यह इच्छा करें कि - रूप, गुण, सामर्थ्य और विद्या आदि में श्रीकृष्ण के समान दामाद प्राप्त हो, तो वैसा ही होता है। यदि वह यह इच्छा करें कि - लोक विख्यात, राजसत्ता को चलाने वाला, महान राजा मेरा दामाद बने, तो वैसा ही दामाद प्राप्त होता है। यदि वह यह इच्छा करें कि धन-धान्य से समृद्ध, चिरंजीवी और भगवान का अनन्य भक्त मेरा दामाद हो, तो वैसा ही होता है। यदि वह यह इच्छा करें कि - गुणवान ब्राह्मण या धर्म परायण क्षत्रिय मेरा दामाद बने, तो व्रत करने वाली स्त्री वैसा ही दामाद प्राप्त करती है। यदि वह यह इच्छा करें कि - पुत्र पौत्रों से युक्त घर-जमाई मुझे सुख देने वाला हो, तो व्रत करने वाली को वैसा ही फल प्राप्त होता है।

[2] पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की षष्ठी का व्रत करके, सास जैसे दामाद की इच्छा रखती है, श्रीहरि की कृपा से वैसा ही दामाद प्राप्त करती है।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में षष्ठी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक छठा (२९८) अध्याय समाप्त ।

1. यदिच्छेद्गुणसामर्थ्य रूपविद्यादिभिः समः । कृष्णेन तुल्यो जामाता स्यादिति चेत्तथा भवेत् ॥ ९१ ॥
2. यथा तु यादृशं जामातारं वाञ्छति तं तथा । तादृशं समवाप्नोति श्वश्रूः श्रीहर्यनुग्रहात् ॥ ९६ ॥

अनुक्रमणिका

अध्याय-७

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

हे लक्ष्मी! सुनो, श्रीहरि के दुंदुभि की ध्वनि (नारायण द्वारा करवाई गई पुरुषोत्तम मास की उद्घोषणा) सुनकर सत्यलोक में स्थित विश्वकर्मा की कन्याओं ने पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का व्रत किया था। सत्यलोक, स्वर्ग और पाताल आदि लोकों के राजाओं के भवनों, नगरों, सभा मंडपों और यज्ञ मंडपों के जो निर्माता विश्वकर्मा हैं, वे नारायण के ही अंश हैं। उनकी सिद्धि और बुद्धि नाम की दो कन्याएं थीं। वे कन्याएं अत्यंत सुशील और देव-पूजिका थीं। वे नित्य प्रातःकाल स्नान करके माता-पिता के चरणों में नमस्कार करती थीं। ब्राह्ममुहूर्त में घर और देवालय में दीप जलाकर, धूप करके कीर्तन करती थीं। इसके पश्चात देवताओं को पुष्प, नैवेद्य और जल अर्पित करने के बाद दोनों घर के कार्यों में लग जाती थीं। उनमें से सिद्धि सरोवर से जल भरकर लाती थी और बुद्धि घर में झाड़ू लगाकर, पानी गरम करने के लिए चूल्हे में अग्नि प्रज्वलित करती थी। फिर वह उस गरम जल से माता-पिता को स्नान कराती थी, उतनी देर में सिद्धि बिस्तर और पलंग को समेटकर उनके स्थान पर रख देती थी।

स्नान के बाद बुद्धि माता-पिता के गीले वस्त्र धोकर सुखाती और बगीचे में जाकर देव-पूजा के लिए पुष्प लाती थी। माता-पिता के देवालय पहुंचने पर वह उनके लिए आसन बिछाती और संध्या-वंदन के लिए जल तथा देव-पूजा के लिए तुलसी दल, कमल, मोगरा, चंपक आदि पुष्प तैयार रखती थी। साथ ही चंदन, अक्षत, कुमकुम, पंचामृत, शुद्ध जल, पूजा के पात्र, घी की बत्तियां, शक्कर, विभिन्न फल, नैवेद्य और तांबूल (भोजन के बाद खानेका पान) इत्यादि सामग्री सजाकर देती थी। पूजा करते समय वह माता-पिता को दस बार नमस्कार और दस प्रदक्षिणा करके सेवा के लिए पास खड़ी रहती और दर्शन करती थी।

अनुक्रमणिका

इसी बीच सिद्धि भी वहां आकर उसी प्रकार माता-पिता को नमस्कार और प्रदक्षिणा करती थी। फिर वह घर आकर रसोई की सभी सामग्री तैयार कर बुद्धि को बुलाती और दोनों मिलकर विभिन्न प्रकार के भोजन बनाती थीं। इसके बाद माता-पिता को दूध पिलाकर, पूजा के पात्र मांजकर और सुबह के कार्यों से निवृत्त होकर दोनों कन्याएं विद्याभ्यास करती थीं।

मध्याह्न (दोपहर) में माता-पिता और अतिथियों को भोजन कराने के बाद वे स्वयं भोजन करतीं। फिर रसोई और बर्तनों की शुद्धि करके, जल भरना और अन्न साफ करना जैसे कार्य करतीं। दोपहर के बाद के समय में क्षण भर विश्राम करतीं और फिर श्रृंगार करके कथा श्रवण तथा देव-दर्शन आदि के लिए जाती थीं। सायंकाल के समय वे श्री कृष्ण की षोडशोपचार से पूजा करतीं, माता-पिता को भोजन करातीं और स्वयं भोजन करके उनकी शय्या तैयार करती तथा उनकी चरण सेवा करती थीं। दिन के शेष कार्यों को पूर्ण कर और अध्ययन करके वे थोड़ी देर विश्राम करती थीं। प्रातःकाल जल्दी उठकर पूर्व में अभ्यास की गई विद्या का मनन कर वे पुनः अपने नित्य कर्म में लग जाती थीं।

उनकी सेवा से प्रसन्न होकर माता-पिता उन्हें अत्यंत भाव से आशीर्वाद देते थे कि - "तुम सुखी रहो, तुम ईश्वर में प्रेम रखने वाली हो इसलिए समय आने पर तुम सेवनीय श्रीहरि को प्राप्त करोगी।" इस प्रकार नारायण को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाली उन कन्याओं ने सत्यलोक में अधिकमास की सप्तमी के प्रातःकाल दुंदुभि द्वारा की गई श्रीहरि की घोषणा सुनी कि -

[1] ब्रह्मांड में रहने वाले जो भी मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का व्रत करेंगे, उन स्त्री-पुरुषों या अन्य सभी को उनकी इच्छित वस्तु प्रदान करने वाला और अलभ्य (दुर्लभ) वस्तुओं का लाभ कराने वाला मैं पुरुषोत्तम नारायण हूं।

1. करिष्यन्ति यथाशक्तिये ब्रह्माण्डगता जनाः । नरा नार्योऽथवा त्वन्ये तेषामभीष्टदायकः ॥ ३६ ॥ अलभ्यलाभदाताऽस्मि ह्यहं श्रीपुरुषोत्तमः ।

अनुक्रमणिका

चाहे मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक, दैनिक हो, या फिर केवल एक रात्रि का, या मात्र एक समय का ही व्रत क्यों न हो – उपवास, फलाहार, दुग्धपान, जलपान, कंदमूल का आहार, एक समय भोजन, या केवल तिल मात्र का आहार ग्रहण करके व्रत करें; और जल, फल, फूल, कुमकुम, अक्षत, चंदन, नैवेद्य तथा तांबूल (पान) आदि से मेरी पूजा करके, मुझ पुरुषोत्तम नारायण से दुर्लभ वरदान प्राप्त करें। अन्य महीनों में जो पुण्य फल कठिन परिश्रम और कष्ट सहने से प्राप्त होता है, उससे करोड़ गुना पुण्य मैं इस मास में अत्यंत अल्प कर्म (थोड़ी सी भक्ति) करने पर भी प्रदान करूंगा।

मात्र सुपारी के दान से ब्रह्मा का पद, केवल जलपात्र के व्रत मात्र से विष्णु का पद, मात्र एक समय भोजन करने से गोलोक की अधिकारिता, और केवल नक्तव्रत (शाम को संध्या के बाद भोजन) करने से नारायण की समानता, मात्र पत्र और पुष्प अर्पित करने से इंद्र पद, और केवल दीप दान करने से मैं उन्हें सूर्य-चंद्र आदि के समान देह प्रदान करने वाला बनूंगा। यदि नर, नारी, कुमार या कुमारिका – मुझ पुरुषोत्तम को या मेरी लक्ष्मी को भी चाहेंगे, तो मैं उन्हें वह भी प्रदान करूंगा। मुझसे वरदान प्राप्त करो। मेरी महाकृपा से प्राप्त होने वाले पुण्यबल का संचय करो।

[1] श्रीहरि का पार्षद दुंदुभि यह घोषणा करता है कि – यह सत्य है, यह सत्य ही है, असत्य बिल्कुल नहीं है। "हे प्रजा जनों! अधिकमास का व्रत करके अपनी इच्छित मनोकामनाएं पूर्ण करो।" सप्तमी के दिन प्रातःकाल ऐसी – वाणी सुनकर, मेरे दुंदुभि को प्रणाम कर, हाथ में रखी सामग्रियों से उसका स्वागत कर और पुष्पों से पूजन करके वे दोनों कन्याएं (सिद्धि और बुद्धि) आनंदित हुईं।

तभी दुंदुभि के द्वारा पुनः श्रीहरिके कृपा पूर्ण वचन सुनाई दिए – हे कुमारिकाओं! यदि तुम मुझ पुरुषोत्तम को पति रूप में पाना चाहती हो, तो केवल

1. सत्यं सत्यं नाऽनृतं वै घोषयत्येव दुन्दुभिः । अधिमासव्रतं कृत्वा गृह्णन्तु स्वेप्सितं प्रजाः ॥ ५१ ॥

एक समय भोजन करने के व्रत मात्र से ही मैं तुम्हारा पति बनूंगा। आज दोपहर में जो भी पूजन सामग्री उपलब्ध हो, उससे मेरी पूजा करो और मिष्ठान्न का भोग लगाओ, जिससे तुम मुझ पुरुषोत्तम को प्राप्त कर लोगी। यह सुनकर, उस दुंदुभि को अपने लिए शुभ मानकर और यह जानकर कि उनके भाग्योदय का समय आ गया है, उन्होंने विधिपूर्वक माता-पिता का पूजन किया, उन्हें भोजन कराया और घर के कार्यों से निवृत्त हुईं। सिद्धि और बुद्धि ने नारायण को पति रूप में पाने की इच्छा से, घर में उपलब्ध सामग्रियों - पुष्प, चंदन, अक्षत, धूप-दीप, नैवेद्य और आरती आदि से भगवान नारायण की स्वर्ण मूर्ति का पूजन किया। उन्होंने मैनफल (मदन फल) का अर्घ्य अर्पण कर प्रार्थना की - "हे नारायण! आप हमारे पति बनिए।" जैसे ही उन्होंने हाथ जोड़े, साक्षात् श्रीकृष्ण नारायण अपनी कटाक्ष भरी दृष्टि से उन्हें निहारते हुए वहां प्रकट हो गए। दोनों कन्याओं के मस्तक पर हाथ रखकर और प्रिये! कहकर उन्हें संबोधित किया। उन्हें अपने हृदय (वक्षःस्थल) से लगाया और प्रेम भरी नजरों से बार-बार देखते हुए, "मैं तुम्हें मिल गया हूं" कहकर वे अदृश्य हो गए।

इसके बाद, वे दोनों कन्याएं जाग्रत और स्वप्न अवस्था में, कभी पार्वती की गोद में बैठे सूंड वाले गणपति को देखतीं, तो कभी सूंड रहित, मुरली धारण किए गोलोक में स्थित श्रीकृष्ण को निहारतीं। क्षण भर बाद वे शंकर के पुत्र रूपवान और युवा गणेश को देखकर मुग्ध हो जातीं। स्वप्न में वे देखतीं कि लड्डु बनाते समय गणेश उनके पास खड़े हैं और उनकी सूंड द्वारा बार-बार दिए गए लड्डुओं का प्रेमपूर्वक आस्वाद कर रहे हैं। जागने पर वे बार-बार उस स्वप्न का स्मरण करती थीं।

अंततः समय आने पर, विश्वकर्मा ने उन कन्याओं का वृत्तांत जानकर गणेशजी को बुलाया और विधि-विधान से उनका विवाह गणेश जी के साथ

संपन्न कराया। विवाह के पश्चात एक महान आश्चर्य हुआ – गणेश जी ने तब श्रीकृष्ण और गणेश, ये दो रूप धारण किए। साथ ही सिद्धि और बुद्धि के भी दो-दो रूप हो गए। श्रीकृष्ण गरुड़ पर विराजमान होकर, राधा के समान उन कन्याओं को साथ लेकर अपने शाश्वत गोलोक धाम चले गए। वहां दिव्य रूप वाली सिद्धि और बुद्धि के साथ श्रीकृष्ण दिव्य लीलाएं करते हैं।

इस प्रकार, श्रीहरि ने उनके व्रत का मोक्ष दायक फल प्रदान किया। साथ ही, गणेश रूप में उन दोनों कन्याओं को अपनी गोद में बिठाकर प्रेम पूर्वक निहारते हुए उन्हें नवयौवन भाव का फल दिया।

हे लक्ष्मी! सिद्धि और बुद्धि ने पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की सप्तमी के दिन एक समय भोजन का व्रत करने से और जो भी वस्तुएं उपलब्ध थीं, उनसे पुरुषोत्तम नारायण का पूजन करने से श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त किया और लोक में भी अक्षय कीर्ति प्राप्त की।

[1] इस प्रकार, जो कन्या श्रीकृष्ण को पति रूप में पाने की इच्छा से पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की सप्तमी के दिन एक समय भोजन करके पुरुषोत्तम नारायण का पूजन करेगी वह अवश्य ही, जहां कहीं भी प्रकट हुए दिव्य मनुष्याकृति कृष्णनारायण को अपने पति के रूप में प्राप्त करेगी। साथ ही, उनके साथ अनेक सुख-भोग भोगकर अंत में निश्चित ही गोलोक या वैकुंठ को प्राप्त करेगी।

[2] इसलिए पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में आने वाले व्रत को अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इससे अनायास (बिना किसी कठिन प्रयास के) ही मुक्ति प्राप्त होती है और फिर पुनर्जन्म शेष नहीं रहता।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में सप्तमी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक सातवां (२९९) अध्याय समाप्त ।

1. एवं या कन्यका कुर्यात्पुरुषोत्तमपूजनम् । सप्तम्यां त्वेकभुक्तंच वाच्छया कृष्णसत्पतेः ॥ ८४ ॥ साऽवश्यं यत्र कुत्रापि प्रादुर्भूतं स्वकं पतिम् । कृष्णनारायणं दिव्यं मानवं सा त्ववाप्स्यति ॥ ८५ ॥
2. तस्माद् व्रतं प्रकर्तव्यमधिमासप्रसंभवम् । अनायासेन मुक्तिः स्यात् पुनर्जन्म न शिष्यते ॥ ८७ ॥

अध्याय-८

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! सुनो, सृष्टि के आदिकाल में युगारंभ के समय जब ब्रह्माजी तप कर रहे थे, तब उन्हें क्लेश (कष्ट) हुआ। उस समय उनके ललाट से तामसी सृष्टि उत्पन्न हुई। उस भयंकर, क्रूर और जगत का नाश करने वाली सृष्टि का संहार करने के लिए उन्होंने रुद्र को आज्ञा दी। जब रुद्र द्वारा उन सभी का विनाश कर दिया गया, तब ब्रह्मा जी का घर शून्य हो गया। यह देखकर ब्रह्माजी के मन में उदासीनता आ गई कि -

[1] जिस घर में बालक नहीं है या बालक का रुदन (रोना) नहीं है, और जहां बच्चों की किलकारियां, क्रीड़ा (खेल-कूद) या उनका कलह सुनाई नहीं देता, वह घर कालरात्रि में यमराज के घर के समान है। पुत्र या पुत्री के बिना स्वर्ग भी नरक के समान लगता है।

[2] पुण्यशाली व्यक्ति को सुख देने वाली संतानें प्राप्त होती है, जबकि दुष्कर्मी को दुःख देने वाली और दरिद्र संतानें प्राप्त होती है। प्रारब्धजन्य ऋणानुबंध ही संतान प्राप्ति में मुख्य कारण है। ऐसा विचार कर ब्रह्माजी ने पुत्र दायक नवीन तप करने का निश्चय किया और अपनी इंद्रियों का संयम करके तप करने लगे।

तब उनके मन से नगाड़ा, घंटा और शंख - ये तीन पुत्र; आरती, घंटी तथा झालर - ये तीन पुत्रियां और कांसा, पंच पात्र तथा धूपिया (धूप दानी) - ये तीन नपुंसक प्रकट हुए। गर्भाधान के समय संकल्प में जैसी भावना होती है, वैसी ही संतान प्राप्त होती है।

हे लक्ष्मी! शंख, घंटा, नगाड़ा, घंटी, झालर और कांसा - ये जन्म लेते ही कोलाहल (ध्वनि) करने लगे, जिससे ब्रह्माजी के घर से उदासी दूर हो गई और वे

1. यत्र गृहे न वै बालो बालानां रोदनं न वा । क्रीडनं कलहो नो न श्रूयते बालभाषितम् ॥ ६ ॥ तद् गृहं कालरात्रेः वै फेरुराजगृहोपमम् । विना पुत्रं विना पुत्रीं स्वर्गं तु नरकायते ॥ ७ ॥
2. सुखदानि त्वपत्यानि जायन्ते पुण्यशालिनाम् । दुःखदानि दरिद्राणि जायन्ते दुष्प्रकर्मिणाम् ॥ १४ ॥ ऋणानुबन्ध एवात्र कारणं प्राग्विसर्गजः । नूतनं चापि कर्तव्यं स्वपत्यदायकं तपः ॥ १५ ॥

अत्यंत प्रसन्न हुए। वे नौ बालक नित्य प्रातःकाल और सायंकाल साथ मिलकर कृष्णनारायण का पूजन और कीर्तन करते थे, जिससे ब्रह्माजी को बहुत आनंद मिलता था।

समय बीतने पर, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की अष्टमी की सुबह गंगा तट पर इन बालकों ने श्रीहरि के महा-दुंदुभि का नाद सुना - "आज मैं पुरुषोत्तम यथार्थ वचन कहता हूं कि यह पुरुषोत्तम मास स्वयं पुरुषोत्तम ही है। इसलिए मूर्तिमान, अमूर्त या बालक भी अल्प प्रयास से इस मास का व्रत कर उत्तम फल प्राप्त करेंगे।" साथ ही, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन अपनी शक्ति के अनुसार उपवास, एक समय भोजन या नक्त व्रत (सूर्यास्त के बाद भोजन) करके, षोडशोपचार (१६ उपचारों) से श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि - हे कृपासिंधु! मैंने यथाशक्ति यह व्रत और पूजन किया है। यह निर्विघ्न पूर्ण हो और आप मुझे इच्छित फल देने वाले बने।

महादुंदुभि के इन वचनों को सुनकर आश्चर्यचकित हुए वे ब्रह्मा के बालक उसके पास आकर पूछने लगे - आप कौन है? कहां से आए है? आप क्या कह रहे है? आप क्या देते है? आप कहां रहते है? आप क्या करते है? और आपके स्वामी कौन है?

तब महा दुंदुभि ने कहा - मैं वैकुंठ का पुत्र हूं। मैं वैकुंठ लोक से आया हूं और वहां नारायण के धाम में सदा मेरा वास है। आरती के समय बजना (वादन) ही मेरा कार्य है। मेरे स्वामी कृष्णनारायण है, जिनकी आज्ञा से मेरे पिता वैकुंठधाम का रूप लेकर नारायण की सेवा में नित्य तत्पर रहते है। मैं नारायण और अपने पिता की आज्ञा से, वे जो घोषणा करने के लिए भेजते है, वह घोषणा सर्वत्र करके पुनः वैकुंठ चला जाता हूं। मेरे दो स्वरूप है - एक, चतुर्भुज पार्षद के रूप में मैं नित्य श्रीहरि की सेवा में रहता हूं और दूसरा स्वरूप मेरा दुंदुभि (नगाड़ा) है। मेरे

स्वामी के अनुग्रह से मैं अनेक रूप धारण करने में समर्थ हूं। मेरी सेवा से संतुष्ट होकर भगवान श्रीहरि मुझे अपनी प्रसादी का श्रेष्ठ भोजन प्रदान करते है। साथ ही, मेरे पास नारायण के समान ही भवन, उद्यान और उपकरण है।

यह सुनकर ब्रह्मा के पुत्रों ने दुंदुभि से पूछा कि – "आपकी तरह कोई उन श्रीहरि के वैकुंठ को कैसे प्राप्त कर सकता है?"

तब महा दुंदुभि ने कहा की – पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के किसी भी दिन उपवास करके, फलाहार करके या नक्तभोजन (सूर्यास्त के बाद भोजन) करके एक समय, दो समय या तीनों समय श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए। उस अल्प पूजन और व्रत का भी बहुत बड़ा फल प्राप्त होता है और उससे संतुष्ट होकर भगवान वैकुंठ प्रदान करते है। वैकुंठ, गोलोक और अक्षरधाम – ये उत्तरोत्तर (एक से बढ़कर एक) श्रेष्ठ है। व्रत करने वाला इनमें से जिसकी इच्छा रखता है, श्रीहरि उसे वही धाम प्रदान करते है।

यह सुनकर ब्रह्मा के पुत्रों ने पूछा कि – क्या वैकुंठ से परे गोलोक और गोलोक से परे अक्षरधाम अलग-अलग स्थान है? वहां कौन से स्वामी निवास करते है? क्या हम उन्हें प्राप्त कर सकते है?

तब महा दुंदुभि ने कहा कि- वैकुंठ के स्वामी लक्ष्मीनारायण है, गोलोक धाम के स्वामी राधाकृष्ण है और ब्रह्मलोक अर्थात अक्षर धाम के स्वामी पुरुषोत्तमनारायण है, जिनके समान या जिनसे परे दूसरा कोई नहीं है।

[1] वे परमेश्वर अनादि श्रीकृष्ण नारायण है, जिनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके मैं इस व्रत और पूजन की घोषणा कर रहा हूं कि- पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के स्वामी वे पुरुषोत्तम नारायण, व्रत करने वाले की प्रत्येक इच्छा को अपनी कृपा से पूर्ण करते है। आपको जिसे पाने की इच्छा हो, उन्हीं की मूर्ति का पूजन करें।

वैकुंठ से करोड़ों गुना अधिक सुख गोलोक में है, और गोलोक से भी

1. अनादिश्रीकृष्णनारायणः सोऽस्ति परेश्वरः । यस्याऽऽज्ञां मस्तके धृत्वा घोषयामि व्रतार्चनम् ॥ ७० ॥ अधिक मासस्य स स्वामी ददाति व्रतिने हि तत् । व्रत्ती यदीहते दिव्यं सर्वं ददात्यनुग्रहात् ॥ ७१ ॥

असंख्य गुना सुख अक्षरधाम में है। अक्षरधाम से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, उसके सामने ब्रह्मा, विष्णु और महेश के लोक भी अत्यंत अल्प सुख वाले प्रतीत होते है। यदि उन पुरुषोत्तमनारायण को पाने की इच्छा है, तो आज अधिक शुक्ल अष्टमी के दिन यथाशक्ति और भाव पूर्वक व्रत रखकर उनका पूजन करें। इससे श्रीहरि आपकी भावना के अनुसार फल प्रदान करेंगे।

यह सुनकर ब्रह्मा के पुत्र अत्यंत आश्चर्यचकित होकर वहीं नृत्य करने लगे। उन्होंने उस महा दुंदुभि का पूजन किया और कहने लगे कि - वे पुरुषोत्तम जहां है, हम वहीं जाएंगे। उनकी प्राप्ति के लिए व्रत और पूजन किस प्रकार करना चाहिए? वह हमें बताएं। आज अधिक शुक्ल अष्टमी को उपवास रूपी व्रत रखकर हम नारायण, श्रीकृष्ण और पुरुषोत्तमनारायण का पूजन करेंगे, जिससे समस्त लोकों में हमारी गति हो सके। इसके बाद, वे महा दुंदुभि को सत्कार पूर्वक अपने घर ले गए और वहां नारायण की भांति ही उनका पूजन किया। उन्हें भोजन कराया और चरण-सेवा की। उनकी विविध सेवा से प्रसन्न होकर महा दुंदुभि ने व्रत विधि बताकर कहा, ''आप आदरपूर्वक व्रत करें; मैं ब्रह्मांड में घोषणा करके पुनः यहां आता हूं। आपसे मिलने के बाद ही मैं वैकुंठ जाऊंगा।'' ऐसा कहकर उन्होंने प्रस्थान किया।

तत्पश्चात, ब्रह्मा के उन बालकों ने प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल स्नान करके लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण और पुरुषोत्तमनारायण का षोडशोपचार से पूजन किया और भगवान की मूर्ति के सम्मुख प्रार्थना की - ''हमें सदा अपनी सेवा में रखें। दासत्व सर्वोपरि है, इसलिए हमें सेवा-मुक्ति प्रदान करें।'' ऐसी प्रार्थना कर वे भगवान के सामने भावपूर्ण और स्वर-बद्ध नृत्य के साथ कीर्तन करने लगे। उसी समय महा दुंदुभि वहां आ पहुंचे और ब्रह्मा के पुत्रों के व्रत और पूजन से प्रसन्न होकर पुरुषोत्तम नारायण, श्रीकृष्ण तथा नारायण भी वहां प्रकट हुए और उनसे कहने लगे, ''आपकी भक्ति और महा दुंदुभि की सेवा-पूजा से हम आप पर अत्यंत

संतुष्ट है। इसलिए, आपको जो प्रिय हो वह वरदान मांग लें। तब ब्रह्मा के उन नौ पुत्रों ने कहा - हे परमेश्वर! हमें अपने धाम ले चलिए और अपनी सेवा में रखिए। साथ ही, जिस-जिस लोक में जहां-जहां आपका मंदिर हो, वहां-वहां हम सदा सेवा करेंगे। हम साथ जन्मे भाई-बहन है, इसलिए हमारा परस्पर वियोग कभी न हो। आप हमें जहां भी रखें, सेवा में साथ ही रखें। उनके ऐसे वचन सुनकर परमेश्वर ने दुंदुभि से पूछा, "हमारी आज्ञा से आप ही कहें कि इन लोगों को हम क्या दें?"

तब दुंदुभि ने कहा - किंकर अर्थात् सेवक और दास सर्वत्र दुर्लभ होते है। स्वामी का सर्वस्व दास-वर्ग के लिए ही होता है, इसलिए दास बने हुए ब्रह्मा के इन पुत्रों को क्या नहीं दिया जा सकता? इन्हें अक्षरधाम, गोलोक, वैकुंठ तथा जहां-जहां आपके मंदिर या आपके अवतारों की मूर्तियां है, वहां-वहां वास दीजिए। मैं भी इन लोगों के साथ रहूंगा क्योंकि ये मेरे जैसे ही भक्त है। आपकी तरह इनके भी असंख्य रूप हों और वे आपके साथ ही रहें। प्रत्येक मंदिर में प्रातः और सायंकाल, आरती अग्नि के साथ आपके समक्ष नृत्य करें, नगाड़ा और घंटा आपकी जय-ध्वनि करें; झांझ (कांसा) मोक्ष की घोषणा करें कि - हे देहधारियों! आरती के समय श्रीहरि का भजन करने वाले बनो। इस समय जो श्रीहरि का भजन नहीं करते, जो विरोध करते है, वे नास्तिक और निंदक यमराज द्वारा दंड पाएंगे। घंटी हाथ में रहकर नृत्य पूर्वक मधुर गान करें, झालर गायन कर लोगों को बुलाए और शंख तीर्थ-जल के साथ आपके समक्ष भ्रमण करें। पंच पात्र अर्घ्य दे और चरणामृत धारण करें। धूपिया (धूपदानी) मंदिर में सुगंध फैलाए और मैं (महा दुंदुभि) दूर स्थित सभी का आह्वान करूंगा कि - हे मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छा रखने वाले) नर-नारियों! यहां भगवान के दर्शन के लिए आओ और दुष्ट यहां से दूर चले जाओ। इस प्रकार, हम सभी मिलकर आपकी सेवा करेंगे। इस व्रत का ऐसा फल ब्रह्मा के इन पुत्रों को प्रदान करें और मेरी तरह इन सभी को भी अक्षरधाम और गोलोक में द्विभुज रूप (दो भुजाओं वाला) तथा वैकुंठ में

चतुर्भुज रूप (चार भुजाओं वाला) प्राप्त हो, और वहां-वहां उनका रूप आपके समान ही हो। प्रत्येक मंदिर में स्थित रहने के कारण उनके असंख्य रूप हों और आपके जैसी ही सत्कार्यता, पवित्रता, पूजनीयता और रक्षणीयता उन्हें प्राप्त हो।

इन ब्रह्मा के नौ बालकों की निंदा करने वाले नरकगामी बनें। इन लोगों की मूर्ति (आकार) के खंडित होने पर उसे जोड़ने वाले, इनकी प्रतिमा का दान करने वाले, प्रतिमा बनाने वाले, जीर्णोद्धार करने वाले तथा इनकी सेवा करने वालों को आपके धाम की प्राप्ति हो।

जब दुंदुभि ने ऐसा कहा, तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और नारायण ने 'तथास्तु' कहकर उन्हें दिव्य स्वरूप प्रदान किया और अपने-अपने धाम ले गए। उन-उन धामों में आरती, घंटी और झालर लक्ष्मी के समान हरि-सेवा में तत्पर और दिव्य रूप वाली हुईं। शंख, घंट, नगाड़ा, झांझ पंच पात्र और धूपिया (धूप दानी) भी सौम्य और दिव्य रूप धारी मुक्त होकर श्रीहरि की सेवा में लग गए। अन्य स्थानों पर जहां जैसी अपेक्षा थी, वहां वे वैसे ही रूपों में विराजमान हुए।

हे लक्ष्मी! इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की अष्टमी का व्रत करने से ब्रह्मा के वे नौ बालक दिव्यता को प्राप्त हुए। जो कोई भी इस प्रकार यह व्रत करेगा, वह भी श्रीहरि के धाम को प्राप्त करेगा।

[1] इस प्रकार, इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में किया गया अत्यंत अल्प व्रत-पूजन भी बहुत अधिक फल देता है। अल्प कर्म से भी जो अनंत फल का लाभ प्राप्त होता है, वह (मात्र) परमेश्वर की ही कृपा है। जब तक ब्रह्मा रहेंगे और जब तक यह पृथ्वी रहेगी, तब तक आरती और घंटी आदि भगवान के मंदिर में स्थित रहेंगे, उसके पश्चात वे सदैव भगवान के परम धाम में स्थित रहेंगे। इसलिए यह व्रत अवश्य करना चाहिए। इस व्रत के समान पुण्य फल देने बरसाने वाला दूसरा कोई और व्रत नहीं है।

1. एवं वै मलमासेऽत्र कृतं स्वल्पं फलेद् बहु । अल्पादानन्त्यलाभो यः कृपा सा पारमेश्वरी ॥ १४१ ॥

इसके बाद ब्रह्माजी ने विचार किया कि – मेरे पुत्र तो मुक्ति को प्राप्त हो गए। अब मैं पुनः सर्जन करूं ताकि मेरा घर शून्य न रहे। तत्पश्चात उन्होंने सृष्टिकर्ता के रूप में योगेश्वरों, सनकादिकों तथा ऋषियों आदि की मानस सृष्टि की तथा अन्य जीवों का भी सर्जन किया और सृष्टि के प्रवाह को चलता हुआ देखकर उनको शांति मिली।

जो भी मनुष्य इस कथा को पढ़ेगा या सुनेगा, उसे निश्चित ही पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के व्रत का फल प्राप्त होगा।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, अष्टमी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक आठवां (३००) अध्याय समाप्त

अध्याय-९

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा – हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम के योग वाली, दिव्य और पापों का नाश करने वाली पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की कथा सुनो।

पुरुषोत्तम से वासुदेव प्रकट हुए। वासुदेव से भूमा पुरुष हुए। भूमा पुरुष से विराट पुरुष हुए और विराट के मुख से अग्नि उत्पन्न हुए। अग्नि का पुत्र सुवर्ण (सोना) हुआ। सृष्टि के आरंभ में अत्यंत उष्ण (गर्म) होने के कारण, दाह उत्पन्न करने के कारण और भस्म कर देने की प्रकृति के कारण अग्नि का कोई सत्कार नहीं करता था। यहां तक कि उत्सवों और भोजनों में भी सभी उन्हें दूर ही रखते थे। कुछ स्थानों पर तो अग्नि को प्रताड़ित भी होना पड़ा। अतः अपनी ज्वाला जैसी उष्ण गुण वाली जिह्वाओं को छिपाकर, ताकि उन्हें कोई पहचान न सके, वे लोकालोक पर्वत पर चले गए। भूख से व्याकुल अग्निदेव लोकालोक पर्वत के शिखर का भक्षण कर गए। अग्नि के उदर में जो कुछ भी पचा, वह उनके पुत्र रूप में परिवर्तित हो गया, अर्थात वह संपूर्ण भूमि सुवर्णमयी (सोने की) हो गई। इस प्रकार, वे अग्निदेव लोकालोक पर्वत की प्रदक्षिणा करते जाते और जहां भी उन्हें भूख लगती, वे पर्वत के शिखर का भक्षण कर लेते। इस तरह उनके द्वारा भक्षण किए गए शिखरों के कारण लोकालोक पर्वत की समस्त भूमि सुवर्णमयी हो गई। तत्पश्चात् वह अग्नि ब्रह्मांड के समान लोकालोक पर्वत के विशाल शिखर का भक्षण कर उसके मध्य भाग में चले गये और वहां थोड़ी देर विश्राम किया। अग्नि से तपने (पचने) के कारण वह महा शिखर स्वर्ण का हो गया, जिससे यह ख्याति हुई कि मेरु पर्वत स्वर्ण का है। जड़ और सुगंध हीन होने के कारण उस स्वर्ण का भी कहीं कोई सम्मान (मूल्य) नहीं था। सभी देहधारी कल्पवृक्ष से अपनी इच्छित वस्तुएं प्राप्त कर अपना जीवन निर्वाह करते थे, इसलिए किसी को यह बोध नहीं था

कि – अग्नि क्या है? स्वर्ण क्या है? अग्नि का कार्य क्या है? या स्वर्ण का कार्य क्या है?

अग्नि और स्वर्ण ने विचार किया कि प्रयोजन के बिना कभी किसी का मूल्य नहीं होता। मयूर द्वारा त्यागे गए पंख को भी जब कृष्ण ने अपने मुकुट में धारण किया, तब वह पूजनीय और मूल्यवान बना। साथ ही, यदि कोई महापुरुष किसी वस्तु को धारण कर ले, तो भी उसका मूल्य बढ़ जाता है। कृष्ण ने 'कौस्तुभ' नामक पत्थर को अपने वक्षःस्थल पर धारण किया, इसलिए वह मूल्यवान हो गया। उन्होंने सोचा, ''मैं और मेरा पुत्र बिना किसी प्रयोजन या किसी महापुरुष के सान्निध्य के मूल्यवान नहीं बन पाएंगे। विद्या, राज्य सत्ता, सिद्धि, ऐश्वर्य, धनवानता, कीर्ति या भक्ति यदि जीवन में हो, तभी वह जीवन श्रेष्ठ है; अन्यथा मृत्यु ही वरणीय है। इसलिए आज हम मृत्यु का वरण करेंगे। ऐसा सोचकर वे मृत्यु को प्राप्त करने के लिए मेरु शिखर पर चढ़ गए। इतने में सत्यलोक में पुरुषोत्तमनारायण की यह महा-घोषणा सुनाई दी कि – अधिक मास में कोई भी मनुष्य शोक न करें। जो मनुष्य नारायण का स्मरण कर – पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन व्रत-पूजन करेंगे, वे अभीष्ट फल प्राप्त करेंगे। फलाहार, दुग्ध पान, एक समय भोजन या नक्त(सूर्यास्त के बाद) भोजन के रूप में व्रत रखकर जो श्रीकृष्ण का एक या दो समय पूजन करेंगे और उनकी शरण में आएंगे वे चाहे मान-सम्मान रहित हों, दरिद्र हों, महत्वहीन हों या निष्प्रयोजन हों, वे भी उत्तम पद को प्राप्त करेंगे।

मैं दुंदुभी पुरुषोत्तमनारायण का यह संदेश देता हूं कि – दुःखी, क्लेश युक्त, तिरस्कृत, आश्रयहीन, अल्प मूल्यवान, जड़ या उग्र स्वभाव वाला, जो कोई भी मेरी शरण में आकर अधिक मास में व्रत करेगा, वह सभी दुःखों से पार जाएगा और मैं सदा उसकी रक्षा करूंगा। इस मास में मेरा पूजन करने वाले, सभी के लिए पूजनीय बनेंगे। जिसका कोई सहारा न हो, वह यदि – पुरुषोत्तम मास (अधिक

मास) और मुझ पर भरोसा रखेगा, तो मैं उसे संभालूंगा - ऐसा मैं पुरुषोत्तम कहता हूं। इस मास में भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करें। दूध से बनी हुई खीर (पायस) का मुझे भोग लगाएं और अपनी इच्छित वस्तु की प्रार्थना कर उसे मुझसे प्राप्त करें। मात्र अनुग्रह(कृपा) के कारण, इस मास में किए गए थोड़े से कर्म का भी मैं बहुत बड़ा फल दूंगा। जो लोग पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में व्रत या पूजा नहीं करेंगे, उन्हें इससे बड़ी हानि और घाटा कभी नहीं होगा। इसलिए आइए और अधिक मास की शुक्ल नवमी का व्रत-पूजन कर वरदान प्राप्त कीजिए।

[1] इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में जो कोई मुझे पत्र, पुष्प, फल या जल अर्पित करेगा, उसे मैं श्रेष्ठ रत्न आदि प्रदान करूंगा। इसके अलावा, जो मुझे भक्ष्य, भोज्य, लेह्य तथा चोष्य - इन चार प्रकार के भोजन का भोग (नैवेद्य) लगाएगा, उसे मैं करोड़ गुना फल अर्पित करूंगा। इसलिए, स्थावर-जंगम (जड़-चेतन), उत्तम-कनिष्ठ, भाग्यवान या भाग्यहीन - सभी इस अधिक मास का आश्रय लेकर, मुझ पुरुषोत्तमनारायण को संतुष्ट करें और मेरी कृपा से अक्षरधाम, स्वर्ग, पुत्र, पति, पत्नी, घर, धन, कीर्ति, शाश्वत पूजन तथा सबसे उत्तम स्थान आदि प्राप्त करें। ऐसी उदार घोषणा सुनकर अग्नि और सुवर्ण अत्यंत धैर्यवान हुए और उन्होंने अपने शोक का त्याग कर दिया। साथ ही, वे दुंदुभी की शरण में गए और उन्हें नमस्कार कर आदरपूर्वक उनका पूजन किया।

अग्नि ने अपने पुत्र सुवर्ण को दुंदुभि के चरणों में नमस्कार कराया। उस बालक को देखकर दुंदुभि ने उसे हाथों से उठा लिया और कुछ देर तक मस्तक तथा कंधे पर रखकर वापस अग्नि को सौंप दिया। गदगद वाणी में अग्नि ने दुंदुभि से कहा - हमारा रक्षक या सत्कार करने वाला कोई नहीं है, यदि आपके वचनों के अनुसार हम आज नक्त (सूर्यास्त के बाद) भोजन रूप व्रत करें और श्रीहरि का पूजन करें, तो क्या श्रीहरि हमारे रक्षक बनेंगे?'' ऐसा कहते हुए अग्नि की आंखों

1. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मयि सन्नियोक्ष्यते । अहं तस्मिन्नियोक्ष्यामि श्रेष्ठं रत्नादिकं तथा ॥ ४७ ॥ भोज्यं भक्ष्यं तथा लेह्यं चोष्यं यो मेऽर्पयिष्यति । तस्मै कोटिगुणितं तदर्पयिष्येऽप्यहं तथा ॥ ४८ ॥

से आंसू पृथ्वी पर गिरे, वे आंसू की बूंदें चांदी बन गईं।

ऐसे भग्न हृदय वाले अग्नि को देखकर दुंदुभि ने उन्हें आश्वासन दिया कि आज पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की नवमी को नक्त (सूर्यास्त के बाद) भोजन रूपी व्रत करके कृष्णनारायण की पूजा करो। उसमें नारायण की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर, पंचामृत से स्नान कराकर वस्त्र, आभूषण, अक्षत, चंदन, नैवेद्य, तांबूल, फल, धूप, दीप, आरती, प्रदक्षिणा और स्तुति आदि से पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को प्रसन्न कर प्रार्थना करो कि – "हे प्रभु! हम असत्कृत, निराधार, आश्रयहीन और अनादृत (बिना आदर के) तथा दाहक है, हमारा उद्धार करने वाले बनिए। हम जड़, गंधहीन, निर्गुण और तुच्छ है, हमारा कल्याण कीजिए। हे कृपासिंधु! हे प्रभु! हमें गणना योग्य (महत्वपूर्ण) बनाइए।" इस प्रकार स्तुति कर फल-अर्घ्य और पुष्पांजलि अर्पित कर श्रीहरि को विसर्जित करें। साथ ही मध्याह्न और सायंकाल में भी इसी प्रकार पूजा करें। इससे नारायण आप पर प्रसन्न होकर आपका उद्धार करेंगे।

महा दुंदुभि के वचन सुनकर अग्नि और सुवर्ण ने नक्त (सूर्यास्त के बाद) भोजन व्रत रखा और लक्ष्मीनारायण की स्वर्ण मूर्ति बनाकर विधिपूर्वक पूजन किया। रात्रि में पूजा कर जब वे प्रार्थना कर रहे थे, तभी भगवान लक्ष्मीनारायण उनके सम्मुख प्रकट हुए। मंद-मंद मुस्कराते हुए पुरुषोत्तमनारायण को देखकर अग्नि और सुवर्ण ने प्रार्थना की – हमारा उद्धार कीजिए। उष्ण और दाहक स्वभाव वाले मेरा कहीं कोई स्थान नहीं है। मुझे भोजन (हविष्य) दीजिए तथा मेरे मूर्ख पुत्र सुवर्ण को यश प्रदान कीजिए और सदैव अपनी सेवा दीजिए।

उनकी प्रार्थना सुनकर नारायण ने कहा – हे अग्नि! आप शोक का त्याग करें। मैं आपके व्रत से संतुष्ट हूं। आप मेरे मुख से प्रकट हुए है, इसलिए सदैव मेरा मुख बने रहें। हे पुत्र! मैं आपको वरदान देता हूं कि – यज्ञ आदि में कुंड के मध्य आप में ही देवों का भोजन आहुति रूप में स्थापित होगा। अग्निहोत्र का हवन भी

आपमें ही होगा। आपके माध्यम से ही मैं भोजन ग्रहण करूंगा। यज्ञ की अग्नि के बिना मुझे जो कुछ भी भोजनादि अर्पित किया जाएगा, वह मैं आपके प्रति अनुग्रह (प्रेम) के कारण कदापि ग्रहण नहीं करूंगा।

आज से मैं 'अग्निमुख भगवान' के रूप में प्रसिद्ध होऊंगा, इसलिए मेरे लिए जो भी भोजन होगा, सब आपमें ही अर्पित किया जाएगा। वह सब मैं आपके मुख से ही भक्षण करूंगा। शमी वृक्ष की लकड़ियों में आपका अदृश्य रूप से विशेष वास होगा। इसके अतिरिक्त हीरा आदि में भी सर्वत्र आपका आश्रय होगा। जिस प्रकार वस्तु का दहन (नाश) न हो, उसी प्रकार सर्वत्र आप का वास हो। कल्पवृक्ष का लय (अंत) होने पर, उस समय रसोई आदि में भोजन पकाने के लिए घर-घर में आपका ही प्रज्वलन होगा। चिंतामणि आदि का नाश होने पर, दीपक के रूप में आपका सम्मान घर-घर में सर्वथा होगा। तब तक आप धैर्य रखें। साथ ही, दूसरे दिव्य स्वरूप में मेरे पार्षद बनकर धाम में मेरी नित्य सेवा करें।

प्रथम युग व्यतीत होने पर, अग्नि के बिना किसी का भी कोई कार्य सिद्ध नहीं होगा तब आपके मूल्य, सम्मान, सत्कार, आदर और पूजन की पराकाष्ठा होगी, इसमें कोई संशय नहीं है। आपके इस पुत्र सुवर्ण को भी आज से मैं मस्तक पर धारण करता हूं। मेरे मुकुट, कुंडल और आभूषण सुवर्ण के होंगे। इसलिए वह सर्वत्र सत्कार पाएगा। कल्पवृक्ष आदि का लय होने पर वह मूल्यवान, गोपनीय तथा संरक्षित होगा। साथ ही, मैं सुवर्ण को दिव्य स्वरूप प्रदान करता हूं। अतः वह अक्षरधाम में 'हाटक' नामक महान पार्षद बनकर निवास करेगा और सदा मेरी सेवा करेगा। कालांतर में आवश्यक कार्य आने पर, वही सुवर्ण महातेजस्वी 'हाटकेश्वर' नामक महादेव के रूप में पाताल और पृथ्वी पर प्रकट होगा। मेरे प्रताप से, मेरे अवतार रूप में वह सर्वत्र पूजित होगा और भक्तों को मुक्ति देने वाला महेश्वर बनेगा। जिस प्रकार मैं पुरुषोत्तम सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त हूं, वैसे ही आप और सुवर्ण सृष्टि में व्याप्त हों और सभी से सर्वथा सत्कार और रक्षण प्राप्त करें। ऐसा

कहकर, उन्हें दिव्य रूप प्रदान कर श्रीहरि अपने धाम ले गए और दूसरे स्वरूप से उन्हें समस्त वस्तुओं में वास दिया।

इस वृत्तांत (कथा) को जानकर देवता अग्नि के माध्यम से भोग ग्रहण करने लगे और उसमें अर्पित किए गए भोजन से तृप्त होने लगे तथा स्वर्ण के आभूषण धारण करने लगे। इस प्रकार, अग्नि और सुवर्ण ने पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की नवमी का व्रत और पूजन करके मुक्ति, महत्ता और प्रशंसा प्राप्त की। साथ ही, सर्वत्र स्थित होने (हर जगह मौजूद रहने) के बावजूद वे सदा पवित्रता, वृद्धि और शाश्वत सुख को प्राप्त हुए।

अधिक मास की इस शुक्ल नवमी के व्रत-पूजन की कथा जो भी मनुष्य पढ़ेंगे या सुनेंगे, वे स्त्री-पुरुष भुक्ति (सांसारिक सुख) और मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त करेंगे।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, नवमी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक नववां (३०१) अध्याय समाप्त ।

अध्याय-१०

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में श्रीहरि के अनुग्रह(कृपा) का कोई अंत नहीं है, मैं उसकी कथा कहता हूं। अधिक मास के शुक्ल पक्ष की नवमी की रात्रि को विष्णु ने दुंदुभी से पूछा कि - ''क्या तुम सब जगह यह घोषणा कर रहे हो या केवल कहीं-कहीं ही कर रहे हो? तब दुंदुभी ने कहा - हे प्रभु! मैं जिस दिशा को लक्ष्य करता हूं, उस दिशा में सुबह से लेकर शाम तक घोषणा करता हूं। कई देहधारी (मनुष्य) इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का व्रत करके, अपने द्वारा किए गए इस अल्प व्रत-पूजन से आपकी कृपा का लाभ प्राप्त कर रहे है। इतने में वहां पृथ्वी देवी प्रकट हुईं। उन्होंने प्रार्थना की - हे भगवन! आप इस समय पुरुषोत्तम मास में असंख्य प्राणियों का अपनी असीम कृपा से मोक्ष कर रहे है, इसलिए मैं बहुत सुखी हूं। मुझे भी इस मास में आदरपूर्वक पुरुषोत्तम का व्रत करना है।

पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वाले मोक्ष, स्वर्ग, धन-धान्य आदि संपत्ति, पुत्र, पौत्र, यश और लाभ आदि जो जो इच्छा रखते है, वे सब आप अपनी कृपा से प्रदान करते है , इसलिए सब कुछ वैकुंठ के समान (मंगलमय) हो गया है। मैं धन्य हूं कि आपका यह दुंदुभी पृथ्वी पर मुक्त कंठ से सभी को आपकी उदारता की उद्घोषणा कर रहा है। हे दयालु! आपने अधिकमास पर जो कृपा की है, वह कृपा मुझ पर ही हुई है क्योंकि जीव पाप मुक्त और पुण्य के भागी बने है । साथ ही, इस पुरुषोत्तम मास में जो लोग आपका व्रत-पूजन करेंगे, वे सभी पापों से रहित होकर दूसरों का उद्धार करने में समर्थ होंगे, इसलिए मैं कभी पाप के भार से पीड़ित नहीं होऊंगी । इस प्रकार, भविष्य में होने वाले कल्याण और स्वास्थ्य लाभ से मैं अत्यंत संतुष्ट हूं।

हे प्रभु! मैं दुर्जनों के भार से पीड़ित हो रही हूं और काल के प्रभाव से भविष्य में भी ऐसे ही लोग उत्पन्न होंगे। वे ब्राह्मण जो वेद और वैदिक कर्मों से रहित है, मुझ पर भार रूप है । सत्य और अहिंसा से रहित, चोरी और व्यभिचार करने वाले, दूसरों को लूटने वाले, दयाहीन, झूठा कलंक लगाने वाले, दूसरों का अहित चाहने वाले और निंदा करने वाले लोग मुझ पर बोझ है। जो स्नान, संध्या और देव-पूजन आदि नहीं करते; यज्ञों में विघ्न डालते है; सूतक (अशुद्धि के नियम) को नहीं मानते; नास्तिक है; भगवान की उपासना नहीं करते; पितृ-तर्पण नहीं करते; परोपकार, दान और पुण्य से रहित है; अपनी जिह्वा (स्वाद) और वासना की तृप्ति के लिए अधर्म करते है और अयोग्य स्त्रियों में वीर्य दान करते है - ऐसे लोग मुझ पर भार रूप है। क्रूर स्वभाव वाले, मीठा बोलकर ठगने वाले, विश्वासघाती, कृतघ्न (एहसान न मानने वाले), बाल-घाती, कुटुंब-घाती, माता-पिता और स्त्री की हत्या करने वाले, अभक्ष्य (जो खाने योग्य न हो) का भक्षण करने वाले, दूसरों की जीविका नष्ट करने वाले, मारण-उच्चाटन आदि (तांत्रिक अभिचार) करने वाले, गर्भपात करने वाले, पुरुषार्थ हीन और सदा आलस करने वाले लोग भी मुझ पर भार रूप है। दूसरों के भाग्य पर जीवित रहने वाले, निर्बल को डराने वाले, कुमार्ग पर चलने वाले, निर्दोष को दंड देने वाले, पूज्य का पूजन न करने वाले, मान्य को सम्मान न देने वाले, पाल्य (जिनके पालन की जिम्मेदारी हो) का पालन न करने वाले और आश्रितों की रक्षा न करने वाले लोग मुझ पर भार रूप है। अपने कर्तव्यों से विमुख शिष्य और गुरु, आज्ञाकारी न होने वाली पुत्री, हित न चाहने वाली माता और सास, जिनमें एकता नहीं है और सदा कलह रहता है ऐसे दंपति, पति की सेवा से घृणा करने वाली पत्नी, पत्नी को दुःख देने वाले पति, पिता के आदेश को न मानने वाले पुत्र, ब्रह्मचारी होकर गृहस्थ जैसा आचरण करने वाले, वानप्रस्थ होकर भी तृष्णा (लोभ) रखने वाले और दूध, दहीं, घी, तेल जैसी जीवन उपयोगी वस्तुओं में मिलावट करने वाले लोग भी मुझ पर महान भार है।

[1] बाहर से उज्वल, हृदय से घातक और भीतर से काले ऐसे मनुष्य, स्वर्गवासी देवता या पाताल वासी दानव – वे सभी मुझ पर भार स्वरूप है। समय-समय पर वे पाप कर्म करने वाले मुझे पीड़ित करेंगे। जिन्हें पुरुषोत्तम में श्रद्धा नहीं है, जिनके पास पुरुषोत्तम मास का व्रत नहीं है, माहात्म्य नहीं है, भक्ति नहीं है और आस्तिक भाव नहीं है, वे पृथ्वी पर भार रूप है। हे हरे! समय-समय पर ऐसे भार का नाश करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए? जिसमें मेरा कल्याण हो, वह बताइये।

इस प्रकार प्रार्थना कर रही उस पृथ्वी से दुंदुभी ने कहा – हे पृथ्वी! क्या आपने मेरी की हुई घोषणा नहीं सुनी? पुरुषोत्तम मास में व्रत करें, उसका शाश्वत पुण्य होगा, जिससे भगवान पुरुषोत्तम आपकी रक्षा करने वाले बनेंगे। इस समय श्रीहरि प्रसन्न होकर फल देने वाले है, इसलिए आप पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की दशमी का व्रत करें। व्रत के अंत में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण आपको दर्शन देंगे और सर्वदा भार से आपकी रक्षा करेंगे।

हे पृथ्वी! अभी आप सत्यलोक में जाइए और वहां इस पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की दशमी का व्रत कीजिए। यदि व्रत के अंत में श्रीकृष्ण दर्शन न दें, तो कल सायंकाल आप पुनः यहां आइएगा। इसके बाद श्रीहरि और दुंदुभि को नमस्कार करके पृथ्वी सत्यलोक में अपने निवास स्थान पर चली गईं।

पृथ्वी देवी ने पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन प्रातःकाल स्नान करके, श्रीहरि की स्वर्ण की मूर्ति बनाकर, उनका ध्यान, आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान (पंचामृत और शुद्ध जल), वस्त्र, अलंकार, पुष्प, चंदन, अक्षत, सौभाग्य द्रव्य, धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, प्रदक्षिणा, दंडवत, स्तुति, विशेष अर्घ्य और मंत्र-पुष्पांजलि आदि षोडशोपचार अर्पित कर प्रार्थना की – हे परमेश्वर! नक्त (सूर्यास्त के बाद) भोजन के व्रत के साथ पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की शुक्ल पक्ष की दशमी को किया गया यह पूजन आपकी कृपा

1. बहिः शुक्ला हृत्सु रक्ताश्चात्मनि कृष्णकज्जलाः । मर्त्या देवा दानवा वा स्वर्गाः पातालवासिनः ॥ ५७ ॥ सर्वे ते भाररूपा वै पापकर्माण एव ते । पीडयेयुश्च मां काले येषां माहात्म्यमेव न ॥ ५८ ॥ नाऽधिमासव्रतं येषां न येषां पुरुषोत्तमः । न भक्तिश्चास्तिकभावस्ते स्युर्भारात्मका भुवि ॥ ५९ ॥

से पूर्णता को प्राप्त हो।

प्रातःकाल इस प्रकार पूजन करके, मध्याह्न (दोपहर) में श्रीहरि को भोजन कराया और फिर सायंकाल षोडशोपचार विधि से पूजन कर श्रीहरि के सम्मुख धून, कीर्तन और नृत्य करते हुए अर्धरात्रि तक जागरण किया। मध्यरात्रि में साक्षात् श्रीपुरुषोत्तमनारायण पधारे और कहा - हे पृथ्वी! मैं तुम्हारे व्रत से संतुष्ट हूं। तुम्हें जो अभीष्ट हो वह मांग लो, क्योंकि अधिकमास में व्रत करने वालों का सर्वथा भला करना ही मेरा व्रत (नियम) है। इसलिए सुलभ या दुर्लभ जो भी तुम्हारी इच्छा होगी, उसे मैं पूर्ण करूंगा। तब पृथ्वी ने परमेश्वर से कहा - हे नाथ! रक्षक स्वरूप आपके बिना मैं कुछ नहीं चाहती। मुझे ऐसा दिव्य रूप प्रदान कीजिए कि मैं सदा आपकी सेवा में रहूं। साथ ही, मेरे लोक में अधर्म, दुर्गुण और भार स्वरूप बने हुए लोगों के विनाश के लिए आप अवतार धारण करें। पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के अलावा अन्य महीनों में प्रजा द्वारा किए गए पापों के विनाश के लिए आप मुझमें निवास करें, जिससे मेरी सदा रक्षा हो। हे जनार्दन! आप दिव्य रूप में या भौतिक रूप में मुझ पर पधारें। यदि आपका भौतिक रूप मुझ पर संभव हो तो मैं अपने पुत्र के रूप में आपका प्रेम पूर्वक लालन-पालन करूंगी। यह सुनकर कृष्णनारायण ने पृथ्वी को रमा के समान दिव्य रूप प्रदान किया। श्रीहरि उस दिव्य रूप धारिणी वसुमति को लेकर वैकुण्ठ पधार गए। वहां पृथ्वी नित्य श्रीहरि की सेवा करती है। उनका दूसरा रूप ब्रह्मांड के पृथ्वी-आवरण वाले स्तर में स्थित किया, जिससे वे समस्त प्राणियों की अधिष्ठात्री 'भूदेवी' बनीं। और उनका तीसरा रूप यह 'भूमि' (पार्थिव रूप) बना, जिसमें जब-जब आवश्यकता होगी, तब-तब भार उतारने (दुष्टों के संहार) के लिए श्रीहरि ने अवतार लेने की प्रतिज्ञा की।

श्रीहरि ने कहा - हे पृथ्वी! तुमने मुझे पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की दशमी के व्रत से अत्यंत संतुष्ट किया है।

[1] इसलिए चारों युगों में उन-उन कार्यों के लिए मैं अवतार धारण करूंगा। उनमें दस मुख्य अवतार और आवश्यकतानुसार अन्य गौण दिव्य स्वरूपों को धारण करके, मैं उन-उन रूपों में तुम्हारी रक्षा करूंगा। दानवों और दैत्यों का विनाश करके तुम्हें सुख प्रदान करूंगा। ऐसा कहकर श्रीहरि अदृश्य हो गए।

तब पृथ्वी ने पुनः पुष्पांजलि अर्पित की, व्रत की समाप्ति की और दुंदुभी को नमस्कार कर पृथ्वी के आवरण में अपना निवास किया। हे लक्ष्मी! इस प्रकार पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की दशमी का व्रत करके वह वैकुंठ वासिनी वसुमती नाम की श्रीहरि की दासी बनी।

युग-युग में और दिन-प्रतिदिन पृथ्वी पर मेरे आविर्भाव (अवतार) होते रहते है। मेरी उस प्रतिज्ञा के कारण पृथ्वी को समस्त लाभ प्राप्त है, ऐसा लाभ मैंने अन्य किसी को कभी नहीं दिया है।

[2] पुरुषोत्तम मास में थोड़े से (अल्प) व्रत के द्वारा भी जो कोई मनुष्य जो कुछ भी इच्छा रखता है, उसको मैं वह सब प्रदान करता हूं, इसमें कोई संदेह नहीं है। जो कोई भी इस वसुमती की कथा को पढ़ेगा या सुनेगा, वह पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की दशमी के व्रत का पुण्य प्राप्त करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, दसवी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक दसवां (३०२) अध्याय समाप्त।

1. अतो युगचतुष्के वै तत्तत्कार्यार्थमेव ह। अवतारान् ग्रहीष्यामि दश मुख्यांस्ततोऽपि च ॥ १००॥ गौणानन्यान् यथापेक्षं बहून् वै दिव्यविग्रहान्। तेन तेन स्वरूपेण करिष्यामि तवाऽवनम् ॥ १०१ ॥
2. यद्यद् वाञ्छति यः कोऽपि स्वल्पेनाऽपि व्रतेन मे। तत्तत्तस्मै प्रददामि नकारस्तत्र नाऽस्ति हि ॥ १०८ ॥

अध्याय-११

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की एकादशी की दिव्य कथा सुनो। ब्रह्मा के वक्षः स्थल(हृदय) से मूर्तिदेवी के साथ धर्मदेव प्रकट हुए। मूर्तिदेवी धर्मदेव के शरीर में सदा तिरोभूत (अदृश्य रूप में स्थित) रहती है और धर्मदेव जहां प्रकट होते है, वहां वे उनके साथ प्रकट होती है। लोक रीति के अनुसार, वे दक्ष की पुत्री के रूप में जन्म लेकर पुनः धर्मदेव की पत्नी बनती है। इसके अतिरिक्त, जब मूर्तिदेवी धर्मदेव में अदृश्य रूप में रहती है, तब वे अविवाहित और कुमारी अवस्था में सत्यलोक में ब्रह्मा के घर रहकर ब्रह्मचारी अपने स्वामी धर्मदेव की सेवा करती है। उस स्थिति को केवल ब्रह्मा ही जानते है , अन्य कोई नहीं जानता। बाला (मूर्तिदेवी) बचपन से ही स्नान, पूजा, जप, हवन, ध्यान, वृद्धों को नमन, वंदन और पति-सेवा आदि कार्य करती है। दया, शांति, सत्य, सरलता, संतोष और परोपकार जैसे गुण मूर्तिदेवी में निवास करते है। सिद्ध शरीर वाली वे तप का आचरण करती है। वह नित्य प्रातःकाल स्वर्‌गंगा से भीगे वस्त्रों में अपने घर आकर, पति को नमस्कार कर श्रीकृष्ण की पूजा करती है। इसके अतिरिक्त, वे पति को स्नान कराकर और उनका पूजन कर उन्हें भोजन, जल तथा फल आदि अर्पित कर उनकी सेवा करती है। इस प्रकार सदा प्रातःकाल देव-पूजा और पति-सेवा करके वे धर्मदेव के शरीर में लीन हो जाती है। धर्मदेव भी उनकी इस अनुवृत्ति (आज्ञा पालन) और सेवा-भक्ति से अत्यंत संतुष्ट होकर शुभ आशीर्वाद देते है कि - हे मूर्ति! तुम नित्य पति-सेवा में तत्पर रहकर सुखी रहो। साथ ही, लोक-रीति के अनुसार देह धारण कर मेरे साथ विवाह करके सौभाग्य, सत्पुत्र और समृद्धि से युक्त हो। तुम्हारी नित्य भक्ति के फल स्वरूप साक्षात् पुरुषोत्तमनारायण तुम्हें प्राप्त हो।

पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन प्रातःकाल नित्य की भांति वह मूर्तिदेवी स्वर्गंगा में स्नान करने गईं, वहां उन्होंने पुरुषोत्तमनारायण का उद्घोष सुना कि आज पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी है। इस एकादशी के व्रत से संतुष्ट हुए श्रीकृष्णनारायण इस लोक और परलोक का इच्छित सुख देने वाले होते है।

[1] पुरुषोत्तमनारायण कहते है कि – मैं अधिक मास के अन्य दिनों के व्रतों का जो फल देता हूं, उससे करोड़ गुना फल अधिक मास की एकादशी के व्रत का देता हूं। अन्य सभी महीनों की एकादशी का व्रत करने से जो फल मिलता है, उससे अरबों गुना पुण्य मैं अधिक मास की एकादशी करने से दूंगा। पुरुषोत्तम मास पुण्य स्वरूप है। एकादशी का दिन पुण्य स्वरूप है और एकादशी का स्वामी ऐसा पुरुषोत्तम मैं स्वयं पुण्य स्वरूप हूं। मेरी आज्ञा से जो भक्ति पूर्वक एकादशी का व्रत करेगा, उसे मैं यथेष्ट (इच्छा अनुसार) फल दूंगा। मैं इस व्रत के कर्ता के मन में जैसी जैसी इच्छा होगी, वैसा-वैसा परार्ध तुल्य (अत्यधिक श्रेष्ठ) फल दूंगा। साथ ही, यदि मेरा धाम, मेरी लक्ष्मी, मेरा सिंहासन, सिद्धियां, चमत्कार, ऐश्वर्य, मेरे मुकुट-आभूषण आदि की इच्छा करोगे, तो वह भी दूंगा। मैं अधिक मास में जैसी कृपा बरसाता हूं, वैसी कभी नहीं बरसाता। अधिक शुक्ल एकादशी का व्रत करके अल्प प्रयास मात्र से अनंत फल ग्रहण करें।

[2] अधिक मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत करने वाले के लिए अलग से यज्ञ करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, न ही अलग से तप करने की और न ही पृथक रूप से तीर्थ यात्रा करने की आवश्यकता होती है। इस अधिक मास की एकादशी के फल में ही सब कुछ सम्मिलित है।

इस व्रत के कर्ता को 'पयोव्रत' या 'पुत्रकामेष्टि यज्ञ' अलग से करने की आवश्यकता नहीं रहती। पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की एकादशी के व्रत से

1. यद् ददाम्यधिमासस्य दिनेष्वन्येषु वै व्रतान् । ततः कोटिगुणं दास्ये फलमेकादशीव्रते ॥ २३ ॥ एकादशीनामन्यासां व्रतेन यत्फलं भवेत् । ततोऽर्बुदगुणं पुण्यं दास्ये ह्यस्या व्रतेन वै ॥ २४ ॥
2. नात्र यज्ञाः पृथक् कार्या नात्र तप्यं तपः पृथक् । तीर्थे नात्र पृथक् कार्यं ह्येकाहस्य फले हि तत् ॥ ३३ ॥

अनुक्रमणिका

ही मैं उसे पुत्र प्रदान करता हूं। इस व्रत को करने वाले को 'ज्योतिष्टोम यज्ञ' भी पृथक रूप से नहीं करना पड़ता; एकादशी के व्रत से ही मैं उसे स्वर्ग देने वाला बनता हूं। इस व्रत को करने वाले के लिए राजसूय यज्ञ करना भी शेष नहीं रहता। केवल पुरुषोत्तम मास की एकादशी के व्रत मात्र से ही मैं उसे सार्वभौम पद (चक्रवर्ती पद) प्रदान करता हूं। जिसने पुरुषोत्तम मास की एकादशी पर मुझे फल और जल आदि अर्पित किए है , उसे अग्निष्टोम से क्या प्रयोजन? मैं उसे विराट पद प्रदान करूंगा।

[1] (जो कोई) पुरुषोत्तम मास की एकादशी का व्रत करके मुक्ति, संपत्ति, सिद्धि, योग और ऐश्वर्य आदि जो कुछ भी चाहेगा वह मैं पुरुषोत्तमनारायण उसे प्रदान करूंगा। जीवन भर फलाहार करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य मेरे आश्रित भक्त केवल पुरुषोत्तम मास की एकादशी का व्रत करके प्राप्त करें। पूरे जीवन काल तक एक समय भोजन करने से जो फल मिलता है, वह फल मैं अपने आश्रितों को पुरुषोत्तम मास की एकादशी के व्रत से शीघ्र ही दे देता हूं।

अत्यंत कठिन 'महाकाली व्रत' केवल पुत्र रूपी नश्वर फल देने वाला है, जबकि पुरुषोत्तम मास की एकादशी का व्रत पुत्र, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाला है। इसलिए, केवल एक दिन के इस व्रत से ही अन्य कठिन व्रतों की तुलना में कहीं अधिक पुण्य प्राप्त होता है।

[2] पुरुषोत्तम मास की एकादशी का व्रत करने के बाद, एक हजार वर्षों तक केवल वायु का आहार करने वाले कठिन व्रत की भी कोई आवश्यकता शेष नहीं रहती। कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के समय जो सुवर्ण आदि से विभूषित एक हजार कन्याओं का दान करें और उन प्रत्येक कन्याओं को एक हजार स्वर्ण मुद्राओं की दक्षिणा तथा सुवर्ण के अलंकारों से सुसज्जित सौ दासियां दे; प्रत्येक दासी के

1. यां मुक्तियां च सम्पतिं यां सिद्धिं योगमैश्वरम् । यद्यद् वाञ्छति यत् कृत्वा तद् दास्येऽत्र दिने व्रते ॥ ३९ ॥ यावज्जीवं फलाहारैर्यत् सुपुण्यं समर्ज्यते । तत्पुण्यं यान्तु वै चैकादशीव्रतेन मे जनाः ॥ ४० ॥ एकभुक्तंकृतं येनाऽऽजीवनं तत्फलं त्वहम् । ददाम्यधिकमासैकादशीव्रतेन मेंऽजसा ॥ ४१ ॥

2. सहस्त्रवर्षपर्यन्तं वाय्वाहारं व्रतं तु यत् । पृथक् तन्नास्ति कर्तव्यं ह्येकादश्या व्रते कृते ॥ ४९॥ सहस्त्रकन्यकादानं यत्र कन्या विभूषिताः । प्रत्येकं स्वर्णसाहस्त्रमुद्राश्च दक्षिणास्तथा ॥ ५० ॥ प्रतिकन्यं तु दासीनां शतं स्वर्णविभूषितम् । प्रतिदासि च हस्तीनां शतं त्वम्बालिकायुतम् ॥ ५१ ॥ प्रतिहस्ति तुरगाणां शतं स्वर्णविभूषितम् । प्रत्यश्वं गोवृषभाणां शतं द्वन्द्वं रथान्वितम् ॥ ५२ ॥ रथं रथं प्रति दोग्ध्रीगवां चापि शतं शतम् । गां गां प्रति ह्यजानां च शतं शतं ददेत्तु यः ॥ ५३ ॥ अजां अजां प्रति वृत्तिं क्षेत्रं गृहं ददेच्च यः । तस्य दातुः कुरुक्षेत्रे फलं सूर्यग्रहे तु यत् ॥ ५४ ॥ तस्माल्लक्षगुणं पुण्यं ददाम्येकादशीव्रते ।

साथ अंबारी युक्तसौ हाथी, प्रत्येक हाथी के साथ सुवर्ण से विभूषित सौ अश्व (घोड़े), प्रत्येक अश्व के साथ वृषभ (बैल) की जोड़ी वाले सौ रथ, प्रत्येक रथ के साथ दूध देने वाली सौ गायें, प्रत्येक गाय के साथ सौ बकरियां और प्रत्येक बकरी के साथ जीविका के लिए खेत और घर का दान करें - उसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे भी लाख गुना पुण्य मैं एकादशी के व्रत का दुंगा। मनुष्यों! मैं पुरुषोत्तम नारायण, शाश्वत पुण्य का अक्षय भंडार हूं। मेरे पुण्यों का कोई अंत नहीं है, इसलिए वर्षा की भांति इस पुण्य को ग्रहण करो। पुरुषोत्तम मास की एकादशी का व्रत करने वाले को मैं उन्मत्त त्यागी की भांति अपनी पत्नी लक्ष्मी भी दे देता हूं। अरे ! मैं स्वयं को भी समर्पित कर देता हूं, तो फिर दूसरी वस्तुओं की तो बात ही क्या? ऐसा लाभ फिर कभी नहीं मिलेगा।

पुरुषोत्तम विषयक ऐसी घोषणा सुनकर, मूर्तिदेवी ने जन्म-लग्न और पुरुषोत्तम को पुत्र रूप में पाने की इच्छा की। उन्होंने अत्यंत नम्र भाव से दुंदुभी को नमस्कार किया और पूछा कि ''मुझे इस व्रत की विधि बताइए।

तब दुंदुभी ने १०८ उपचारों द्वारा श्री लक्ष्मीनारायण भगवान की पूजा विधि का वर्णन सुनाया और कहा कि - इस प्रकार जो कोई भी पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत करता है, उसके लिए संसार में कुछ भी करना शेष नहीं रहता (अर्थात उसे पूर्ण फल की प्राप्ति होती है)।

पुरुषोत्तम मास श्रीहरि का निवास स्थान है, एकादशी श्रीहरि के शरीर से उत्पन्न हुई है तथा उस एकादशी के अधिष्ठाता देव स्वयं श्रीहरि है । इस प्रकार इन तीनों का संयोग महा पुण्यमय है, इसलिए यह सबसे अधिक श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है। फिर इसमें पुरुषोत्तमनारायण की कृपा भी प्राप्त हुई है, तो अब इससे अधिक और क्या हो सकता है? हे मूर्ति! आप मेरे कहे अनुसार एकादशी का व्रत करें, जिससे परमात्मा आपकी मनोकामना पूर्ण करेंगे।

तब मूर्ति ने विनयपूर्वक कहा कि - मेरे पास कोई पूजा सामग्री नहीं है, मैं तो

यहां प्रच्छन्न रूप (गुप्त रूप) से रहती हूं, तो आपके द्वारा बताया गया पूजन मैं कैसे कर सकती हूं? मैं शुभ जन्म, लग्न और श्रीहरि को पुत्र के रूप में पाना चाहती हूं परंतु ऐसा महापूजन किए बिना यह कैसे संभव है?

ऐसा कहकर मुझे एकादशी का व्रत करना है यह सोचते हुए वह कन्या भग्न हृदय (टूटे मन) से रोने लगी। उतने में ही स्वयं भगवान नारायण कृपा करके दुंदुभि के सामने प्रकट हुए और कन्या के आंसू पोंछते हुए कहने लगे – "हे माता! मैं आपको नमस्कार करता हूं। आप शोक न करें। आप पूजनीय है , आपको जो भी प्रिय हो (इच्छित हो), वह मैं आपको देता हूं। मैं सदैव भाव से संतुष्ट होता हूं। भाव के बिना यदि कोई हजारों उपचारों (सामग्रियों) से मेरा पूजन करें, तब भी मैं संतुष्ट नहीं होता और यदि कोई भक्तिभाव से मात्र पत्र-पुष्प या जल से मेरा पूजन करें, तो वह पूजन मुझे संतोष प्रदान करने वाला होता है। हे मां! आप मानसिक १०८ उपचारों द्वारा मेरा पूजन करें। उस मानसी पूजा को मैं अत्यंत भाव से स्वीकार करूंगा और आपको एकादशी व्रत का अभीष्ट फल प्रदान करूंगा।" ऐसा कहकर श्रीकृष्णनारायण ने मूर्ति के चरणकमलों में मातृभाव से पुत्र की भांति नमस्कार किया, तब मूर्तिदेवी शोक का त्याग कर प्रसन्न हुईं और धीरे से कृष्ण से कहने लगीं – हे कृष्ण! मैं लौकिक जन्म की इच्छा रखती हूं। मैं अपने पति धर्मदेव के साथ वैदिक विवाह चाहती हूं और अलौकिक स्वरूप वाले आपको पुत्र के रूप में पाना चाहती हूं। मेरे हृदय में जो अभिलाषा थी, वह मैंने कह दी; अब जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा करें। तब अत्यंत प्रसन्न होकर श्रीहरि कहने लगे कि – मैं आपको वचन देता हूं कि मैं आपकी इन अभीष्ट इच्छाओं को पूर्ण करूंगा। आप अपने पति धर्मदेव से पूछकर दक्ष प्रजापति के यहां जन्म धारण करें। वे दक्ष आपका विवाह धर्मदेव के साथ करवाएंगे। मैं आपकी गोद में भाई सहित बाल रूप ग्रहण करूंगा। इसलिए आप कल व्रत की समाप्ति कर दक्ष की मानसी पुत्री बनें। आपके विवाह के पश्चात धर्मदेव हिमालय में निवास करेंगे। वहां मैं आप से

अनुक्रमणिका

नर, नारायण, हरि और कृष्ण - इन चार पुत्रों के रूप में प्रकट होऊंगा और सदा ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर, आपको सुख देते हुए आपके घर में निवास करूंगा। ऐसा कहकर और पुनः नमस्कार कर पुरुषोत्तमनारायण अदृश्य हो गए। मूर्तिदेवी ने भी एकादशी का व्रत और मानस पूजन किया। द्वादशी के दिन सुबह मानसी पूजा और पारण करके, धर्मदेव की आज्ञा लेकर वे दक्ष के घर गईं और वहां मानसी पुत्री के रूप में प्रकट हुईं। इसके अतिरिक्त, दक्ष ने श्रद्धा-मैत्री आदि अन्य बारह कन्याएं भी अपने संकल्प से प्रकट कीं। उन तेरह कन्याओं का विवाह धर्म के साथ कराया गया। समय बीतने पर मूर्ति (भक्ति) देवी के माध्यम से श्रीहरि नर-नारायण, कृष्ण और हरि-इन चार रूपों में प्रकट हुए।

[1] हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम मास में केवल व्रत के संकल्प मात्र से ही पूर्ण व्रत का फल प्राप्त हो जाता है, तो फिर जो मनुष्य अंगों (नियमों) सहित विधि-विधान से व्रत करता है, उसके लिए फल में क्या शेष रह सकता है?

इसलिए, शाश्वत और अक्षय पुण्य प्रदान करने वाला तथा मोक्ष देने वाला एकादशी के समान दूसरा कोई व्रत नहीं है। जो लोग इस दिन प्रातःकाल संकल्प करके यथाशक्ति उपलब्ध सामग्रियों से पूजन और व्रत करेंगे, उनकी भक्ति के वश में होकर मैं स्वयं उनके पुत्र रूप में प्रकट होकर सदा उनके घर में निवास करूंगा और व्रत करने वाले उस दंपति तथा उनके पूरे कुल को सुख प्रदान करूंगा।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, एकादशी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक ग्यारहवां (३०३) अध्याय समाप्त ।

1. इति ते कथितं लक्ष्मि मासे वै पुरुषोत्तमे ॥ १४६ ॥ व्रतसंकल्पमात्रेण पूर्णं व्रतफलं भवेत् । किं पुनः सांगविधिना कर्तुः फलेऽवशिष्यते ॥ १४७ ॥
तस्मादेकादशीतुल्यं व्रतं नान्यद् भविष्यति । शाश्वताऽक्षयसत्पुण्यप्रदं मोक्षप्रदं तथा ॥ १४८ ॥ यथालब्धोपचारैस्तु प्रातः संकल्प्य पूजनम् । व्रतं चापि करिष्यन्ति तेषां गृहेष्वहं सदा ॥ १४९ ॥
वत्स्याम्येव न सन्देहस्तद्भक्त्या वश्यतां गतः । सुखयिष्ये सुतो भूत्वा व्रतिनौ दम्पतीं कुलम् ॥ १५० ॥

अध्याय-१२

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! सुनो! परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वयं श्रीकृष्ण ने अपने आप में से राधा को प्रकट किया। राधा श्रीकृष्ण की ही शक्ति है और भक्तों के कर्मों को सिद्ध करने वाली है। सबकी रचना करने वाले श्रीकृष्ण की वह शक्ति ही इस चराचर जगत (जड़ और चेतन) को उत्पन्न करने वाली है। वह राधा गोलोक धाम में सदा श्रीकृष्ण की सेवा में रहती है। जब उन्होंने अपने द्वारा उत्पन्न हुए लोकों में निरंतर सृष्टि के निर्माण के लिए दूसरा रूप धारण करने की इच्छा की, तब एक कन्या प्रकट हुई जिसका नाम सावित्री रखा गया। गोलोक में दिव्य शक्तियों से संपन्न वह सावित्री, राधा के साथ उनके निज मंदिर में क्रीड़ा (विहार) करती थीं। जब राधा श्रीकृष्ण की सेवा में मग्न होती थीं, तब सावित्री समाधि में बैठ जाती थीं। आत्म सुख में पूरी तरह लीन होकर वे परब्रह्म का ध्यान करती थीं।

एक बार समाधि अवस्थामें सवित्री को अपने योग बल से यह देखने की इच्छा हुई कि - ब्रह्मा का रूप कैसा है? उनके पास कैसी शक्तियां और वैभव है ?

यह सब जानने के लिए वह योगिनी अपने प्राणों को समेट कर धीरे-धीरे मूलाधार चक्र में स्थित हुई। वहां उसने श्रीकृष्ण के अंश स्वरूप असंख्य गणेशों के अनंत ब्रह्मांडों में स्थित धामों को देखा। फिर वहां से वह सुंदरी स्वाधिष्ठान चक्र में आई। वहां प्रजापति में ध्यान लगाने से उसने परब्रह्म स्वरूप असंख्य प्रजापतियों के अनगिनत ब्रह्मांडों में स्थित अनेक धामों के दर्शन किए। इसके बाद वह नाभि में स्थित मणिपुर चक्र में गई। वहां स्थित कुंडलिनी (सर्पिणी) में संयम करके और ऊपर की ओर मुख वाली उस कुंडलिनी में प्रवेश कर सावित्री असंख्य लोकों में गई। उस स्थान से अनगिनत तेजोमयी महा नाड़ियां निकलती है जो अलग-अलग लोकों तक जाती है। जिस-जिस मार्ग से नाड़ियां जाती है , उन मार्गों पर जाकर

अनुक्रमणिका

सावित्री ने कई लोकों की दिव्य भूमी और ब्रह्मांड की विभूतियों को देखा। अंत में सावित्री फिर से मणिपुर चक्र में आई और वहां से हृदय में स्थित अनाहत चक्र में प्रवेश किया। वहां प्रणव (ॐ) की ध्वनि सुनकर, अपने अंतरात्मा रूपी ब्रह्म का ध्यान लगाया और ईश्वर के लोकों में स्थित दिव्य भूमियों के दर्शन किए। इसके बाद वह फिर से अनाहत चक्र में लौट आई। फिर वह उससे ऊपर कंठ में स्थित विशुद्ध चक्र में पहुंची। वहां 'चतुर्व्यूह' में ध्यान लगाकर उनके धाम की रचना और ऐश्वर्य को देखा और फिर वापस कंठ प्रदेश में आ गई। वहां से ऊपर दोनों भौहों के बीच स्थित आज्ञा चक्र में गई, जहां ध्यान करने पर उसे परब्रह्म स्वरूप साक्षात् ब्रह्मा जी के दर्शन हुए। समस्त लोकों के गुरु और प्रजा के पितामह ब्रह्मा की गोद में उसने सावित्री को देखा। यह देखकर कि यह ब्रह्मा की पत्नी है, वह बहुत प्रसन्न हुई। परंतु अगले ही क्षण वह सोचने लगी कि, मैं तो गोलोक में रहने वाली हूं, तो ब्रह्माजी की गोद में स्थित यह मेरा ही रूप यहां कहां से आया? चलो, यह बात मैं गोद में स्थित सावित्री से ही पूछती हूं। ऐसा सोचकर वह जैसे ही पूछने के लिए आगे बढ़ी, वैसे ही ब्रह्मा की शक्ति के आकर्षण से वह सावित्री अदृश्य हो गई और वह समाधि से बाहर आ गई। गोलोक में स्थित सावित्री कौन है और ब्रह्मा की गोद में बैठने वाली सावित्री कौन थी? इसका निर्णय करने के लिए वह राधा के पास आई और उन्हें सारा वृत्तांत सुनाया। यह सुनकर राधा ने कहा - हे कन्या! इस जगत को उत्पन्न करने वाली जो माया शक्ति है, वह मैं और तुम ही है। तुम ब्रह्मा के लिए निर्मित उनकी पत्नी (ब्रह्म पत्नी) हो और अनादि काल से जगत की नित्य पितामही (दादी/माता) हो। प्रत्येक ब्रह्मा के साथ तुम अलग-अलग सावित्री के रूप में प्रकट होती हो। अब तुम उन देव की आराधना करो, जिससे तुम ब्रह्मा को प्राप्त कर सकोगी। राधिका के ऐसे वचन सुनकर सावित्री ब्रह्माजी की प्राप्ति के बारे में विचार करने लगीं। उसी समय, द्वादशी के प्रातःकाल उन्होंने देवताओं के भी देव पुरुषोत्तमनारायण के कृपा वचनों की घोषणा करने वाले दुंदुभि की आवाज सुनी

- हे देवियों! पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का व्रत करो। यह सभी मनोकामनाओं को पूरा करने वाला है। हृदय के भीतर, बाहर, इस लोक में या परलोक में जो कुछ भी इच्छित हो, पुरुषोत्तमनारायण उसे अधिक मास के मात्र एक दिन के व्रत से ही प्रदान कर देते है। साथ ही, आज हरिवासर (द्वादशी) और त्रिस्पृशा का योग है, इसलिए आज के दिन किया गया यह व्रत अनंत गुना पुण्य फल देने वाला है।

पुरुषोत्तमनारायण कहते है - पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की इस द्वादशी (१२) के दिन व्रत करके शाश्वत फल प्राप्त करें। यह व्रत आप अपनी शक्ति के अनुसार भिन्न भिन्न रीत से कर सकते है - दिन में केवल एक बार भोजन करके, केवल नक्त (सूर्यास्त के बाद) भोजन करके, केवल फल खाकर, केवल दूध पीकर, केवल जल पीकर, केवल तिल खाकर, केवल शाकाहार (सब्जी) लेकर, या केवल पत्तों का आहार लेकर।

[1] जो भी भक्त आज इस द्वादशी का व्रत करेगा, उसे वह सब कुछ प्राप्त होगा जिसकी वह इच्छा रखता है - चाहे वह अक्षरधाम, गोलोक, वैकुंठ, अमृतपद, अव्याकृत धाम या कैलाश जैसे दिव्य लोक हों, या अन्य देवताओं और ईश्वर के लोक। इतना ही नहीं, यदि भक्त संसारिक सुख जैसे - पति, पत्नी, पुत्र, सुख-संपत्ति, उत्तम स्वास्थ्य, धन-धान्य या शरीर को फिर से नवीन (युवा) बनाने वाली रसायन औषधि आदि जो कुछ भी चाहेगा, वह सब मैं उसे प्रदान करूंगा।

आज के दिन प्रातः काल स्नान करके मेरा ध्यान करें। मेरी मूर्ति में मेरा आवाहन करें और षोड़शोपचार (सोल्ह सामग्रियों) से पूजन करके पुनः नमस्कार करें। आपकी जो भी मनोकामना हो, उसे निवेदित करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करें - हे भगवान! मेरा यह व्रत आपके पूजन से पूर्णता को प्राप्त हो। हे नाथ! मैं आपके प्रिय पूजन के सही क्रम या विधि को नहीं जानता/जानती। मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रेम पूर्वक आपका पूजन किया है, इसमें यदि कोई कमी रह गई

1. आरोग्यं च धनं धान्यं रसायनं च कायिकम् । यद्यदिच्छेद् व्रती त्वद्य द्वादश्यां हरिवासरे ॥ ५८ ॥ तत्सर्वे प्रददाम्यस्मै वदामि पुरुषोत्तमः ।

हो तो मुझे क्षमा करें। हे प्रभु! आप पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के देवता है और इस मास का व्रत करने वालों को विशेष फल देने वाले है , इसलिए ' अधिक शुक्ल द्वादशी ' के इस व्रत से मेरी मनोकामना पूर्ण करें।

ऐसी प्रार्थना करने के बाद भगवान के सम्मुख गायन और नृत्य करके विसर्जन करें। इसी प्रकार सुबह, दोपहर और शाम तीनों समय पूजन करके श्रीहरि को विसर्जित करना चाहिए।

इस प्रकार व्रत करने वाला चाहे वह नर-नारी, कुमार-कुमारी, देवी-देवता, ऋषि-मुनि, ईश्वर या असुर - जो कोई भी होगा, वह अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। इस दिन यथाशक्ति मेरा पूजन करना चाहिए। यदि बाहरी पूजन सामग्री उपलब्ध न हो, तो भाव और प्रेम से मानसिक पूजन करना चाहिए। उससे संतुष्ट होकर मैं परमेश्वर अपनी कृपा बरसाऊंगा।

[1]आज मैं जैसी कृपा की वर्षा कर रहा हूं, वैसी न तो मैंने भूतकाल में कभी की है और न ही भविष्य में कभी करूंगा। इसलिए, थोड़ा सा भी व्रत करके शाश्वत पद, पुण्य, सुख, देवताओं के लोक या अपने हृदय की इच्छाओं को प्राप्त कर लो।

श्रीहरि की ऐसी घोषणा सुनकर सुंदरी सावित्री बहुत प्रसन्न हुई। उसने दुंदुभि को प्रणाम किया और कहने लगी - हे श्रीहरि के पार्षद! समाधि में मैंने जगत के रचयिता ब्रह्माजी के दर्शन किए है। मेरी उन्हें पाने की इच्छा है, लेकिन इस शरीर से उन्हें पाना मेरे लिए कठिन है; क्योंकि मेरा यह शरीर नित्य गोलोक धाम की विभूति (अमायिक दिव्य तत्वों) से बना है और ब्रह्माजी का शरीर विराटात्मक (सृष्टि के मायिक गुणों वाला) है। इसलिए मुझे बताइए कि किस शरीर से और किस प्रकार मेरा ब्रह्माजी के साथ मिलन हो सकता है? मैं इस पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी (१२) का व्रत अवश्य करूंगी।

यह सुनकर दुंदुभि ने कहा - हे कन्या! तुम पुरुषोत्तमनारायण, लक्ष्मी, ब्रह्मा

1. न भूतो न भविष्यामि यथाऽद्य वृष्टिकृत्तथा । तस्मान्मे कृपया भक्ताः कृत्वा किञ्चिदथो व्रतम् ॥ ७६ ॥ लभन्तां शाश्वतं पुण्यं सुखं लोकं च हृद्गतम् । इति श्रुत्वा तु सावित्री जहर्ष चाति सुन्दरी ॥ ७७ ॥

और सावित्री की सोने की मूर्तियां बनाकर उनका पूजन करो और दान करो। इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे।

दुंदुभि के वचन अनुसार सावित्री ने पुरुषोत्तम मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी (१२) का व्रत और पूजन प्रातःकाल में किया। इससे प्रसन्न होकर श्रीहरि सावित्री के सामने प्रकट हुए और कहा - हे कल्याणी! मांगो, तुम्हारे मन में क्या इच्छा है? तब सावित्री ने कहा कि मुझे ब्रह्माजी का योग प्राप्त हो। तब श्रीकृष्ण नारायण ने कहा - आंखें बंद करके एक क्षण के लिए मेरा ध्यान करो, इससे तुम्हें इच्छित फल मिलेगा। इतना कहकर श्रीहरि अदृश्य हो गए।

सावित्री ने दोपहर और शाम को भी इसी प्रकार पूजन किया। रात में जागरण किया और झूले में लक्ष्मी-नारायण तथा ब्रह्मा-सावित्री को झुलाया। तब पुरुषोत्तमनारायण ने फिर से प्रकट होकर कहा - हे देवी! अब पुष्पांजलि, अर्घ्य और फल अर्पित करके विसर्जन करो। इसके बाद मैं अक्षरधाम जाऊंगा और तुम सूक्ष्म रूप धारण करके विराट में प्रवेश करो। वहां उनके नाभि-कमल से विराट की मानस पुत्री के रूप में प्रकट हो। तुम जन्म से ही युवती के रूप में होने के कारण विराट ब्रह्मा से तुम्हारा विवाह कर देंगे। हे कल्याणी! जाओ, तुम्हारा मंगल हो और तुम्हें सदा सुहागन रहने का आशीर्वाद है।

ऐसा कहकर पुरुषोत्तमनारायण अदृश्य हो गए। फिर सावित्री ने श्रीहरि की आज्ञा के अनुसार पुष्पांजलि, अर्घ्य और श्रीफल (नारियल) अर्पित करके विसर्जन किया। उन्होंने वे मूर्तियां गोलोक धाम के निवासी पत्नीव्रत नामक गुरु को दान में दे दीं। तब गुरु ने आशीर्वाद दिया की - तुम ब्रह्मा की पत्नी और जगत को उत्पन्न करने वाली माता बनो। इसके बाद सावित्री राधा और कृष्ण को प्रणाम करके अदृश्य हो गईं। उसने विराट में प्रवेश किया और नाभि-कमल की नाल के मार्ग से कन्या के रूप में प्रकट हुईं। जन्म से ही युवती सावित्री को ब्रह्माजी के लिए ही उत्पन्न जानकर, विराट नारायण ने विधि-विधान के साथ उनका विवाह ब्रह्मा

से करा दिया।

इस प्रकार सावित्री, ब्रह्मा को पति के रूप में पाकर पूर्ण मनोरथ वाली और सम्पूर्ण जगत की माता बनीं। हे लक्ष्मी! इस तरह मैंने तुम्हें यह कथा सुनाई कि - कैसे सावित्री ने पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी (१२) के व्रत के प्रभाव से अपनी मनोकामना पूरी की और ब्रह्मा की पत्नी बनीं।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, द्वादशी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक बारहवां (३०४) अध्याय समाप्त ।

अध्याय-१३

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा – हे लक्ष्मी! पूर्व काल में सत्ययुग के आदि में ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना के लिए ऐश्वर्य, बल और तेज से संपन्न सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार नाम के चार बालकों का मानसिक सृजन किया। उनके विवाह (दांपत्य) के लिए वैसी ही ऐश्वर्य, बल और तेज वाली जया, ललिता, पार्वती और प्रभा नाम की चार कन्याओं का भी मानसिक सृजन किया। जन्म लेते ही ज्ञान से पूर्ण उन सनकादिक कुमारों और जया आदि कन्याओं को देखकर ब्रह्माजी अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्हें सृष्टि कार्य में जोड़ने के लिए वे कहने लगे – हे सनक! तुम जया को स्वीकार करो। हे सनंदन! तुम ललिता को स्वीकार करो। हे सनातन! तुम पार्वती को स्वीकार करो। हे सनत! तुम प्रभा को स्वीकार करो। तुम चारों, युगल (जोड़े) बनकर युगल रूपिणी मानसिक सृष्टि की रचना करो। गृहस्थ धर्म की यह परंपरा गोलोक और वैकुंठ से प्राप्त हुई है। हम ईश्वरों ने भी श्रीकृष्ण की आज्ञा से इस गृहस्थ धर्म को आदरपूर्वक अपनाया है। हे पुत्रों! तुम भी पिता की आज्ञा मानकर गृहस्थ धर्म का पालन करो और सुखी रहो। आपको सृष्टि का भार सौंपकर मैं कृतार्थ और थोड़ी देर के लिए सृष्टि भार से मुक्त हो जाऊंगा। एक उत्तम गृहस्थ के वंश में उद्धार करने वाले पुत्र जन्म लेते है और गृहस्थ धर्म में स्त्री सुख देने वाली होती है।

इसके अलावा, गृहस्थ धर्म में ही यज्ञ, दान, अतिथि सेवा, देव पूजन और साधु पूजन संभव है। इसी मार्ग से धर्म, अर्थ, काम और अंत में मोक्ष जैसे पुरुषार्थ प्राप्त होते है। गृहस्थ धर्म के बिना माया के दोष दूर नहीं होते और न ही युवावस्था में विषयों से वैराग्य दिलाने वाला ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए पहले भोगों को भोगकर मन को शांत करो, क्योंकि शांत मन वाले को ही शाश्वत मोक्ष मिलता है। अतः हे

पुत्रों! तुम सृष्टि का कार्य करो।

पिताजी के इन वचनों को सुनकर, जन्म से ही ज्ञानी, योगी और ब्रह्मवेत्ता उन सनकादिक कुमारों ने कहा - पिताजी! कर्म से मोक्ष नहीं होता, बल्कि कर्म से बंधन पैदा होता है। उसमें भी गृहस्थ के कार्य तो निश्चित ही बंधन देने वाले है। नारी धर्म भी निवृत्ति का कारण नहीं बनता। कर्म के बाद फिर कर्म, और फिर कर्म - इस तरह राग के कारण कर्मों का चक्र चलता ही रहता है। धर्म, अर्थ और काम का कभी अंत नहीं होता (वे जीव को उलझाए रखते है)।

[1] हे पिता! इसीलिए ज्ञान के बिना गृहस्थ धर्म भयावह है। जिस प्रकार आप गृहस्थ धर्म के इस बोझ को छोड़ना चाहते है , वैसे ही हम भी इसे उठाना नहीं चाहते। साथ ही, आपने जो कहा कि पुत्र तारने वाले (उद्धार करने वाले) होते है , तो वास्तव में वह ज्ञान ही है जो तारता है। इसलिए कर्मों में फंसे हुए गृहस्थ के लिए उनका बेटा (सुत) ही पुत्र है, परंतु हम जैसे ज्ञानियों और योगियों के लिए तो ज्ञान ही पुत्र रूप है।

ब्रह्म मार्ग का उपदेश देने वाले और ब्रह्मलोक के निवासी होने के नाते, हम इस नाशवान वंश को आगे बढ़ाने के लिए गृहस्थ धर्म को स्वीकार नहीं करेंगे। वैसे भी, स्त्री का मोह बाहर से तो सुंदर और सुखद लगता है, लेकिन अंत में वह हृदय में दुःख ही पैदा करता है। ऐसा कौन सा तत्वज्ञानी पुरुष होगा, जो अपने भीतर के सच्चे सुख को त्याग कर इस बाहरी सुख के पीछे भागेगा?

[2] आत्म सुख को ही परम सुख कहा गया है, इसके अलावा अन्य सभी सुख अंत में दुःख देने वाले ही होते है। हे पितामह! आपने गृहस्थ धर्म में जो यज्ञ और अनुष्ठान आदि बताए है , वे कभी भी ब्रह्म की आराधना के समान नहीं हो सकते। जो व्यक्ति ब्रह्म की आराधना करता है, उसके द्वारा देव-पूजा, अतिथि-सत्कार और साधु-पूजन आदि कर्म स्वतः ही संपन्न हो जाते है। हे तात! ब्रह्म-ज्ञान का दान

1. विना ज्ञानं पितस्तस्माद् गृहधर्मो भयावहः ॥ २४ ॥ 2. आत्मसुखं परं प्रोक्तंतदन्यत्सुखमन्तकृत् ॥ २९ ॥

करने से जो स्वर्ग प्राप्त होता है, वही शाश्वत और परम पद है। जो तृष्णा (इच्छाओं) से घिरा है, वह काल के अधीन है, लेकिन जो आत्माराम (अपनी आत्मा में मग्न) है, उसे मृत्यु या काल का भय नहीं होता। जिसे अन्न, जल और वस्त्र के अलावा अन्य किसी सांसारिक विषयों की इच्छा नहीं है, मोक्ष उसकी हथेली में ही स्थित है। जिसे न बाल्यावस्था है, न यौवन है और जो सदैव अपनी आत्मा में ही विश्राम करता है, उसे जीवित रहते हुए भी सदा 'मुक्त' ही कहा गया है। इसलिए हम सृष्टि के कार्य के लिए अयोग्य है । ब्रह्म के अधिकारी होने के नाते हम दूसरों को भी द्वंद्व (सुख-दुःख) से मुक्त और माया रहित बनाएंगे।

यह पिताओं के भी पितामह (परम पिता) भगवान पुरुषोत्तमनारायण का धर्म है। इसका पालन करके हम उन्हीं पुरुषोत्तमनारायण को प्राप्त करेंगे। जो कार्य गृहस्थ धर्म पूरा करने के बाद करना चाहिए, उसे हम अभी से ही करेंगे। आपकी कृपा से हमारे भीतर मोक्ष दिलाने वाला 'आत्म-संयम' हमेशा बना रहता है, इसलिए हम बचपन से ही मोक्ष के मार्ग पर चलेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे मोक्ष में ही आपका भी मोक्ष होगा। हम आपका उद्धार करने वाले सच्चे पुत्र बनेंगे। ये कन्याएं भी योगिनियां और ज्ञान-विज्ञान की मूर्तियां है । वे बहुत कम समय में ही पर ब्रह्म को प्राप्त कर लेंगी, इसलिए आप उनका भी शोक (दुःख) न करें। ऐसा कहकर सनकादिक वैकुंठ चले गए। जया, ललिता, पार्वती और प्रभा भी आध्यात्मिक योग से संपन्न होकर पुरुषोत्तमनारायण का स्मरण करने लगीं और "ॐ श्रीकृष्णनारायणाय नमः" मंत्र का जप करने लगीं।

सत्यलोक में रहते हुए, पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी (१३) के दिन सुबह उन्होंने कृपामयी दुन्दुभी की घोषणा सुनी कि - चाहे वह ब्रह्म को प्राप्त स्त्री हो, विरहिणी हो, कुमारी हो, विवाह के योग्य हो, वैरागी हो, सौभाग्यवती हो, सुहागन हो, विधवा हो, अनाथ हो या सनाथ हो - जो कोई भी स्त्री पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की इस त्रयोदशी का व्रत करेंगी, मैं (श्रीकृष्ण) उसकी सभी

इच्छाएं पूरी करूंगा।

[1] इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में व्रत करने वाले भक्त के हृदय में जो भी इच्छाएं होंगी - चाहे वे कठिनता से मिलने वाली हों या आसानी से, पुण्य से प्राप्त होने वाली हों या धन-दौलत से, साधनों से मिलने वाली हों या तर्क से परे, शाश्वत (हमेशा रहने वाली) हों या नाशवान, भोगने योग्य हों या न हों - प्रसन्न होकर मैं पुरुषोत्तमनारायण वह सब कुछ प्रदान करूंगा।

पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी (१३) के दिन एक समय भोजन करके, संध्या के बाद भोजन या फलाहार करके व्रत करना चाहिए। श्रद्धा के साथ एक सो आठ, छप्पन, बत्तीस या षोडशोपचार (सोलह सामग्री) से मेरा पूजन करना चाहिए। समय के अनुसार जो भी उपलब्ध हो - जैसे पत्र, पुष्प, जल, अन्न आदि से या फिर केवल मानसिक उपचारों द्वारा भी जो मेरा पूजन करेगा, मैं उसकी सभी मनोकामनाएं पूरी करूंगा।

[2] कहो, अपने मन में ठान लो या हृदय में संकल्प कर लो, संकोच मत करो। इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में व्रत करके जो मेरा पूजन करेगा, उसे मैं अपना सब कुछ दे दूंगा। त्रयोदशी (१३) की सुबह दुंदुभी की ऐसी घोषणा सुनकर जया, ललिता, पार्वती और प्रभा वहां आईं और दुंदुभी को प्रणाम करके पूछने लगीं कि आप क्या दे रहे है? तब दुंदुभि ने कहा कि पुरुषोत्तमनारायण कहते है - अधिक मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी (१३) के व्रत के पुण्य से श्रीकृष्णनारायण को पति के रूप में पाया जा सकता है। साथ ही, उनकी संपत्ति और अक्षर धाम को भी इस छोटे से व्रत के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा, मैं आपको स्वर्ग, विराट पद, ध्रुव पद, गोलोक और वैकुंठ भी प्रदान करता हूं। आप इस व्रत के फल के रूप में क्या पाना चाहते है ?

तब उन्होंने कहा कि हम जन्म से ही संस्कारों से रहित है। इस व्रत के माध्यम से

1. अधिमासेऽत्र यस्यै यन्नवं नवमपेक्ष्यते । अगम्यं वा सुगम्यं वा लभ्यं चालभ्यमित्यपि ॥ ५५ ॥ पुण्यलभ्यं द्रव्यलभ्यं लभ्यं यत्साधनैरपि । अतर्क्यं वा प्रतर्क्यं वा शाश्वतं चाऽध्रुवं तथा ॥ ५६ ॥ भोग्यं चाऽभोग्यमेवाऽन्यद् यद्यद् वाञ्छति या हृदि । तत्तत्सर्वं प्रदास्येऽहं प्रसन्नः पुरुषोत्तमः ॥ ५७ ॥

2. मा संकोचं प्रकुर्वन्तु वदन्तु धारयन्तु च । संकल्पयन्तु हृदये वितरिष्याम्यधिव्रते ॥ ६५ ॥

हमारी यह इच्छा है कि – श्रीकृष्ण नारायण हमारे साथ विवाह संस्कार करें, हमें अपनी दासी बनाएं और अपने साथ अपने धाम ले जाएं। तब दुंदुभि ने कहा कि – आप प्रातःकाल स्नान करके पुरुषोत्तमनारायण की सोने की मूर्ति बनाएं और जो भी सामग्री उपलब्ध हो, उससे उनका पूजन करें। ऐसा करने से आप श्रीकृष्णनारायण के योग्य दिव्य शरीर वाली हो जाएंगी। ऐसा कहकर दुंदुभि वहां से दूसरे स्थान पर चले गए।

जया, ललिता, पार्वती और प्रभा ने भी स्नान किया और घर जाकर एक सुंदर मंडप तैयार किया। उस मंडप के बीच में एक सिंहासन पर भगवान श्रीहरि की सुवर्णमयी (सोने की) मूर्ति स्थापित की। उन्होंने षोड़शोपचार (१६ विधियों) से पूजन किया और प्रार्थना की – हे देवों के देव! हे हरि! हे कृष्णनारायण! हे जगत्प्रभु! हमें अपनी दासी बना लीजिए। ऐसा संकल्प करके उन्होंने गदगद कंठ से भगवान को पुष्पांजलि अर्पित की।

फिर दोपहर में भी इसी प्रकार पूजन करके श्रीहरि को भोजन कराया और शाम को भी वैसी ही पूजा-अर्चना कर श्रीहरि की आरती की और मीठे भोजन से उन्हें तृप्त किया। रात में उन्होंने नक्त (सूर्यास्त के बाद) भोजन किया और जागरण करते हुए श्रीहरि के सामने तालियों की थाप पर नृत्य और मधुर गान करने लगीं।

उसी समय श्रीकृष्णनारायण वहां चार स्वरूपों में प्रकट हुए और उन कन्याओं द्वारा अर्पित की गई वरमाला स्वीकार की तथा प्रसन्न होकर उन्हें बार-बार आलिंगन दिया। इस प्रकार अगम्य, तर्क से परे और अद्भुत सुख देकर, भगवान उन्हें तुरंत गरुड़ पर बैठाकर ब्रह्मा के पास ले आए। ब्रह्मा ने भी विधि-विधान से उन चारों कन्याओं का विवाह नारायण के साथ संपन्न कराया और उन्हें भगवान को सौंप दिया। तत्पश्चात श्रीकृष्णनारायण अपनी पत्नियों के साथ अक्षरधाम पधारे।

जया, ललिता, पार्वती और प्रभा – इन सब ने पुरुषोत्तम मास (अधिक

अनुक्रमणिका

मास) के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी का व्रत किया। इसके प्रभाव से वे दिव्य स्वरूप धारण कर श्रीहरि की पत्नियां बनीं और अब नित्य अक्षरधाम में आनंदपूर्वक रहती है। इस प्रकार, इस छोटे से दिखने वाले व्रत का भी नित्य, दिव्य और अनंत फल प्राप्त होता है।

[1] जो लोग श्रीकृष्णनारायण में अपना मन लगाकर इस अध्याय को पढ़ेंगे या सुनेंगे, उन्हें भी वैसा ही (दिव्य) फल प्राप्त होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, त्रयोदशी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक तेरहवां (३०५) अध्याय समाप्त।

1. श्रोष्यन्तीमं पठिष्यन्त्यध्यायं ये कृष्णमानसाः। तेषामपि फलं तद्वद् भविष्यति न संशयः ॥ ९६ ॥

अनुक्रमणिका

अध्याय-१४

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! सुनो, अक्षरधाम की सीमा में जो वैकुंठ लोक है, वहां कल्पवृक्ष की पुत्री श्री, दिव्यविभूति की पुत्री माणिकी तथा क्षीरसागर की पुत्री लक्ष्मी - ये तीनों कुमारियां ब्रह्म योगिनी और श्रीहरि की अनन्य भक्त थीं। वे प्रतिदिन श्रीकृष्णनारायण की प्रतिमा की सेवा, पूजा और ध्यान करती थीं।

उनकी भक्तिऔर सेवा को देखकर प्रसन्न होकर कल्पवृक्ष, दिव्यविभूति और क्षीरसागर ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि - 'अनंत धामों में श्रीकृष्णनारायण की अनेक पत्नियां है , तुम भी उन परब्रह्म की प्रिया और राजाधिराज रूप वाली बनो, जिनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है।

अपने पिता से ऐसा आशीर्वाद पाकर, उन तीनों ने पुरुषोत्तम मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी (१४) के दिन प्रातःकाल स्नान किया और श्रीहरि का ध्यान कर एक सुंदर मंडप बनाया। उस मंडप के बीच में एक मनोहर सिंहासन पर श्रीकृष्णनारायण को विराजमान कर षोडशोपचार (१६ विधियों) से उनका पूजन किया। दोपहर के समय, श्री कल्पवृक्ष से अत्यंत रसदार, मीठे और उत्तम फल लाकर श्रीहरि को अर्पित करती थीं। माणिकी विभिन्न प्रकार के रत्नों के हार प्रभु को भेंट करती थीं और लक्ष्मी प्रेम पूर्वक अनेक तरह के भोजन और पेय पदार्थ श्रीहरि को अर्पित करती थीं। श्रीकृष्णनारायण भी उनके द्वारा भाव से अर्पित की गई वस्तुओं को प्रेमपूर्वक स्वीकार करते थे। पूजन के बाद उन्होंने पुरुषोत्तमनारायण के दुंदुभी की उद्घोषणा सुनी कि – पुरुषोत्तम कहते है की इस मास में मेरा पूजन करो, मेरी आराधना करो और मुझे कुछ अर्पित करके मेरे धाम को प्राप्त करो।

[1] ब्रह्मधाम का स्वामी पुरुषोत्तम नाम वाला मैं, इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का अधिपति हूं और मैं जो कहता हूं, उसे निश्चित रूप से देता हूं। गोलोक या वैकुंठ में रहने वाली स्त्रियां भी यदि पुरुषोत्तम मास की चतुर्दशी के दिन व्रत करेंगी, तो वे भी मनोवांछित फल प्राप्त करेंगी। इसके अलावा, अन्य धामों में रहने वाली स्त्रियां भी यदि यह व्रत करेंगी, तो वे भी मेरे उस परम अक्षरधाम को प्राप्त करेंगी जहां मैं पुरुषोत्तमनारायण सदैव निवास करता हूं। मेरे समान या मुझसे श्रेष्ठ न कभी कोई हुआ है और न कभी कोई होगा। साथ ही, मेरे धाम के समान भी कभी कोई धाम न हुआ है और न कभी होगा। मनुष्य स्त्री मेरी आराधना करके देवी बनती है , देवी मेरी आराधना करके ऋषिणी बनती है , ऋषिणी मेरी आराधना करके ईश्वराणी बनती है, ईश्वराणी मेरी आराधना करके नारायणी बनती है , नारायणी मेरी आराधना करके गोपी बनती है , और गोपी मेरी आराधना करके मेरे धाम की नित्य मुक्तानीका बनती है।

[2] पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की चतुर्दशी (१४) के दिन जिसने व्रत किया है, उसने मेरा सब कुछ प्राप्त कर लिया है। मैं बार-बार कहता हूं कि मेरे साथ मेरे अक्षरधाम में आओ और वहीं मेरे साथ निवास करो। मैं अत्यंत संतुष्ट होकर गर्जना करते हुए बार बार कहता हूं कि अधिक मास की चतुर्दशी का व्रत करके मेरे अक्षरधाम को प्राप्त करो।

श्रीकृष्णनारायण के दुंदुभी की ऐसी उद्घोषणा सुनकर, वे तीनों कन्याएं अत्यंत प्रसन्न होकर तुरंत वहां आईं। उन्होंने बार-बार प्रणाम किया और दुंदुभी से कहने लगीं - हम नारायण के इस सुखमय वैकुंठ लोक में रहती है, लेकिन यदि पुरुषोत्तमनारायण हमें परम सौभाग्य प्रदान करें, तो हम आज उनका पूजन करके पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी का व्रत करेंगी। हमें अक्षराधिपति श्रीकृष्णनारायण कब मिलेंगे और वे हमें अपने साथ कब ले

1. पुरुषोत्तमसंज्ञोऽहं ब्रह्मधामाधिपः पुमान् । अधिमासाधिदेवोऽहं वदामि तद् ददामि वै ॥ ६० ॥

2. चतुर्दश्यामधिमासे व्रतं श्रीपुरुषोत्तमे । कृतं येनाऽर्जितं तेन मामकं सर्वमेव हि ॥ ७३ ॥ वच्मि वच्मि पुनर्वच्मि ह्यागच्छन्तु मया सह । भवने त्वक्षरे मे वै निवसन्तु मया सह ॥ ७४ ॥
तुष्टोऽस्मि गर्जनां कृत्वा कथयामि पुनः पुनः । अधिमासे चतुर्दश्यां यान्तु व्रतेन मद्गृहम् ॥ ७५ ॥

जाएंगे?

यह सुनकर दुंदुभी ने कहा - रात में पूजन के बाद जागरण करना और उसमें परमात्मा जनार्दन की स्तुति करना। इससे वे प्रकट होंगे और आपके मनोरथ सफल होंगे। ऐसा कहकर अक्षत और पुष्पों से पूजित वह दुंदुभी दूसरे स्थान पर चले गए।

तीनों कन्याओं ने हर दिन की तरह रात में भी श्रीकृष्ण का पूजन किया और जागरण किया। उस समय श्रीहरि के सामने लक्ष्मी ने गायन किया, माणिकी ने वाद्य बजाया और श्री ने नृत्य किया। उन्होंने भावपूर्ण स्तुति करते हुए कहा - हे कृपानाथ! हे कृष्णनारायण! हे प्रभु! हमारा हाथ थाम लीजिए और हमें कभी मत छोड़िएगा। हमारी वरमाला स्वीकार करके हमें अपनी पत्नियां बना लीजिए। जैसे ही उन्होंने स्तुति पूरी की, वैसे ही भगवान श्रीकृष्णनारायण सफेद हाथी वाले विमान के साथ चिदाकाश (दिव्य आकाश) में प्रकट हो गए।

कन्याओं को सांत्वना देकर उन्होंने कल्पवृक्ष, दिव्यविभूति और क्षीरसागर को नमस्कार किया। इसके बाद उन्होंने विधि-विधान पूर्वक श्रीहरि के साथ तीनों कन्याओं का विवाह संपन्न कराया और श्रीकृष्णनारायण से प्रार्थना की - हे केशव! ऐसा कुछ कीजिए जिससे हमें इन कन्याओं का वियोग न सहना पड़े।

तब पुरुषोत्तमनारायण ने श्री, लक्ष्मी और माणिकी के दो-दो रूप किए। उनके 'छाया रूप' (प्रतिरूप) पिता को सौंप दिए और उन तीनों कन्याओं के 'दिव्य स्वरूप' को पत्नी के रूप में स्वीकार कर, उन्हें विमान में बिठाकर दिव्य अक्षरधाम में पधारे।

इस प्रकार, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी का व्रत करके श्री, लक्ष्मी और माणिकी हमेशा के लिए श्रीहरि के धाम में उनकी पत्नियां बन गईं। जब उन्हें स्वयं भगवान की प्राप्ति हो गई, तो फिर और क्या दुर्लभ

अनुक्रमणिका

हो सकता है? इस कथा को कहने और सुनने वाले को भी ऐसा ही परम फल प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, चतुर्दशी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक चौदहवां (३०६) अध्याय समाप्त ।

अध्याय-१५

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! सुनो, प्राचीन समय के प्रथम सत्ययुग में धर्म और भक्ति की प्रेयसी और श्रेयसी नाम की दो मानस पुत्रियां हुईं। वे निरंतर अपने माता-पिता की सेवा में लगी रहती थीं। जहां धर्म और भक्ति का वास होता है, वे वहीं रहती है, अपने माता-पिता को छोड़कर वे क्षण भर भी जीवित रहने में समर्थ नहीं है । वे प्रतिदिन प्रातःकाल जल्दी स्नान करके अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम करती थीं। वे उनके स्नान के लिए जल लातीं, पहनने के लिए वस्त्र देतीं और चंदन, अक्षत, पुष्प एवं कुमकुम से उनकी पूजा करती थीं। वे उन्हें स्वादिष्ट भोजन, पान और जल अर्पित करतीं, उनकी चरणसेवा करतीं, घर का सारा काम संभालतीं और माता-पिता की आज्ञा मिलते ही अपने बाकी सारे काम छोड़कर तुरंत उसे पूरा करती थीं। अपनी इसी सेवा भावना के कारण वे आशीर्वाद की पात्र बनीं।

अपने शरीर के कष्टों की चिंता न करते हुए, रात-दिन अपना सब कुछ समर्पित कर सेवा करने के कारण प्रेयसी 'भुक्ति' (सांसारिक सुख) के नाम से प्रसिद्ध हुई। वहीं माता-पिता और अन्य लोगों के दुखों को बार-बार दूर कर, अपने अच्छे कर्मों से मोक्ष जैसा सुख देने के कारण श्रेयसी 'मुक्ति' के नाम से विख्यात हुई।

[1] पवित्र माता-पिता की सेवा भला कौन से उत्तम गुणों को प्राप्त नहीं कराती? अर्थात्, माता-पिता की सेवा से व्यक्तिको सभी श्रेष्ठ गुण प्राप्त हो जाते है। जिसने अपने माता-पिता को संतुष्ट कर लिया, उसने समझो साक्षात माधव (पुरुषोत्तमनारायण), सभी देवताओं और संपूर्ण जगत को प्रसन्न कर लिया है।

1. पित्रोः पवित्रयोः सेवा कं न धत्ते गुणोत्तमम् । पितरौ तोषितौ येन तोषितस्तेन माधवः ॥ २०॥ तोषिताश्च सुराः सर्वे तोषितं सकलं जगत् ।

अनुक्रमणिका

यदि पुत्रहीन पिता को उसकी पुत्री संतोष और सुख देने वाली हो, तो उस पुत्री को पुत्र के समान ही माना गया है। ऐसी पुत्री के माध्यम से माता-पिता का उद्धार होता है। जिसने अपने वृद्ध माता-पिता की पूर्ण सेवा की और उन्हें सुखी रखा, वह भले ही शरीर से कन्या हो, लेकिन उसे सदा पुत्र के समान ही मानना चाहिए। ऐसी कन्या के पुण्य से माता-पिता को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उसके द्वारा दिया गया अन्न, जल तथा दान पितर को प्राप्त होता है।

[1] जिन माता-पिता के पुत्र नहीं होते, उनके लिए यज्ञ, दान, जप, होम, स्वाध्याय और पितृ-तर्पण आदि सभी धार्मिक कार्य पुत्री कर सकती है। वह यज्ञोपवीत धारण करके सभी विधि-विधान संपन्न करें और जब तक माता-पिता की सेवा में रहें, तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करें। जब माता-पिता को पुत्र की प्राप्ति हो जाए या वे किसी पुत्र को गोद (दत्तक) लें, तब माता-पिता की आज्ञा लेकर अपनी ब्रह्मचर्य साधना समाप्त करें और विधि-विधान के साथ विवाह करें।

[2] ब्रह्मचर्य की स्थिति में रजस्वला (मासिक धर्म) जैसी अशुद्धियां ब्रह्मचर्य-तप की प्रबलता के कारण दोषपूर्ण नहीं मानी जातीं। ब्रह्मचर्य की अग्नि से शरीर की समस्त अशुद्धियां भस्म हो जाती है। ब्रह्मचर्य के समान न कोई धर्म था और न कभी होगा।

भुक्ति और मुक्ति ब्रह्मचर्य में स्थित रहकर आदरपूर्वक अपने माता-पिता की सेवा करती थीं। वे सत्यलोक में अधिक मास की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा की प्रातःकाल स्वर गंगा में स्नान करने गईं। वहां उन्होंने श्रीकृष्णनारायण के दुंदुभि की उद्घोषणा सुनी कि -

अनेक धामों का स्वामी, अवतारों का अवतारी, पुरुषोत्तमनारायण मैं, इस अधिक मास की पूर्णिमा का व्रत करने वाले नर-नारियों को अपना अक्षरधाम, अपना सान्निध्य, अपना रूप, अपना ऐश्वर्य, अपनी दिव्यता, अपनी शक्ति और

1. यस्य सन्ति न वै पुत्राः पुत्री तस्य क्रियाश्चरेत् । यज्ञं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ २५ ॥ सर्वं कुर्याद् विधिं पुत्री धारयेदुपवीतकम् । तिष्ठेच्च ब्रह्मचर्ये सा यावत् पित्रोः प्रसेवनम् ॥ २६ ॥

2. ब्रह्मचर्यस्थितौ जाते राजस्वल्याद्यशुद्धिके । ब्रह्मचर्यस्य तपसः प्राबल्येन न दूषणम् ॥ २८॥

अपने समान पूजनीयता एवं श्रेष्ठता - यह सब कुछ प्रदान करता हूं।

[1] मेरा यह पुरुषोत्तम मास अत्यंत श्रेष्ठ है। इसके एक दिन के व्रत का पुण्य भी अन्य सभी पुण्यों से अधिक होता है। दूसरे पुण्य नाशवान है जबकि इस व्रत से मिलने वाला पुण्य शाश्वत यानी नित्य रहने वाला है। श्रद्धा पूर्वक संकल्प लेकर पुरुषोत्तम मास की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा का व्रत करो इससे तुम्हारे उचित और अन्य सभी संकल्पों को मैं पुरुषोत्तमनारायण स्वयं पूरा करूंगा।

ऐसा कहकर दुंदुभि क्षण भर के लिए मौन हो गए और कन्याओं द्वारा अर्पित पत्र, पुष्प और फल ग्रहण कर वहां से विदा हुए। वे कन्याएं भी पुरुषोत्तम मास की पूर्णिमा के व्रत का संकल्प लेकर अपने घर लौट गईं। वहां उन्होंने श्रीकृष्णनारायण की सुवर्ण की सुंदर प्रतिमा स्थापित की और षोड़शोपचार (सोलह सामग्रियों) से उनका पूजन किया। उन्होंने हृदय से बार-बार यह प्रार्थना की - हे श्रीकृष्णनारायण! हे सभी धामों के स्वामी! हे अवतारों के अवतारी! हमें सदा कुमारी अवस्था प्रदान करें। हमें मुक्ति की स्थिति देकर सदा अपने ब्रह्मधाम में निवास दें। हे अक्षराधिपति! आप ही हमारे माता-पिता, कर्मों के स्वामी, कृपा के सागर और फल देने वाले है। आप हमारे रक्षक बनिए। हे हृदय में निवास करने वाले अंतर्यामी! आप हमारे भावों को जानने वाले है, हमारा हाथ पकड़कर हमें शीघ्र अक्षरधाम ले जाइए।

इस प्रकार स्तुति करके जैसे ही मूर्ति पर अक्षत (चावल) अर्पित किए, वैसे ही वहां दयालु श्रीकृष्णनारायण प्रकट हो गए। वे हाथी की पीठ पर विराजमान थे और अत्यंत दिव्य एवं सुंदर दिख रहे थे। उनके अंगों पर शूल, मत्स्य, ध्वज, धनुष, चक्र और स्वस्तिक जैसे शुभ चिह्न सुशोभित थे। उनके मस्तक पर सुंदर केश, शरीर पर बिजली जैसी चमकती रेखाएं, हृदय में श्रीवत्स का चिह्न और जंघाओं पर श्वेत लक्ष्मी जी शोभायमान थीं।

1. पुरुषोत्तममासोऽयं मम मासोऽस्ति चोत्तमः ॥ ४२ ॥ तदेकदिनजं पुण्यं सर्वेभ्योऽप्यतिरिच्यते । अशाश्वतानि चान्यानि ह्येतत्पुण्यं तु शाश्वतम् ॥ ४३ ॥

उनके दिव्य स्वरूप और सुंदर अंगों को देखकर प्रेयसी और श्रेयसी अत्यंत हर्षित हुईं और उन्होंने श्रीहरि के गले में पुष्प माला पहनाई। जब वे प्रेम पूर्ण भाव से भगवान के निकट खड़ी हुईं, तब श्रीहरि ने उनसे कहा - तुम्हारे भक्ति पूर्ण व्रत से प्रसन्न होकर मैं तुम दोनों को अपने धाम ले जाऊंगा। ऐसा कहकर वे अदृश्य हो गए।

इसके बाद, उन कन्याओं ने दोपहर और शाम के समय भी विधि-विधान से श्रीकृष्णनारायण का पूजन किया और रात भर जागरण करके श्रीहरि के सामने कीर्तन और नृत्य किया। आधी रात के समय महाप्रभु पुनः वहां पधारे। श्रीहरि घर आए है, यह जानकर धर्म और भक्तिने भी आकर उन्हें प्रणाम किया और अपनी दोनों पुत्रियों को अपने साथ दिव्य धाम ले जाने की प्रार्थना की। इसके बाद श्रीहरि ने माता-पिता की सेवा के लिए श्रेयसी और प्रेयसी के दो रूप किए। एक रूप से उन्हें धर्म और भक्ति की सेवा में रखा; इसलिए जहां-जहां धर्म और भक्ति होते है वहां-वहां भुक्ति (सुख) और मुक्ति अवश्य होती है । दूसरे रूप से श्रेयसी और प्रेयसी श्रीहरि को पाकर धन्य हो गईं और दिव्य अक्षरधाम में वे भुक्ति और मुक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई।

इस प्रकार, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के व्रत के प्रभाव से वे श्रीहरि को प्राप्त कर सकीं और अनंत काल तक श्रीहरि के सुख का आनंद ले रही है । इस कथा को कहने और सुनने वाले व्यक्ति को भी इस व्रत का पूर्ण फल प्राप्त होता है।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, पूर्णिमा तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक पंद्रहवां (३०७) अध्याय समाप्त ।

अनुक्रमणिका

अध्याय-१६

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा – हे लक्ष्मी! ब्रह्मा, विष्णु और महेश के जनक (पिता) 'विराट पुरुष' को भी जिस तरह पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के व्रत से उस पद की प्राप्ति हुई थी, मैं वह कथा कहता हूं।

प्राकृत पुरुष के पुत्र प्रधान पुरुष है। उनके पुत्र हिरण्यगर्भ नाम के महाविष्णु है और उनके पुत्र विराट पुरुष है। उनकी आयु के अनुसार सौ वर्ष का जीवन भोगने के बाद उनका निधन होता है और वह विराट पद किसी अन्य को मिलता है। इस प्रकार सृष्टि में विराट पुरुषों की संख्या अनगिनत है। अभी जो विराट पुरुष है, उनसे पहले जो विराट थे, उनके अंतिम वर्ष के अंतिम दिन की अंतिम क्षणों में अर्थात वर्तमान अंतिम ब्रह्मा के समय में सहस्राक्ष नाम के एक चक्रवर्ती सम्राट थे।

वे भक्तिवान राजा सत्यलोक से लेकर पाताल लोक तक विमान से यात्रा करते थे। अपने सामर्थ्य के कारण, वे राजा अपने घर में ही रहकर चौदह लोकों में स्थित अपनी प्रजा के व्यवहार को हाथ में रखे आंवले की तरह जान सकते थे।

दिग्पालों, मनुओं, देवताओं और ऋषियों से भरी ब्रह्मा की सभा में जब उन्हें प्रथम स्थान नहीं मिला, तब उन्होंने ब्रह्मवेत्ताओं (विद्वानों) को बुलाकर पूछा कि – मुझे ब्रह्मपद (ब्रह्मा के पद) से भी उत्तम पद कैसे मिल सकता है? तब ब्राह्मणों ने कहा कि आप अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, वैष्णव, महारौद्र और अश्वमेध जैसे यज्ञ दिव्य सौ वर्षों तक करें। उन यज्ञों के महापुण्य के प्रताप से आप निश्चित ही ब्रह्मा के पद से भी श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करेंगे। सौ महायज्ञ करने से इंद्र पद, हजार यज्ञों से सूर्य पद, दस हजार से ध्रुव पद, लाख यज्ञों से ब्रह्मा का पद, करोड़ यज्ञों से सौ मुख वाले ब्रह्मा का पद और परार्ध यज्ञों से विराट पद की प्राप्ति होती है। परंतु इस लोक में किसी की भी आयु इतनी लंबी नहीं होती (कि इतने यज्ञ कर सके)।

अनुक्रमणिका

इसलिए भगवान ने जो भोग दिए है, उन्हें भोगें और शांत रहें। तृष्णा रूपी पिशाचिनी भोगों के जरिए कभी शांत नहीं होती।

[1] जो हमेशा यह सोचता रहता है कि – यह व्यक्ति बुद्धि, धन या सभा में मुझसे श्रेष्ठ है उसे कभी सुख प्राप्त नहीं होता। इसके विपरीत, जो यह मानता है कि मैं एक महान आत्मा हूं और श्रीहरि के आनंद से परिपूर्ण हूं, उसे इच्छाओं (तृष्णा) से पैदा होने वाले दु:ख कभी नहीं सताते। दूसरों की उन्नति या अधिकता देखकर कभी दु:खी नहीं होना चाहिए। अपनी मेहनत से जो प्राप्त किया हो, वही वास्तविक सुख और शांति देने वाला होता है। जो व्यक्ति श्रीहरि की इच्छा और अपने पुरुषार्थ (मेहनत) से मिली हुई वस्तुओं में संतोष रखता है, वह इस संसार में सदा सुखी रहता है। तीनों लोकों में आपका अटूट और मजबूत साम्राज्य है। यदि इतने से भी आपको शांति नहीं मिल रही है, तो और अधिक पाने के बाद भी शांति कैसे मिलेगी? जब तक माया का प्रभाव है, तब तक किसी को भी परम शांति प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए हे राजन! अपनी तृष्णा (लालच) छोड़िए और शांति बनाए रखिए। इतना कहकर ब्राह्मण मौन हो गए। लेकिन राजा सहस्राक्ष ने उन ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों की बात पर ध्यान नहीं दिया और विधि-विधान के साथ बड़े-बड़े यज्ञ करने लगे। इससे उन्होंने बहुत पुण्य अर्जित किया । जब राजा सहस्राक्ष की आयु का अंतिम वर्ष आया, तब पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (१) के दिन प्रात:काल के समय उन्होंने श्रीहरि के पार्षद दुन्दुभी की धोषणा सुनी कि –

[2] भगवान श्रीनारायण ने कहा है कि- पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (१) को जो मनुष्य व्रत करता है, उसे मैं वह फल प्रदान करूंगा जो करोड़ों कल्पों में, करोड़ों यज्ञों और करोड़ों दानों से भी मिलना दुर्लभ है यानी मैं स्वयं सर्वेश्वर श्रीकृष्ण पुरुषोत्तमनारायण उसे प्राप्त हो जाऊंगा। इस व्रत में व्यक्ति को अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार पूजन और दान करना

1.अयं मत्तो महानस्ति लक्ष्म्या बुद्ध्या जनैश्च वा । इति चिन्तयितुर्नैव सुखप्राप्तिर्भवेत् क्वचित् ॥ २७ ॥ अहमस्मि महानात्माऽऽनन्देन पूरितो हरेः । इति मन्तुर्न वै दुःखं तृष्णादिदोषजं भवेत् ॥ २८ ॥ अन्येषामधिकं दृष्ट्वा दुःखं मन्तव्यमेव न । स्वोपार्जितेन यत्प्राप्तं तत् सुखं शान्तिदं मतम् ॥ २९ ॥यदृच्छयोपपन्ने तु वस्तुनि तूद्यमार्जिते । अलं बुद्धिर्भवेद्यस्य स सदात्र सुखी भवेत् ॥ ३०॥

2.कृष्णनारायणः सर्वेश्वरः श्रीपुरुषोत्तमः । यदिष्टं यस्य तद् दास्ये कोटिकल्पैरलभ्यकम् ॥ ४० ॥ कोटियज्ञैः कोटिदानैर्यदलभ्यं ददाम्यहम् । अत्र व्रते प्रकर्तव्यं राज्ञा दानं यथाबलम् ॥ ४१ ॥

चाहिए। उत्तम पकवानों और मिठाइयों से सभी को भोजन कराकर तृप्त करना चाहिए और सामर्थ्य अनुसार अधिक से अधिक दक्षिणा अर्पित करनी चाहिए। मुझ पुरुषोत्तमनारायण का अनेक प्रकार की पूजन सामग्रियों (उपचारों) से पूजन करना चाहिए। इस शुभ कार्य में धन खर्च करने में तनिक भी लोभ नहीं करना चाहिए। इस प्रकार अधिक मास में व्रत करने वाले भक्त को मैं पुरुषोत्तमनारायण अत्यधिक तृप्ति और शाश्वत फल प्रदान करूंगा। इतना ही नहीं, इस व्रत के प्रभाव से श्रीकृष्णनारायण भक्त को विराट पद (परम पद) भी प्रदान करते है।

श्रीहरि के पार्षद दुंदुभि के ऐसे वचनों को सुनकर राजा ने उन्हें प्रणाम किया और उनका पूजन किया। फिर दुंदुभि ने जैसा बताया था, ठीक उसी तरह राजा ने संपूर्ण व्रत का पालन किया।

प्रातःकाल ब्रह्माजी के सत्यलोक की सभा में पत्नीव्रत नामक ब्राह्मण को बुलाकर राजा ने कहा - हे ब्रह्ममूर्ति! हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! श्रीहरि के पार्षद दुंदुभि की बात मानकर मैंने विराट पद पाने के लिए पुरषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (१) का व्रत किया है। मैं इसकी पूर्णता के लिए गंगाजल की साक्षी में अपना यह चौदह भुवनों का राज्य (सत्यलोक से पाताल लोक तक के सभी लोक) आपको दान करता हूं। मैं आपको साक्षात फल देने वाले भगवान पुरुषोत्तम मानकर यह दान दे रहा हूं।

जैसे ही ब्राह्मण पत्नीव्रत ने वह दान स्वीकार किया, वैसे ही उनके भीतर से अचानक करोड़ों सूर्यों के समान महा तेजस्वी श्रीपुरुषोत्तमनारायण प्रकट हुए। गए। उन्होंने मंद मुस्कान के साथ राजा सहस्राक्ष से कहा - हे राजन् ! ब्राह्मण के रूप में मैंने तुम्हारा दान पूरी तरह स्वीकार कर लिया है। इसके फल स्वरूप आयु के अंत में तुम्हें विराटपद की प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर भगवान ने राजा के सिर पर अपना हाथ रखा और अदृश्य हो गए। इसके बाद राजा उस ब्राह्मण पत्नीव्रत के

दास बनकर रहे और जीवन समाप्त होने पर उन्होंने विराट पद को प्राप्त किया।

भूमापुरुष, हिरण्यगर्भ और अन्य ईश्वरों ने उनका विराट पद पर अभिषेक किया। उन विराट नारायण के नाभि-कमल से ब्रह्मा, हृदय से विष्णु और ललाट से शंकर प्रकट हुए। जिस विराट नारायण के उदर में यह सारा जगत समाया हुआ है, उसे राजा सहस्राक्ष ने पुरषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (१) के व्रत के प्रभाव से प्राप्त किया। इस प्रकार अधिक मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का व्रत करने वाले पर प्रसन्न होकर श्रीहरि भला क्या नहीं देते? (अर्थात् वे इच्छित सब कुछ प्रदान करते है)।

[1] हे लक्ष्मी! जो भी इस कथा को कहेगा या सुनेगा, उसे भी वैसा ही (दिव्य) फल प्राप्त होगा, ऐसा मैं पुरुषोत्तमनारायण कहता हूं। लेकिन जो व्यक्ति झूठ बोलने वाला है, दूसरों में दोष ढूंढता है, नास्तिक है, निंदा करता है और मेरे प्रति श्रद्धा नहीं रखता, वह इस कृपा या फल को प्राप्त नहीं कर पाता।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक सोलहवां (३०८) अध्याय समाप्त।

1. अस्य श्रावयिता चापि पाठकर्तापि तादृशम् । फलं संलप्स्यते लक्ष्मि ! वदामि पुरुषोत्तमः ॥ १२४ ॥

अनुक्रमणिका

अध्याय-१७

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! प्राचीन काल की एक सुंदर और दिव्य कथा सुनो। वर्तमान ब्रह्मा से पहले जो ब्रह्मा थे, उनके जीवन के अंतिम समय में पृथ्वी पर सर्वहुत नाम का एक राजा था। वह मेरा परम भक्त था और सदैव मेरी पूजा में लीन रहता था। उसने अपना सब कुछ मुझे ही समर्पित कर दिया था, वह मेरे नाम की कंठी-माला और तिलक धारण करता था और केवल मेरा प्रसाद ही ग्रहण करता था।

चातुर्मास के दौरान उसने एक व्रत लिया और घोषणा करवाई कि - सात द्वीपों और नौ खंडों तक जहां-जहां मेरा राज्य है, वहां के सभी गरीब परिवार को केवल मेरे द्वारा दिया गया अन्न और जल ही ग्रहण करना होगा। साथ ही, सभी को मेरे द्वारा दिए गए वस्त्र ही पहनने होंगे और किसी अन्य व्यक्ति से कुछ भी स्वीकार नहीं करना होगा। इसके लिए मैंने राज्य के हर स्थान पर, हर समय अन्न क्षेत्र (भोजनालय), प्याऊ और वस्त्रालय स्थापित किए है। जो भूखा है वह अन्न-दान का पात्र है, जो प्यासा है वह जल-दान का पात्र है और जो निर्वस्त्र है वह वस्त्र-दान का पात्र है। इसके अलावा, जिनके मन में लोभ या लालसा है, वे अपनी तृष्णा (इच्छा) को शांत करने के लिए भी मेरे अन्न, जल और वस्त्र को ग्रहण करें।

इसके साथ ही; अग्निहोत्र, अन्य यज्ञ, देवताओं का पूजन, विद्यादान में होने वाला खर्च और गौमाता के चारे के लिए जो कुछ भी आवश्यक था, वह सब राजा की ओर से चातुर्मास के दौरान दिया जाता था। इस प्रकार राजा ने हर जगह दान देना शुरू कर दिया, जिससे सत्यलोक से लेकर पाताल लोक तक सभी लोग राजा सर्वहुत की कीर्ति (महिमा) का गान करने लगे।

देवता, ऋषि और दैत्य भी राजा सर्वहुत के दर्शन के लिए हंस आदि का रूप

धारण करके आते थे। राजा का मुख पुण्य के कारण चमक रहा था और उनके अत्यंत प्रभावशाली दिव्य रूप को देखकर सभी अत्यंत आश्चर्य चकित रह जाते थे।

सभी देवता दूर से तो बहुत तेजस्वी दिखाई देते थे, लेकिन जब वे राजा के पास जाते, तो राजा के तेज के सामने फीके (निस्तेज) पड़ जाते थे। इस प्रकार, ये राजा सर्वहुत इंद्र सहित सभी देवताओं, दिग्पालों और लोकपालों द्वारा सम्मानित थे।

उस राजा की एक पत्नी थी, जिसका नाम गोऋतंभरा था। वह बहुत उदार और पति की सेवा में तत्पर रहने वाली थी। वह देवियों से भी अधिक सुंदर थी, फिर भी देवियों की सभा में उसे पीछे बैठना पड़ता था, जिससे उसे बहुत संकोच और लज्जा महसूस होती थी। एक दिन उसने अपने पति से कहा – स्वामी! आप कुछ ऐसा उपाय करें कि मैं भी श्रेष्ठ आसन पर सबसे आगे बैठ सकूं। साथ ही, इंद्राणी और वारुणी जैसी देव पत्नी भी मुझे प्रणाम करें, ऐसा कुछ कीजिए।

यह सुनकर राजा ने कहा – हे सती! तुम एक मनुष्य रानी हो, फिर भी हमें देवताओं के समूह में स्थान मिलता है, यही बहुत बड़ी बात है। हे कल्याणी! तुम ऐसी इच्छा मत करो, क्योंकि मनुष्यों के लिए यह संभव नहीं है। फिर भी, यदि कभी पुण्यों का उदय हुआ तो ऐसा जरूर होगा। मैं भगवान नारायण की स्तुति करके इसके लिए प्रयास भी करूंगा।

इस तरह रानी समय-समय पर राजा को अपनी बात याद दिलाती रहती थी और राजा भी उचित समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक बार पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की द्वितीया के दिन, प्रातःकाल जब राजा स्नान करके देव-पूजा के लिए जा रहे थे, तभी उन्हें पुरुषोत्तमनारायण के वचनों की घोषणा करने वाले दुंदुभि की उद्घोषणा सुनाई दी। रानी गोऋतंभरा ने भी दुंदुभि की यह घोषणा सुनी कि –

अनुक्रमणिका

[1] पुरुषोत्तमनारायण कहते है कि - जो लोग अधिक मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया (२) का व्रत करेंगे, उन्हें मैं पुरुषोत्तमनारायण उनकी इच्छानुसार फल दूंगा। जो लोग एक समय भोजन करके, शाम के बाद भोजन करके, फलाहार करके या केवल जल या वायु का सेवन करके इस पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया का व्रत करेंगे, उन्हें स्त्री, पुत्र, धन-संपत्ति, घर, वाहन, राज्य, साम्राज्य और चौदह लोकों का आधिपत्य प्राप्त होगा। इसके अलावा वरुण, अग्नि, यम, कुबेर, दिक्पाल या लोकपाल जैसे उच्च पद अथवा अष्ट-सिद्धि आदि में से जो कुछ भी वे चाहेंगे, वह सब मैं उन्हें प्रदान करूंगा।

[2] अधिक मास का देवता मैं स्वयं श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम हूं, इसलिए मेरे लिए किए गए थोड़े से भी व्रत का मैं अनंत फल दूंगा। जो फल मैं दूसरे महीनों में नहीं देता, वह फल इस महीने में बहुत अधिक मात्रा में देता हूं। इस महीने में मात्र मेरी इच्छा और कृपा से ही मैं (भक्तों की) इच्छाएं पूरी करने वाला बनता हूं (अर्थात इस मास में भक्त की तपस्या नहीं मेरी कृपा ही अनन्त और शाश्वत पुण्य फल प्रदान करने वाली है)।

[3] इस महीने में किए गए कर्मों का फल केवल उनके हिसाब के अनुसार नहीं मिलता। इस महीने में तो मेरी कृपा से ही फल का न्याय होता है। मैं स्वयं सभी का स्वामी, अपनी कृपा से ही असीम पुण्य बांटता हूं। इस मास में किए गए कर्मों का मैं करोड़ गुना और अनंत गुना फल देता हूं, इसलिए संकल्प के अनुसार मुझ पुरुषोत्तमनारायण से अपनी इच्छा पूर्ति का फल ग्रहण करो।

राजा और रानी ने यह घोषणा सुनकर दुंदुभि को नमस्कार किया और उनकी पूजा की। इसके बाद दुंदुभि वहां से चले गए और राजा ने रानी से कहा - हे देवी! आपको जो श्रेष्ठ पूजनीय स्थान प्राप्त करने की इच्छा है, उसकी प्राप्ति के लिए हम दोनों यह व्रत करते है । दुंदुभि ने कहा है कि इस मास में थोड़े से व्रत का भी

1. अधिमासद्वितियायां व्रतं कुर्वन्ति ये जनाः । तेषामभीष्टदाताऽहं मासः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ ४३ ॥
2. अधिमासस्य देवोऽहं श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः । स्वल्पेऽपि मत्कृते कृच्छ्रे फलं दास्ये त्वनन्तकम् ॥ ५१ ॥ ददामि नाऽन्यमासे यत् तद्दाम्यत्र पुष्कलम् । अत्राहं कृपया दाता दातास्मि स्वेच्छया खलु ॥ ५२ ॥
3. नात्र विनिमयो न्यायो न्यायस्त्वत्र कृपा मम । कृपयाऽहं स्वयं स्वामी वितरामि त्वशेषकम् ॥ ५४ ॥ कोटिगुणं वितरामि वितरामि त्वनन्तकम् । यथासंकल्पितं तस्माद् गृह्णन्तु पुरुषोत्तमात् ॥ ५५ ॥

बहुत बड़ा फल मिलता है। मैं ब्रह्मा बनूंगा और तुम मेरी अर्धांगिनी (पत्नी) ब्रह्माणी बनोगी। इसलिए तुम सभी देवियों की माता बनोगी, तब तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। श्रीकृष्णनारायण देव हमारे द्वारा किए गए व्रत का फल देंगे। ऐसा विचार कर और व्रत का संकल्प लेकर उन्होंने आदरपूर्वक व्रत किया।

श्रीहरि का ध्यान करके, उन्होंने श्रीकृष्ण (पुरुषोत्तमनारायण) की स्वर्ण की मूर्ति बनाई और आवाहन, आसन, आचमन, पाद्य, महा-अभिषेक, वस्त्र, आभूषण, चंदन, पुष्प, धूप, दीप, महा-नैवेद्य और तांबूल (पान) अर्पित कर उनकी आरती की। इसके बाद आदरपूर्वक प्रदक्षिणा, स्तुति और नमस्कार करके प्रार्थना की - हे केशव! हे विश्वात्मन! हमारे इस व्रत से प्रसन्न हों और अर्घ्य तथा फलों को ग्रहण करें। ऐसा कहकर उन्होंने फल अर्घ्य और पुष्पांजलि अर्पित की।

दोपहर के समय भी उन्होंने इसी प्रकार पूजन किया। शाम को भी राजा और रानी ने श्रीहरि की पूजा-आरती की और वाद्य यंत्रों, नृत्य, कीर्तन एवं उत्सव के साथ जागरण किया। साथ ही, उन्होंने अनेक मणियों, छत्र और चंवर से सुशोभित स्वर्ण सिंहासन तथा सभी प्रकार के सुख-वैभवों से संपन्न एक विशाल महल श्रीकृष्ण परमात्मा को दान में अर्पित किया।

उस समय प्रसन्न होकर श्रीहरि वहां पधारे और राजा-रानी से कहने लगे - मैं आपके द्वारा किए गए व्रत और दान से बहुत प्रसन्न हूं, आप मनोवांछित वरदान मांगिए। तब दंपति (राजा-रानी) ने कहा - हे भगवन! हमें ब्रह्मा का पद (पारमेष्ठ्य पद) दीजिए और उसके बाद हमें आपका शाश्वत मोक्ष रूपी अक्षरधाम प्राप्त हो। तब 'तथास्तु' कहकर श्रीहरि गोऋतंभरा से कहने लगे - पृथ्वी पर पुष्कर क्षेत्र में गायत्र नाम का एक राजा होगा। उसकी ऋषि नाम की पत्नी से तुम आर्षि नाम की कन्या के रूप में जन्म लोगी। और यह सर्वहुत राजा (अगले जन्म में) ब्रह्मा बनेंगे। सत्ययुग में वे देवताओं, ऋषियों, मुनियों, पितरों और दैत्यों के साथ यज्ञ करने के लिए पुष्कर तीर्थ जाएंगे। यज्ञ में जब अग्नि प्रज्वलित होगी और दीक्षा

का समय आएगा, तब अध्वर्यु (पुरोहित) द्वारा बुलाई गई सावित्री (ब्रह्माजी की पत्नी) तैयार होकर तुरंत यज्ञभूमि में नहीं आएंगी। तब ब्रह्माजी इंद्र से कहेंगे कि इस यज्ञ की दीक्षा का समय निकला जा रहा है, इसलिए तुम तुरंत मेरे लिए कोई दूसरी पत्नी ले आओ। उस समय, यज्ञभूमि देखने के लिए आई हुई नवयौवना और राजा गयत्र की पुत्री आर्षि को इंद्र ब्रह्माजी के पास ले जाएंगे। तब ब्रह्माजी गंधर्व विवाह करके तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करेंगे। इसके बाद एक हज़ार दिनों तक पुष्कर में यज्ञ चलेगा। तब से तुम ब्रह्मा की पत्नी गायत्री, लोकमाता, वेदमाता और सृष्टि की माता के रूप में पहचानी जाओगी और सभी के द्वारा पूजनीय तथा मान्य बनोगी। इस प्रकार, पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया (२) के व्रत के प्रभाव से और मेरी कृपा से, आप दोनों पति-पत्नी ब्रह्मा और गायत्री बनोगे। आप ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु का सुख भोगकर अंत में मेरे अक्षरधाम को प्राप्त करोगे। तुमने मुझे महानगर जैसा विशाल महल दान में दिया है, उसके बदले में मैं तुम्हें पूरे ब्रह्मांड का राज्य सौंपता हूं। ऐसा कहकर भगवान श्रीहरि उस स्थान से अदृश्य हो गए और समय आने पर राजा-रानी को 'पारमेष्ठ्य पद' (ब्रह्मा का पद) प्राप्त हुआ।

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! इस प्रकार मैंने तुम्हें पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया (२) के व्रत की महिमा सुनाई।

[1] जो कोई भी इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की द्वितीया (२) के व्रत की कथा कहेगा या सुनेगा, उसे पारमेष्ठ्य पद (ब्रह्मा का पद) प्राप्त कराने वाले पुण्य फल की प्राप्ति होगी, इसमें कोई संदेह नहीं है - ऐसा मैं स्वयं पुरुषोत्तमनारायण कहता हूं।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक सत्रहवां (३०९) अध्याय समाप्त ।

1. पारमेष्ठ्यपददातृ श्रोतुर्वक्तुस्तथा फलम् । भविष्यति न सन्देहो वक्तिश्रीपुरुषोत्तमः ॥ १०८ ॥

अध्याय-१८

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! सुनो। सृष्टि के प्रारंभ में पृथ्वी पर ब्रह्मसविता नाम के एक चक्रवर्ती (सम्राट) राजा थे। उनकी पत्नी का नाम भूरिशृंगा था, जो पतिव्रता और अपने धर्म का पालन करने वाली थीं। वह दंपत्ति (पति-पत्नी) भगवान के भक्त थे और अपने गृहस्थ धर्म का पालन पूरी निष्ठा से करते थे। वे दान-पुण्य करने वाले, गुरुजनों की सेवा करने वाले और सदैव श्रीहरि की भक्ति में लीन रहने वाले थे। वे अतिथियों का सत्कार करते, बड़ों के साथ विनम्रता से व्यवहार करते और गायों की सेवा करते थे। वे अपनी प्रजा के प्रति दयालु थे, गरीबों का दुःख दूर करते थे, सज्जनों की सेवा करते थे और दुष्टों को दंड देकर प्रजा के कष्टों को हरने वाले थे। राजा ब्रह्मसविता प्रतिदिन नदी के जल में स्नान करके संध्या-वंदन, जप, होम और स्वाध्याय (शास्त्रों का पाठ) करते थे। इसके बाद वे अन्न, वस्त्र और धन का दान देते थे। फिर वे मंदिरों में देवताओं के दर्शन करने जाते और वहां भोग के लिए मिठाई तथा फल अर्पित करते थे। विशेष पर्वों और शुभ अवसरों पर वे भक्ति भाव से देवताओं की पूजा करवाते थे। वे ब्राह्मणों, साधुओं, साध्वियों, मुनियों, यतियों और अतिथियों को भोजन कराते और उन्हें स्वर्ण मुद्राओं (सोने की मोहरों) की दक्षिणा देते थे। वे अपने राजकोष से विभिन्न प्रकार का अन्न भी दान में देते थे। वे धर्मात्मा राजा अपने दास-दासियों की प्रार्थना सुनते और उनकी इच्छित वस्तुएं देकर उन्हें बार-बार सुख पहुंचाते थे।

रानी भूरिशृंगा भी घर में देवताओं की पूजा करती थीं और नित्य देवताओं के दर्शन करने के लिए बिना जूतों के, पैदल ही जाती थीं। वे देवताओं और गुरुओं को जल, पत्र, फल, फूल, चंदन और सोने की दक्षिणा आदिका दान करती थीं। घर आकर राजा सहित सबको भोजन कराने के बाद ही वे स्वयं भोजन करती थीं।

अनुक्रमणिका

चातुर्मास के दौरान राजा ने एक नियम लिया कि वे सभी मंदिरों में भगवान श्रीहरि को अखंड घी के दीपक अर्पित करेंगे। उनके राज्य के अंतर्गत आने वाले सातों द्वीपों, नौ खंडों और समुद्री द्वीपों में जहां-जहां भी परमेश्वर, उनके अवतारों, ईश्वरों, योगियों, देवी-देवताओं, चमत्कारी पुरुषों, तीर्थों, तीर्थों के अधिपति देवताओं, विभूतियों और जड़-चेतन आदि के मंदिर थे, वहां उन्होंने सोने के पात्रों में गाय का शुद्ध घी भरकर, अच्छी बत्ती वाले अखंड दीप प्रज्वलित करवाए। यदि राजा को कभी यह पता चलता कि उनके राज्य के किसी मंदिर में अखंड घी का दीपक दान करना रह गया है, तो वे प्रायश्चित के रूप में उपवास करते और एक हजार स्वर्ण मुद्राएं (सोने की मुहरें) दान देकर वहां अखंड दीपक की व्यवस्था करते थे। वह राजा सर्वत्र यह घोषणा करवाते थे कि - मेरे राज्य के सभी मंदिरों में समस्त देवी-देवताओं को मेरी ओर से ही अखंड घी के दीपक अर्पित किए जाएं। साथ ही, सभी देवों के लिए पंचामृत स्नान, मिठाइयों का भोग और षोडशोपचार पूजा (सोलह विधियों से पूजा) की सामग्री आदि - मेरी ओर से ही दी जाए। चातुर्मास के दौरान ब्राह्मणों, साधुओं, साध्वियों, गरीबों, अनाथों और जरूरतमंदों को सब्जियां, दूध, विभिन्न प्रकार के रस और भोजन मेरी ओर से ही प्राप्त हों। साथ ही, गायों को घास-चारा, पालतू पशुओं और कबूतर आदि पक्षियों को दाना तथा चींटियों को पिसा हुआ अन्न (आटा) मेरी तरफ से दिया जाए। यज्ञ की सामग्री का दान, जल दान, वस्त्र दान तथा स्वर्ण मुद्राएं और रुपयें आदि भी हमेशा राजकोष से ही किया जाए।

इस प्रकार राजा ब्रह्मसविता ने पूरी पृथ्वी पर घोषणा करवा दी। उनकी पत्नी भूरिशृंगा ने भी अपने पति के साथ चातुर्मास का व्रत किया। वह प्रतिदिन स्नान करके केले के खंभों और तोरणों से सजे हुए मंडप बनवाती थीं। वह हर रोज अनाज से सर्वतोभद्र मंडल(एक पवित्र वेदी) तैयार करवातीं और उसके बीच में भगवान पुरुषोत्तमनारायण की सोने की मूर्ति स्थापित करके बहुत भक्तिभाव से

उनकी पूजा करती थीं।

दोपहर के समय वह श्रीहरि को छप्पन भोग का नैवेद्य अर्पित करतीं और शाम को आरती के बाद अपनी दासियों के साथ भगवान को प्रसन्न करने के लिए नृत्य करती थीं। इस प्रकार, अहंकार को त्याग कर वह महारानी पुरुषोत्तमनारायण को प्रसन्न करने के लिए प्रतिदिन सेवा-पूजा करती थीं। भगवान श्रीकृष्ण भी उनके मधुर कीर्तन और नृत्य को देखकर प्रसन्न होते थे, लेकिन उन्होंने अभी तक साक्षात् दर्शन नहीं दिए थे।

पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की तृतीया के दिन सुबह उस दंपत्ति ने श्रीहरि के पार्षद दुंदुभि की एक बहुत ही आश्चर्यजनक घोषणा सुनी कि - हे नगरवासियों, वनवासियों, स्त्री-पुरुषों और देवी-देवताओं! आप सभी ध्यान से सुनें। मैं ब्रह्मधाम का स्वामी, अधिक मास का देवता साक्षात् पुरुषोत्तमनारायण कहता हूं कि -

[1] जो भी स्त्री या पुरुष पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की तृतीया (३) का व्रत पूरी श्रद्धा के साथ मेरा पूजन करके करेंगे, वे परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करेंगे, चाहे वे राजा हों या रानी, यदि वे दिन में एक बार भोजन करके, नक्त (सूर्यास्त के बाद) भोजन करके, केवल फल खाकर या बिना मांगे जो मिल जाए उसे ग्रहण करके यह व्रत करते है , तो उन्हें परम पद प्राप्त होगा। इसके अलावा, इस व्रत के प्रभाव से लोगों को इच्छित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - ये चारों पुरुषार्थ प्राप्त होंगे। उन्हें पुत्र-पौत्र आदि वंश वृद्धि, कुल का यश और सभी प्रकार के सुख-ऐश्वर्य मिलेंगे। अतः इस एक दिन का व्रत करके आप शाश्वत (हमेशा रहने वाले) सुख को प्राप्त करें। मैं परम उदार पुरुषोत्तम श्रीकृष्णनारायण सभी सम्पदा प्रदान करूंगा। जो भक्त पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (१३) के दिन भोजन का दान करेगा, उसे मैं स्थिर नव निधियां

1. परपक्षतृतीयायां व्रतं तु श्रद्धयान्वितम् । करिष्यन्ति नरा नार्यो मम पूजनपूर्वकम् ॥ ४३ ॥ एकभुंक्तेन नक्तेन फलेनाऽयाचितेन वा । राजानो यदि वा राज्ञ्यः प्राप्स्यन्ति परमं पदम् ॥ ४४ ॥

अनुक्रमणिका

दूंगा। सोने के दान से कुबेर का पद, रस (पेय पदार्थ) के दान से वरुण का पद, रत्नों के दान से इंद्र का पद, पुण्यों के दान से धर्मराज का पद और धन के दान से अष्टवसुओं का पद प्रदान करूंगा। जो अपना सर्वस्व दान करेगा उसे अष्ट-सिद्धियों का वैभव मिलेगा। दीप दान करने वाले को सूर्य पद, दूध का दान करने वाले को चंद्र पद और अन्न-जल का दान करने वाले को समृद्ध साम्राज्य प्राप्त होगा। रथ आदि वाहनों के दान से स्वर्ग का विमान, वस्त्र दान से पृथ्वी, कन्यादान से हजार कन्याओं का फल और गौ दान से रसवती पृथ्वी प्राप्त होगी। घर का दान करने वाले को मैं ब्रह्मांड दूंगा, फल के दान से कल्पवृक्ष दूंगा और आभूषणों के दान से स्वर्ग प्रदान करूंगा। इस दिन मेरी पूजा करने वाले को तीनों लोकों में पूजनीय बनाऊंगा। मेरे भक्त जो भी इच्छा करेंगे, मैं उन्हें वह सब दूंगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस प्रकार श्रीहरि की घोषणा करके दुंदुभि (श्रीहरी के पार्षद) मौन हो गए। राजा ब्रह्मसविता और महारानी भूरिश्रृंगा ने श्रीकृष्ण के दूत दुंदुभि को प्रणाम कर उनका पूजन किया। फिर उस दंपत्ति ने सूर्य पद की इच्छा से पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की तृतीया (३) का व्रत एक समय अन्न ग्रहण करके किया। उसमें, हे केशव! चातुर्मास में दीप दान करने से मैं अपनी पत्नी सहित तीनों लोकों के नेत्र स्वरूप सूर्य बनूं - ऐसा संकल्प करके राजा ने अपनी पत्नी के साथ व्रत किया। उन्होंने प्रातःकाल स्नान किया और श्रीहरि का स्मरण किया। फिर एक सुंदर मंडप में सर्वतोभद्र मंडल के बीचों-बीच रखे कलश पर भगवान पुरुषोत्तम श्रीकृष्णनारायण की सोने की मूर्ति स्थापित की और षोडशोपचार (सोलह सामग्रियों) से उनका पूजन किया।

उन्होंने दोपहर, शाम और रात को भी भगवान की पूजा की और जागरण किया। जब राजा श्रीहरि के सामने भक्तिभाव से कीर्तन युक्त नृत्य करने लगे, तब महा तेजोमय साक्षात भगवान श्रीहरि प्रकट हुए। भगवान ने कहा - मैं तुम्हारे इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के व्रत, पूजा, चातुर्मास के नियम, सब जगह

अनुक्रमणिका

किए गए दीप दान और तुम्हारी अनन्य भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूं। तुम्हारी जो इच्छा है कि तुम तीनों लोकों के नेत्र रूपी 'सूर्य' बनो, वह पद मैं तुम्हें देता हूं। तुम अपनी पत्नी सहित सूर्य बनो। ऐसा कहकर श्रीहरि वहां से अदृश्य हो गए।

राजा और रानी ने रात भर कीर्तन युक्त नृत्य और जागरण किया। फिर सुबह होते ही उन्होंने गाय, घोड़े, मणि, रत्न, सोने की मुद्राएं, वस्त्र, पात्र, भवन (मकान), खेत, बाड़िया, बगीचे, कुएं, वापिका और अन्न आदि अनेक प्रकार की वस्तुओं का दान किया। इसके अलावा, उन्होंने ब्राह्मणियों को श्रृंगार की विभिन्न वस्तुएं, सन्यासियों को कमंडल आदि पात्र, गृहस्थ को घर में उपयोग की वस्तुएं, भूखों को भोजन और प्यासों को जल - दान में दिया। उन्होंने हर जरूरतमंद व्यक्ति को सुख-सुविधा का वह सारा सामान दिया जिसकी उसे आवश्यकता थी। हे लक्ष्मी! इस प्रकार उस दंपत्ति (पति-पत्नी) ने अत्यंत उत्तम दान किए।

तत्पश्चात सभी साधुओं और ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद जब वह दंपत्ति (राजा और रानी) स्वयं भोजन करने जा रहे थे, ठीक उसी समय वहां पुरुषोत्तमनारायण एक भिक्षुक के रूप में पधारे। उनके वक्षस्थल (सीने) पर सुनहरी रेखा के रूप में लक्ष्मी जी विराजमान थीं। उनकी बाईं जंघा पर श्री का दिव्य चिन्ह था। उनके दाहिने हाथ में ध्वज, मत्स्य, स्वस्तिक और धनुष के शुभ चिन्ह शोभा दे रहे थे और उनके नेत्र कमल की पंखुड़ियों के समान सुंदर थे। ऐसे भिक्षुक को देखकर राजा और रानी ने उन दिव्य चिन्हों से उनको पहचान लिया कि ये स्वयं भगवान नारायण ही है । उन्होंने आदरपूर्वक उन्हें भोजन कराया और उनकी चरण सेवा की ,तब दंपति को समाधि लगी। समाधि में राजा ब्रह्मसविता ने 'सूर्य' नाम का एक विशाल दिव्य गोला देखा। उस प्रकाश के भीतर उन्होंने अपना 'हिरणमय' (स्वर्ण के समान दिव्य) शरीर देखा, जिससे यह पूरा जगत प्रकाशित हो रहा था। दूसरी ओर रानी भूरिश्रृंगा ने स्वयं को 'संज्ञा' नामक हिरणमयी सूर्य-

पत्नी के रूप में देखा और वे परम संतोष को प्राप्त हुईं। इसके बाद श्रीहरि वहां से अदृश्य हो गए और वह दंपत्ति समाधि से जाग्रत हुए। इस अलौकिक अनुभव से वे दोनों आश्चर्यचकित रह गए और स्वयं को धन्य मानते हुए निरंतर श्रीकृष्ण की सेवा करने लगे।

समय बीतने पर जब उस कल्प का अंत हुआ, तब राजा और रानी दिव्य शरीर धारण कर 'सूर्यकांत' नामक विमान में बैठकर महर्लोक को प्राप्त हुए।

ब्रह्मा की रात्रि पूरी होने पर, कल्प की शुरुआत में सृजन के समय वही राजा ब्रह्मसविता सूर्य बने और उनकी पत्नी भूरिश्रृंगा, विश्वकर्मा की संज्ञा नाम की पुत्री के रूप में प्रकट हुईं। विश्वकर्मा ने अपनी उस पुत्री का विवाह सूर्यदेव से कर दिया।

इस प्रकार, भूरिश्रृंगा और ब्रह्मसविता, सबको दृष्टि देने वाले देव – सूर्य और संज्ञा बने। भला दूसरा कौन इस सूर्य पद को प्राप्त कर सकता है? इस प्रकार, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की तृतीया (३) के व्रत और दीप दान के प्रभाव से, जब तक स्वर्ग का अस्तित्व रहेगा, तब तक वे सूर्य पद पर प्रतिष्ठित रहेंगे।

[1] इसलिए प्रतिदिन मंदिरों में दीप दान करना चाहिए, इससे अंधापन नहीं आता और जीवन में प्रकाश एवं दिव्यता प्राप्त होती है। जिस प्रकार राजा ब्रह्मसविता ने सूर्यपद प्राप्त किया, उसी तरह इस कथा को सुनने वाले और सुनाने वाले को भी वैसा ही पुण्य-लाभ मिलता है। हे लक्ष्मी! इस प्रकार मैंने तुम्हें सूर्यनारायण से संबंधित यह अत्यंत दिव्य, पवित्र और पुण्य देने वाली कथा सुनाई।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक अठारहवां (३१०) अध्याय समाप्त ।

1. तस्माद् दीपाः प्रदातव्या देवालयेषु नित्यदा । अनन्धत्वं प्रकाशित्वं दिव्यत्वं तेन चाप्नुयात् ॥ ९३ ॥ यथा ब्रह्मसविता स प्राप्तवान् सूर्यतां नृपः । श्रोतुर्वक्तुः कथायाश्च लाभो वै तादृशो भवेत् ॥ ९४ ॥

अध्याय-१९

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! पिछले कल्प में हुई यह कथा सुनो। सौराष्ट्र की रैवतभूमि में समितिपियूष नाम का एक राजा हुआ। उसकी पद्मपत्रा, पुष्करिणी, हेममालिनी, पद्माक्षी, पिशंगिनी आदि सत्ताईस (२७) पत्नियां थीं। वे सभी पतिव्रता धर्म का पालन करने वाली थीं। वे पूरी श्रद्धा के साथ भगवान की भक्ति और अतिथियों का सत्कार करती थीं। वे नियम से स्नान, ध्यान, देव-पूजा, जप, हवन, देवकार्य, पितृकार्य और श्रेष्ठ यज्ञ करती थीं। वे अपने आश्रितों को भोजन कराने के बाद ही स्वयं अन्न-जल ग्रहण करती थीं। घर में हजारों दासियां होने के बावजूद, वे भगवान विष्णु और अपने पतिदेव की सेवा अपने हाथों से ही करती थीं।

वे भगवान के लिए अनाज साफ करना, भोग तैयार करना, जल भरना, देव-पूजा के बर्तनों को मांजकर साफ करना और पुष्प तथा तुलसी दल लाना - यह सभी सेवा पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ स्वयं करती थीं। वे अपनी ये सेवाएं कभी किसी दूसरे (दासी या सेवक) से नहीं करवाती थीं।

[1]भक्त भगवान के लिए भला क्या नहीं कर सकते? जहां अपना सर्वस्व (सब कुछ) अर्पित कर दिया गया हो, वहां इस शरीर से क्या सिद्ध नहीं किया जा सकता? इस अनित्य (नाशवान) शरीर के द्वारा नित्य पुण्य अर्जित करना चाहिए, ताकि श्रीकृष्ण की कृपा से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो सके। वे परमेश्वर ही सर्वथा वंदनीय, पूजनीय और संतोष देने वाले है , जिनसे सभी भोग्य वस्तुएं और सुख आदि प्रकट होते है । इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को उन परमेश्वर का ही भजन करना चाहिए। जब तक शरीर स्वस्थ है, इंद्रियां अपने वश में है और जठराग्नि (पाचन शक्ति) प्रबल है, तब तक मनुष्य को सकाम या निष्काम भाव से अपना आत्म-कल्याण सिद्ध कर लेना चाहिए।

1. हर्यर्थे खलु भक्तानां किमकार्यं भवेन्ननु । सर्वस्वं त्वर्पितं यत्र वर्मणा किं न जायते ॥ १२ ॥ अनित्येन तु देहेन नित्यं पुण्यं समर्जयेत् । येन भुक्तिस्तथा मुक्तिः कृष्णस्य कृपया भवेत् ॥ १३ ॥

अनुक्रमणिका

जब आंखों में अंधापन आ जाता है, तब भगवान के दर्शन नहीं हो पाते, इसलिए जब तक दृष्टि है, तब तक आंखों से प्रेम पूर्वक श्रीहरि के दर्शन हमेशा करने चाहिए। बहरापन आने पर श्रीहरि के नाम सुनाई नहीं देते, इसलिए जब तक कान साथ दे रहे है, तब तक भगवान के नाम, कथा और कीर्तन का श्रवण कर लेना चाहिए। विकलांगता आने पर सत्पुरुषों या श्रीहरि की सेवा नहीं हो पाती, इसलिए जब तक शरीर में बल है, तब तक हाथों से भगवान की सेवा कर लेनी चाहिए और जब तक पैर मजबूत है, तब तक भगवान के मंदिर जाना चाहिए। जब तक मन चिंताओं से मुक्त और स्थिर है, तब तक श्रीकृष्णनारायण का मनन कर लेना चाहिए। जब यह शरीर रूपी नगर (वृद्धावस्था या मृत्यु के समय) टूटने लगता है, तब इंद्रियों रूपी सारी प्रजा इस शरीर को छोड़कर जाने लगती है। इसलिए, जब तक शरीर स्वस्थ और अनुकूल है, तब तक पुरुषोत्तमनारायण की प्राप्ति का पुरुषार्थ कर लेना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके राजा समित्पियूष की वे सभी पत्नियां प्रतिदिन श्रीहरि की सेवा करती थीं। राजा भी दिन में त्रिकाल (तीन बार) स्नान करके तीनों समय श्रीकृष्णनारायण की पूजा करते थे। इस तरह भक्ति करते हुए उन्हें काफी समय बीत गया। उस कल्प में कार्तिक कृष्ण पक्ष की अष्टमी कृष्णाष्टमी थी। दीपावली से लेकर सप्तमी तक उन रानियों ने दिन में केवल एक बार भोजन किया और फिर अष्टमी का निर्जला (जल रहित) उपवास बड़े प्रेम से किया। उन्होंने पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, माता कंभरा और पिता गोपालकृष्ण की सोने की मूर्तियां बनवाईं और एक सुंदर मंडप तैयार करवाया। उस मंडप में भगवान पुरुषोत्तम की पूजा की और वाद्य यंत्रों के साथ मधुर स्वर में कीर्तन करते हुए वे नृत्य करने लगीं।

तभी वहां चतुर्भुज रूपधारी, कौस्तुभ मणि धारण किए हुए, नवीन मेघ के समान श्याम वर्णवाले, पीतांबर पहने हुए और श्वेत कांति से शोभायमान श्रीकृष्णनारायण स्वयं प्रकट हो गए। पुरुषोत्तमनारायण के दर्शन करके वे (रानियां) क्षण भर के लिए आश्चर्यचकित हो गईं। फिर श्रीहरि की उस मनोहर और दिव्य मूर्ति को देखकर मुग्ध हुई वे रानियां एक-एक करके सुंदर आभूषण आदि

लाकर श्रीहरि को अर्पित करने लगीं। उन रानियों ने भगवान श्रीहरि को मुकुट, कुंडल, तिलक, बाजूबंद, नूपुर, पादुका, मिठाई, शीतल जल, पान, छत्र, चंवर, फूलों के गुच्छ और सोने के कमल जैसी एक-एक वस्तु अलग-अलग अर्पित की। लेकिन विद्युल्लेखा ने परमात्मा को चुंबन किया, जिससे वह सभी रानियों में सबसे अधिक प्रेम पात्र बनी। इसी पुण्य के कारण अगले जन्म में वह अपने पति का अत्यंत प्रेम पाने वाली चंद्रमा की पत्नी रोहिणी बनी। अन्य स्त्रियां चुंबन देखकर लज्जित हो गईं, जिसके फल स्वरूप अगले जन्म में उन्हें चंद्रमा से वैसा विशेष मान-सम्मान नहीं मिला। सर्वजीता नाम की दासी ने भगवान की चरण सेवा की, जिससे वह अपनी सेवा भावना के कारण स्नेह की पात्र बनी। इसके बाद उन सबने भगवान की आरती की, विशेष अर्घ्य और पुष्पांजलि दी तथा परिक्रमा, नमस्कार और स्तुति की। इससे अत्यंत प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने उन्हें खीर का प्रसाद दिया। प्रसाद ग्रहण कर वे तृप्त हुईं और भगवान को अपने हृदय में धारण किया। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा – तुम अमृत का भोजन करने वाली और सोने-रत्नों के हार पहनने वाली दिव्य देवियां बनो, जिनका निवास स्वर्ग में होगा। इतना कहकर श्रीकृष्ण अदृश्य हो गए।

रानियों ने पूजा समाप्त कर अपने पति राजा को सारा वृत्तांत सुनाया, जिसे सुनकर राजा समितिप्यूष बहुत संतुष्ट हुए। पूजा के बाद राजा अपनी पत्नियों सहित नित्य स्वर्ग की इच्छा रखने लगे। इस तरह लंबा समय बीतने के बाद, कल्प के अंत में उन्होंने भगवान पुरुषोत्तमनारायण का संदेश देते हुए दुंदुभि की उद्घोषणा सुनी कि – 'हे नर-नारियों! हे देवी-देवताओं! मेरी बात सुनो! अधिक मास के व्रत से जिसकी जो भी इच्छा होगी, मैं परब्रह्म सनातन पुरुषोत्तम उसे वही प्रदान करूंगा।

[1] पुण्य के हिसाब के बिना, मैं केवल अपनी कृपा से कहता हूं कि पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में किए गए थोड़े से शुभ कर्म का भी मैं अनंत गुना फल दूंगा। जो कोई पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी के दिन मुझे पत्र, पुष्प, फल, चंदन या अक्षत (चावल) आदि, किसी भी मनोकामना के साथ अर्पित करेंगे,

1. प्रवदामि कृपया वै विना पुण्यस्य तोलनम् । स्वल्पे कृतेऽप्यसंख्यातं फलं ददामि सर्वथा ॥ ५९ ॥ ये जना मे फलं पुष्पं पत्रं चन्दनमक्षतान् । अर्पयिष्यन्त्यधिमासे चतुर्थ्यो काम्यकर्मकृत् ॥ ६०॥ तेषां तु कामनाः सर्वाः पूरयिष्ये पुमुत्तमः । सर्वे मेऽस्ति मयि सर्वे मया व्याप्तं चराचरम् ॥ ६१ ॥

उन सब की इच्छाएं मैं पुरुषोत्तमनारायण पूर्ण करूंगा। यह सब कुछ मेरा ही है। मुझमें ही सब कुछ समाया हुआ है और मुझसे ही यह पूरा जड़-चेतन जगत व्याप्त है। मेरे बिना स्वतंत्र रूप से जड़ या चेतन कुछ भी नहीं है। जो भी जड़ या अजड़ तत्व है , वे पूरी तरह मेरे ही है । सभी मोक्ष के स्थान, सिद्धियां, ऐश्वर्य, विभूतियां, ईश्वर और देवताओं के पद, मनुष्यों और पाताल निवासियों की सुख-समृद्धि यह सब मेरा ही है, इसलिए तुम जो भी चाहोगे, मैं वह तुम्हें दूंगा।

[1] जिसने पुरुषोत्तम मास का पाक्षिक (पंद्रह दिन का), एक दिन का या केवल एक रात तक का भी व्रत किया होगा, उसके लिए भी कुछ दुर्लभ नहीं है। राजा अपने सामर्थ्य के अनुसार और प्रजा अपने धन के अनुसार व्रत, पूजन और दान करें। जो स्त्री-पुरुष अपने-अपने धर्म में रहकर मेरे इस पुरुषोत्तम मास का व्रत करते है, उस व्यक्ति को और उसके किए गए व्रत को मैं कभी नहीं भूलता। आज या आने वाले समय में, मैं इसका बहुत बड़ा फल दूंगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। मैंने सकाम भक्तों (जो फल की इच्छा रखते है) के लिए स्वर्गादि लोक बनाए है और निष्काम भक्तों (जो फल की इच्छा नहीं रखते) के लिए ब्रह्मलोक सुरक्षित रखा है। सभी लोकों में बहुत सुख है, परंतु ब्रह्मलोक में उससे अनंत गुना सुख है। जो मेरे आश्रित भक्त मेरे लिए इस पुरुषोत्तम मास का व्रत करते है , उन्हें मैं वही ब्रह्मलोक प्रदान करता हूं।

[2] पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में व्यक्ति द्वारा किए गए स्वयं के कर्मों का मूल्य नहीं है, बल्कि इस मास में तो मेरे वचनों का ही मूल्य है। जिसने मेरे वचनों को धारण कर लिया, उसे अनंत फल की प्राप्ति जरूर होगी। जैसे वर्षा ऋतु में जितनी वर्षा स्वाभाविक रूप से होती है, उतनी वर्षा 'वृष्टिप्रद यज्ञ' करने से भी नहीं होती; वैसे ही, मैं स्वयं पुरुषोत्तमनारायण इस पुरुषोत्तम मास में भक्तों पर कृपा बरसाता हूं।

[3] जो लोग पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की प्रशंसा करेंगे, वे भी अपनी इच्छा के अनुसार उत्तम सुख प्राप्त करेंगे। जो अन्य मनुष्यों को पुरुषोत्तम मास का व्रत करने

1. पुरुषोत्तममासस्य व्रतं पाक्षिकमाह्निकम् । नैशं वापि कृतं येन तस्य किञ्चिन्न दुर्लभम् ॥ ६५॥ 2. नात्र मूल्यं स्वकृतस्य मूल्यं तु वचसो मम । वचो मम धृतं येन फलं तस्याऽप्यनन्तकम् ॥ ७१॥ पुरुषोत्तममासस्य करिष्यन्ति प्रशंसनम् । येऽपि तेऽप्यर्जयिष्यन्ति यथेष्टं सुखमुत्तमम् ॥ ७५ ॥ पुरुषोत्तममासस्य व्रतार्थं त्वन्यदेहिनाम् । अनुमोदं प्रदास्यन्ति तेऽपि स्वःसुखभागिनः ॥ ७६ ॥
3. अधिमासे व्रतकर्तुः साहाय्यं ये तु मानवाः । करिष्यन्ति च तेभ्योऽपि दास्ये यथेप्सितं सुखम् ॥ ७७ ॥ किमु स्याद् दुर्लभं चाधिमासे भक्तस्य मे खलु । धाम दास्ये धनं दास्ये दारान् दास्ये सुतान् पशून् ॥ ७८ ॥ पतिं दास्ये सुतां दास्ये गां राज्यं चिरजीविताम् । आरोग्यं चेन्द्रियानन्दं दास्येऽपि शाश्वतं सुखम् ॥ ७९ ॥

की प्रेरणा या अनुमोदन देंगे, वे भी सुख के भागी बनेंगे। अधिक मास में व्रत करने वालों की जो मनुष्य सहायता करेंगे, उन्हें भी मैं इच्छित सुख प्रदान करूंगा। मेरे भक्त को अधिक मास से भला क्या दुर्लभ हो सकता है? मैं उन्हें धाम दूंगा, धन दूंगा, पत्नियां दूंगा, पुत्र दूंगा और पशु (संपत्ति) दूंगा।[1] मैं उन्हें योग्य पति, पुत्री, गाएं और राज्य प्रदान करूंगा। मैं उन्हें लंबी आयु, उत्तम स्वास्थ्य, इंद्रियों का आनंद और शाश्वत (हमेशा रहने वाला) सुख भी दूंगा।

ऐसी दुंदुभि की घोषणा सुनकर राजा, रानियों और दासियों ने नमस्कार किया। उन्होंने अक्षत, पुष्प और फल आदि से दुंदुभि की पूजा की और पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी (४) का उत्तम व्रत किया। इस व्रत में उन्होंने सुबह, दोपहर और शाम को भगवान श्रीहरि का पूजन किया। रात में वाद्य यंत्रों के साथ भजन-कीर्तन और नृत्य करते हुए जागरण किया। अगले दिन सुबह स्नान करके श्रद्धा पूर्वक श्रीकृष्णनारायण की पूजा की और विभिन्न रत्न, रस, हविष्यान्न मिठाइ, सोने, चांदी के सिक्के, फल और समिधा आदि का दान दिया। उसी समय, रत्नों की इच्छा रखने वाले एक सुयोग्य ब्राह्मण का रूप धारण करके स्वयं पुरुषोत्तमनारायण वहां पधारे। उन्हें देखकर राजा समितिपियूष और उनकी रानियों ने श्रद्धा पूर्वक प्रणाम किया और रत्नों की माला भेंट की। तब ब्राह्मण ने कहा – हे राजन! वरदान मांगिए। आप जो भी मांगेंगे, वैसा ही होगा।

यह सुनकर राजा ने चंद्रमा का पद और अमृत की वर्षा करने की शक्ति मांगी। रानियों ने भी अगले जन्म में चंद्रमा की पत्नी बनने का वरदान मांगा। तब "तथास्तु" (ऐसा ही हो) कहकर ब्राह्मण रूप धारी श्रीहरि अदृश्य हो गए। कल्प के अंत में प्रलय के बाद, जब फिर से सृष्टि की शुरुआत हुई, तब श्रीहरि की इच्छा से वह राजा चंद्रमा बने, जो औषधियों का पोषण करते है। वे सभी रानीयां राजा दक्ष की पुत्री के रूपमे प्रकट हुई। दक्ष ने विधि-विधान के साथ उन सत्ताईस (२७) कन्या का विवाह चंद्रमा से किया। पिछले जन्म में जो 'विधुल्लेखा' थी, वह रोहिणी नाम से प्रसिद्ध हुई और अन्य पत्नी स्वाति, विशाखा आदि नक्षत्र बनीं। उनकी 'देवयुति' नाम की दासी अभिजित

अनुक्रमणिका

नाम से प्रकट हुई, जिसे भगवान ने मध्याह्न (दोपहर) के समय में स्थान दिया। यह अभिजित काल सभी कार्यों में विजय दिलाने वाला माना जाता है।

इस प्रकार, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी (४) के व्रत के पुण्य-प्रभाव से, वे कल्प के अंत तक उस पद पर बने रहेंगे। इसलिए, एक समय भोजन करके, संध्या के बाद भोजन करके या फलाहार करके, मेरा पूजन करने के साथ-साथ इस चतुर्थी का व्रत करना चाहिए। इस कथा को कहने वाले (वक्ता) और सुनने वाले (श्रोता) भी इस चतुर्थी व्रत के पुण्य फल को प्राप्त करेंगे।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक उन्नीसवां (३११) अध्याय समाप्त।

अध्याय-२०

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा – हे लक्ष्मी! सुनो, पूर्व सृष्टि के अंतिम समय में दक्षिण भाग में वसुधान नाम का एक राजा हुआ। वह महादेव का महान भक्त था। उसकी पत्नी, जिसका नाम राध्याक्षा था, वह भी महादेव की उपासिका थी। वह पूर्णतः पतिव्रता थी और अपने पति को महादेव का ही रूप मानकर उनकी सेवा करती थी। वह प्रतिदिन सुबह स्वयं स्नान कर के अपने पतिदेव को स्नान कराती थी। फिर जल, दूध, पत्र (बेलपत्र), पुष्प, फल, धूप, दीप और आरती आदि सामग्रियों से महादेव की पूजा करके, एक दासी की तरह सदैव राजा की सेवा में हाजिर रहती थी। राजा भी सुबह जल्दी उठकर, अपने हृदय में भगवान शंकर का ध्यान करते थे। वे स्नान और महादेव की पूजा करने के बाद, अपने आश्रितों को अन्न आदि का दान देते थे और उसके बाद ही अपनी रानियों के साथ भोजन करते थे। राजा और रानी निरंतर प्रजा की भलाई, देव-कार्य और दान-पुण्य के कार्यों में लगे रहते थे। उनके घर में दान देने का सिलसिला कभी रुकता नहीं था। उनके राज्य में ऐसा कोई वर्ष नहीं बीतता था, जिसमें कोई बड़ा यज्ञ या उत्सव न हुआ हो।

एक बार राजा ने अपने राज्य के सभी गांवों और शहरों के मुखियाओं को बुलाकर यह आज्ञा दी कि – सभी शिवालयों (शिव मंदिरों) में विधिवत पूजा होनी चाहिए, अन्यथा दंड दिया जाएगा। सच्ची पूजा और दान से माता पार्वती सहित भगवान शंकर प्रसन्न होते है। राजा ने यह भी आदेश दिया कि – जिसके गांव या शहर में जितने भी शिवालय है , वहां अखंड दीपक जलाए जाए और महादेव का षोडशोपचार (सोलह सामग्रियों से) पूजन किया जाए। जो इस आज्ञा का पालन नहीं करेगा, उसे मृत्युदंड (सिर काट देने की सजा) दिया जाएगा।

हे लक्ष्मी! इस प्रकार उस राजा और रानी ने सभी शिवालयों (शिव मंदिरों) में पूजा शुरू करवाई। महाशिवरात्रि के दिन वे राजा और रानी विमान में बैठकर अपने

राज्य के मुख्य शिवालयों में दर्शन के लिए निकले। सब जगह दर्शन और पूजन करने के बाद, अगले दिन सुबह वे अपने महल लौटे, स्नान-पूजा की और व्रत का पारण किया। उसी समय भगवान शंकर और माता पार्वती भिक्षुक का वेष धारण कर वहां आए। उन्हें भूखा जानकर राजा-रानी ने उन्हें मीठा भोजन अर्पित किया। उस भोजन में तुलसीपत्र न होने के कारण पार्वती और शंकरजी ने कहा - हम वैष्णव है , यदि यह भगवान नारायण का प्रसाद हो तो ही हम इसे ग्रहण करेंगे। वैष्णवों द्वारा दिया गया भोजन हम अत्यंत प्रेम से ग्रहण करते है । आप जो प्रतिदिन पूजा, भोजन और दीप आदि अर्पित करते है , वह नारायण को अर्पित किए बिना होता है, इसलिए हम उसे ग्रहण नहीं करते, केवल देखते है।

[1] आत्मनिवेदी भक्तों का यह हमेशा से धर्म रहा है कि वे परब्रह्म को अर्पित किए बिना कभी भी कुछ भी खाने या पीने की वस्तु ग्रहण न करें। जो कुछ भी हमें अर्पित करना हो, वह पहले नारायण को अर्पित करके ही करना चाहिए, तभी हम उसे स्वीकार करेंगे।

[2] जो भक्तराज होते है , वे अपनी जड़ या चेतन (सजीव या निर्जीव) जो कुछ भी सामग्री हो, उसे भगवान को अर्पित करके ही शेष बचा हुआ प्रसाद ग्रहण करते है । जो श्रीहरि को अर्पित नहीं किया गया है, वह खाने या भोगने योग्य नहीं है; केवल श्रीहरि को अर्पित किया हुआ ही भक्त के लिए खाने, पीने और भोगने योग्य होता है।

मैंने बदरिकाश्रम में भगवान नारायण से मंत्र सहित वैष्णवी दीक्षा ली थी, उसके बाद मैंने पार्वती को भी मंत्र सहित वैष्णवी दीक्षा दी। मेरा पुत्र गणेश श्रीकृष्ण का अंश होने के कारण वैष्णव है। कार्तिकेय, गण और कैलाश आदि भी पूरी तरह वैष्णव है । बदरिकाश्रम के संपर्क से हिमालय वैष्णव है और उनके पितरों के वैष्णव होने के कारण मेना (हिमालय की पत्नी) भी वैष्णव है । क्षीर सागर भी विष्णु को धारण करने के कारण सदा वैष्णव है और उनके पुत्र-पुत्रियां जैसे श्री, रमा, लक्ष्मी और चंद्रमा आदि भी वैष्णव है । भगवान वामन के चरण के अंगूठे के स्पर्श से गंगा भी

1. आत्मनिवेदिभक्तानां धर्मोऽयं सर्वदा मतः । ब्रह्मणेऽनर्पितं यत् तद्भोज्यं पेयं न वै क्वचित् ॥ ३०॥ 2. जडं यद्वा चेतनं वा स्वकीयं यद्धि मन्यते । तद्वै भगवते दत्वा शिष्टं भुञ्जीत भक्तराट् ॥ ३४ ॥

वैष्णवी है। नागराज शेष और वासुकि को मैंने धारण किया है, इसलिए वे भी वैष्णव है। सूर्य से बना मेरा त्रिशूल और स्वयं सूर्य भी वैष्णव है। गोलोक से प्राप्त नंदी भी श्रीकृष्ण का उत्तम भक्त होने के कारण वैष्णव है। पार्वती का वाहन सिंह भी नृसिंह वंश का होने के कारण महान वैष्णव है। कार्तिकेय का वाहन मयूर (मोर) इसलिए परम वैष्णव है क्योंकि श्रीकृष्ण मोर पंख का मुकुट धारण करते है। अरे! और ज्यादा क्या कहूं? मैं स्वयं पूरी तरह वैष्णव हूं। विष्णु व्यापक ब्रह्म है और मैं उनका तेज 'सदाशिव' हूं।

इसलिए, मैं आपको वैष्णव मंत्र देता हूं, उसे ग्रहण करें और हे राजन! रानी को माता पार्वती वैष्णव मंत्र प्रदान करेंगी। इस प्रकार आदेश मिलने पर, राजा और रानी ने शिव-पार्वती से "कृष्णनारायणोऽव्यान्माम्" यह परम वैष्णव मंत्र, तुलसी की कंठी, ऊर्ध्वपुंड्र तिलक और नारायण का प्रसादी रूप अन्न-जल ग्रहण करके वैष्णव धर्म को स्वीकार किया।

इसके बाद, उन्होंने भगवान विष्णु को तुलसी दल (तुलसीपत्र) के साथ महा भोग अर्पित किया और वही प्रसाद स्वरूप भोजन भगवान शंकर और माता पार्वती को दिया। उसे ग्रहण करके शिव-पार्वती अत्यंत प्रसन्न और तृप्त हुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया की - तुम दोनों पति-पत्नी हमेशा धनवान, ऐश्वर्यशाली, अखंड राज्य के स्वामी और करोड़ों दास-दासियों वाले बनो। इस प्रकार आशीर्वाद देकर शिव-पार्वती अदृश्य हो गए। तब से वे पति-पत्नी श्रीकृष्णनारायण प्रभु को ही साक्षात् शिव स्वरूप मानकर उनकी पूजा करने लगे। इसी तरह धीरे-धीरे समय बीतता गया।

पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की पंचमी (५) के दिन उन्होंने दुंदुभि की वह उद्घोषणा सुनी कि- हे मनुष्यों! हे देवताओं! हे चराचर जगत के जीवों! सुनो, मैं पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के स्वामी श्रीहरि का प्रिय दुंदुभि हूं और श्रीहरि की आज्ञा से यह घोषणा करता हूं कि - इस महीने में केवल एक दिन का व्रत करके भी आप पृथ्वी, स्वर्ग और देवताओं या ईश्वरों के जो भी महान पद है , उन्हें अपनी इच्छा अनुसार प्राप्त कर सकते है। पूरे अधिक मास का व्रत, पंद्रह दिन का व्रत

या केवल एक दिन का व्रत करके मेरा पूजन करें और जिस पद की इच्छा हो, उसे मेरी कृपा से प्राप्त करें। इतना कहकर दुंदुभि शांत हो गए। राजा और रानी ने नमस्कार करके पुष्प और अक्षत (चावल) आदि से उनका पूजन किया और कहा - हमें इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की पंचमी (५) का व्रत करके कांचनेय (महाकुबेर) पद प्राप्त करने की इच्छा है। तब 'तथास्तु' कहकर और हृदय में श्रीहरि का ध्यान करते हुए दुंदुभि वहां से चले गए।

राजा और रानी ने अधिक मास की कृष्ण पक्ष की पंचमी (५) के दिन प्रातःकाल स्नान किया, श्रीहरि और भगवान शिव का ध्यान कर उन्हें प्रणाम किया और अपने गुरु का पूजन किया। उन्होंने भगवान पुरुषोत्तमनारायण की सोने की मूर्ति बनवाई और ध्यान, आह्वान आदि षोडशोपचार (सोलह विधियों) से उनकी महा पूजा की। दोपहर के समय भी उन्होंने श्रीहरि की पूजा की और उत्तम नैवेद्य अर्पित किये। शाम के समय केले के स्तंभों और तोरणों से एक सुंदर मंडप सजाया और उसके बीच में 'सर्वतोभद्र मंडल' करके उसके मध्य भाग में सोने के कलश की स्थापना की। उस कलश में जल, फल, पंचरत्न और वस्त्र अर्पित करके उसके ऊपर तिल से भरी हुई एक थाली स्थापित की। उसमें श्रीहरि की मूर्ति विराजित कर विधि-विधान से पूजन किया और पुष्पांजलि अर्पित की। फिर वे गीत और वाद्यों के साथ कीर्तन करते हुए जागरण करने लगे।

मध्यरात्रि में स्वयं पुरुषोत्तम श्रीकृष्णनारायण मधुर मुस्कान के साथ और अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए अचानक प्रकट हुए। उन्होंने कहा, 'तुम्हारे द्वारा किए गए इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की पंचमी के व्रत से मैं अत्यंत प्रसन्न हूं। इसलिए जो तुम्हारी इच्छा हो, वह वरदान मांग लो। तुम मेरे वैष्णव भक्त बन गए हो। मैं अपने वैष्णव भक्त को अपना सर्वस्व दे देता हूं, तो फिर तुम्हारे लिए भला क्या दुर्लभ रह गया है?

तब राजा और रानी ने दंडवत प्रणाम करके कहा कि - हे पुरुषोत्तम! आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। हम इस ब्रह्मांड के धनाधिपति (कुबेर) का पद नहीं मांगते,

क्योंकि वह केवल दरिद्र को संतुष्ट करने जैसा (सीमित) है। ब्रह्मा का पद कुम्हार के काम जैसा है (जो निरंतर सृजन की उपाधि और मेहनत से भरा है)। इंद्र का पद दैत्यों के भय और पीड़ा से युक्तहै, इसलिए हमें ऐसे पदों की इच्छा नहीं है। सभी ईश्वरों में विराट-पद श्रेष्ठ है, उससे श्रेष्ठ महाविष्णु का पद है, उससे भी श्रेष्ठ नारायण का वैकुंठ पद है और उससे भी उत्तम भूमापुरुष का पद है। उन सब में महाकुबेर का जो पद है, वह ईश्वरों की श्रेणी में अत्यंत महान है। अनंत ब्रह्मांडों के कुबेर, उस महाकुबेर के खजाने के एक कण मात्र से ही संतुष्ट हो जाते है । आपकी कृपा से हम उसी महाकुबेर पद की इच्छा रखते है ।

हे स्वामी! भक्तों के लिए आपसे कुछ भी छिपा नहीं है या कुछ भी देना आपके लिए कठिन नहीं है, फिर भी यदि हमने कुछ अनुचित मांग लिया हो तो हमें क्षमा करें, पर हमें किसी अन्य पद की इच्छा नहीं है। ऐसा कहकर वे श्रीहरि के चरणों में गिर पड़े। तब श्रीहरि 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) कहकर बोले कि वर्तमान में जो महाकुबेर है , उनकी आयु समाप्त होने पर अगले सर्ग (सृष्टि के नए चक्र) में आप वह पद प्राप्त करेंगे। इतना कहकर श्रीकृष्णनारायण अदृश्य हो गए।

भगवान वासुदेव के एक-एक दिन में अनंत महाकुबेरों का समय समाप्त हो जाता है। उनमें से एक महाकुबेर का समय पूरा होने पर, भगवान श्रीकृष्णनारायण ने राजा वसुधान को वह महाकुबेर का पद दिया और रानी राध्यासा को महाकुबेरानी बनाया। जब तक प्राकृत प्रलय नहीं होगा, तब तक वे दोनों इस पद पर बने रहेंगे।

हे लक्ष्मी! साक्षात् प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण मैं यह सब जानता हूं। मेरे बिना कोई भी पूरी तरह से सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) नहीं है।

इस प्रकार अधिक मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी (५) का व्रत करने से मैंने उन्हें शाश्वत (अक्षय) फल प्रदान किया। ऐसा फल देने में मेरे अलावा और कौन समर्थ है? मैं ही संपूर्ण सृष्टि की रचना करके उसमें प्रवेश करता हूं, उसका पालन करता हूं और समय आने पर उसका विनाश भी करता हूं, फिर भी मेरा ज्ञान हमेशा अखंड और स्थिर रहता है।

1.

इसीलिए, मैंने तुम्हें यहां इस पूर्व सृष्टि का वृत्तांत सुनाया है। जो भी स्त्री या पुरुष इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की पंचमी का व्रत करेंगे, या जो इस व्रत की कथा कहेंगे और सुनेंगे, उन्हें भी निश्चित रूप से वैसा ही पुण्य फल प्राप्त होगा।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की पंचमी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक बीसवां (३१२) अध्याय समाप्त ।

अध्याय-२१

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! सुनो। पिछले कल्प में मरुदेश (मारवाड़) में देवयव नाम का एक बहुत ही धार्मिक और धनवान ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम देवजुष्टा था, जो एक पतिव्रता स्त्री थी। उनके यहां गिरिक्षित और अद्रिद्युति नाम का एक सेवक दंपति (पति-पत्नी) भी रहता था। वे चारों हमेशा भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहते थे। उसी मरुदेश के राजा देवसखा ने अपनी भास्वती नाम की नगरी में सात शिखरों वाला एक भव्य और सुंदर विष्णु मंदिर बनवाया था।

उसके तीन मुख्य शिखरों में से मध्य शिखर में राधा और लक्ष्मी के साथ स्वयं श्रीकृष्णनारायण की प्रतिष्ठा की गई, दाहिने शिखर के गर्भगृह में उनकी दासियों के साथ श्री, प्रभा और पार्वती की प्रतिष्ठा की गई, तथा बाएं शिखर के गर्भगृह में उनकी दासियों के साथ माणिकी, जया और ललिता की प्रतिष्ठा की गई।

राजा ने उन चारों व्यक्तियों को इन सबकी सेवा में नियुक्त किया। उनमें से देवयव मध्य शिखर में पूजा करते थे, देवजुष्टा दाहिने शिखर में और अद्रिद्युति बाएं शिखर में सेवा करती थीं। गिरिक्षित चंदन घिसने जैसे बाहर के काम करता था। राजा उन्हें रहने के लिए उचित भवन (मकान), जीविका चलाने के लिए खेती-बाड़ी और एक हजार स्वर्ण मुद्राएं देते थे। इसके अलावा, उत्सव के दिनों में वे उन्हें वस्त्र, अन्न, आभूषण और भगवान की पूजा में चढ़ाया गया नैवेद्य (प्रसाद) आदि भी अधिक मात्रा में देते थे। परंतु, लोभी स्वभाव के ब्राह्मण देवयव, यात्रियों द्वारा भगवान को अर्पित किए गए रुपये या सोने के सिक्के खुद रख लेते थे। इस कारण देवयव का धन दूषित हो गया।

[1] न्याय और ईमानदारी से कमाई गई संपत्ति में भी यदि देव-द्रव्य (भगवान की संपत्ति का अंश) मिल जाए, तो वह निश्चित रूप से दूषित हो जाती है और साथ ही

1. यद्यपि न्यायलब्धं स्वं देवद्रव्यस्पृशिं गतम् । दूषितं तद् विनश्येद्वै लक्षं नीत्वा प्रगच्छति ॥ २१ ॥

अनुक्रमणिका

दूसरी लाखों की संपत्ति को भी अपने साथ ले डूबती है। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति में देवता, गाय, गुरु, भिक्षुक, ब्राह्मण, अनाथ या निराश्रित लोगों की वस्तु को मिला देता है, तो वह उसके समूल विनाश का कारण बनती है।

देव-पूजा में अर्पित अन्न, वस्त्र या धन देव-द्रव्य होने के कारण कभी ग्रहण नहीं करने चाहिए, क्योंकि वे कुल का विनाश करने वाले होते है। देवयव भी देव-द्रव्य का उपयोग करता था, इसलिए किसी न किसी कारण से उसका विनाश निकट आ गया। मरु और कोशल देश के राजाओं के बीच भीषण युद्ध हुआ, जिसमें कोशल के राजा ने मरु देश के राजा को हरा दिया। इसके साथ ही कोशल देश की सेना ने भास्वती नगरी के धनवान लोगों का धन बलपूर्वक लूट लिया। देवयव ब्राह्मण को भी राजा का सम्मानित ब्राह्मण जानकर उसका सब कुछ लूट लिया गया और उसे उसकी पत्नी व सेवकों के साथ वहां से निकाल दिया गया। इसके बाद वे गिरनार में सोनरखी नदी के तट पर वन में कंद-मूल और फल खाकर रहने लगे। एक बार घूमते-घूमते जब वे प्राची में सरस्वती नदी के किनारे जल पी कर थोड़ी देर विश्राम के लिए बैठे, तब गिरिक्षित ने देवयव से कहा - जिन भगवान की हम निरंतर पूजा करते रहे, उन्होंने शत्रुओं के हमले के समय हमारी रक्षा नहीं की। कोशल देश की सेना ने हमारा सारा धन और मंदिर की संपत्ति भी लूट ली, फिर भी विष्णुजी ने हमें नहीं बचाया। जो अपने स्वयं के धन की रक्षा नहीं कर सके, वे हमारी रक्षा क्या करेंगे? यह सुनकर देवयव ने कहा - ऐसा मत बोलो। जैसा तुम कह रहे हो, वैसा नहीं है। श्रीहरि ही सबकी रक्षा करते है और उन्होंने ही हमारी रक्षा की, तभी तो आज हम जीवित है। मैंने देव-द्रव्य (मंदिर का धन) लेने का महापाप किया है, और मेरे उसी पाप के कारण ही हमारा सारा धन नष्ट हो गया है।

[1]भगवान (मंदिर या आश्रम आदि) का धन और अन्न जिसके भी कोष (भंडार) में जाता है, उसे निश्चित रूप से सर्वस्व नाश का फल मिलता है। इसीलिए, मैंने इस लोक में यह उचित फल ही पाया है। अभी भी इस पाप के कारण यमलोक का

1. देवद्रव्यं च देवान्नं यस्य कोशे हि जीर्यति । तस्य सर्वस्वनाशाय फलं भवति निश्चितम् ॥ ४४ ॥

दुख भोगना बाकी है, फिर भी भगवान की सेवा के फल स्वरूप ही सेना ने हमें नहीं मारा। इस प्रकार परमात्मा ने हमारी रक्षा ही की है। अब हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे यमलोक न जाना पड़े। शरण में आए हुए लोगों की श्रीहरि रक्षा करते है । शरणागत भक्त के पास यमराज नहीं आते। वह शरणागति भगवान नारायण ने छह प्रकार की बताई है।

[1] विश्वास, वरण (चयन), न्यास (आत्मसमर्पण), कार्पण्य (दीनता), स्थिर बुद्धि, अनुकूलता का संकल्प और प्रतिकूलता का त्याग – ये शरणागति के छह प्रकार है । इसमें, श्रीहरि मेरे लिए जो कुछ भी करते है, वह सब मेरे लिए उचित ही है ऐसा पूर्ण विश्वास रखना चाहिए । 'आप मेरे है और मैं आपका हूं' – इसी भावना को वरण कहते है। 'मैं अपने सर्वस्व के साथ आपके चरण कमलों में समर्पित हूं' ऐसा भाव न्यास कहलाता है । सार्वभौम सत्ता (दुनिया का सब से बड़ा पद या अधिकार) होने के बावजूद भी (श्री हरि और उनके भक्तों के साथ) एक दास की तरह व्यवहार करना चाहिए और ऐसा ही विनम्र स्वभाव रखना चाहिए इसे कार्पण्य कहते है। सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी, सब कुछ मेरे स्वामी की मर्जी से ही होता है ऐसा सोचकर खेद न करने रूप स्थिर बुद्धि रखनी चाहिए। आपकी प्रसन्नता ही मेरी प्रसन्नता है, इसके अलावा और कुछ नहीं अर्थात जो परमेश्वर को अच्छा लगे, वही मुझे भी अच्छा लगे, इसे अनुकूलता का संकल्प कहा जाता है। भगवान की इच्छा के अनुसार ही मुझे चलना चाहिए और जो उन्हें पसंद न हो, उस हर बात का मुझे त्याग कर देना चाहिए इस भावना को प्रतिकूलता का त्याग कहते है।

इस प्रकार शरणागती पूर्वक सदा श्रीहरि की भक्ति करनी चाहिए, जिससे श्रीहरि हमारे अपराधों को क्षमा कर हमें तार देंगे। पेट भरने के लिए या लोभ वश हमने जो भी चोरी आदि पाप किए है, भक्ति के प्रभाव से भगवान उन सभी पापों का नाश कर देंगे। जो श्रीकृष्णनारायण का स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करता है, वह परम

1. विश्वासो वरणं न्यासः कार्पण्यं च स्थिरा मतिः। आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यविवर्जनम् ॥ ५१ ॥ तत्र हरिर्मदर्थे यत् करोति सकलं तु तत् । मदर्थे योग्यमेवाऽस्ति त्वेवं विश्वासमाचरेत् ॥ ५२ ॥ त्वं ममासि तवाहं चेत्येवं वरणमर्थयेत् । सर्वस्वोऽहं पादयोस्ते न्यस्तोऽस्मि न्यासमाचरेत् ॥ ५३ ॥ सत्यपि सार्वभौमेऽपि कार्पण्यं दासवच्चरेत् । सर्वनाशेऽपि खेदं न कुर्यान्मतिं स्थिरां चरेत् ॥ ५४॥ तव तोषो मम तोषो नान्यथेति सुकल्पयेत् । इत्येवं तस्य यद्रम्यं रम्यमेव ममापि तत् ॥ ५५ ॥ नान्यदिति प्रकुर्याद्वै मत्वा भक्तिसदा हरेः। अपराधान् क्षमाप्यैव सोऽस्मान् संतारयिष्यति ॥ ५६ ॥

अनुक्रमणिका

पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

इसलिए, इसी तीर्थ में लंबे समय तक निवास करके श्रीकृष्ण की आराधना करते है , ताकि आयु पूरी होने पर हम श्रीहरि के धाम को प्राप्त कर सकें। ऐसा विचार करके, वे चारों लोग सरस्वती नदी के किनारे प्राची क्षेत्र में जप-यज्ञ करने लगे और जो भी साधन प्राप्त होते, उनसे श्रीहरि का पूजन करने लगे।

समय बीतने पर, अधिकमास की षष्ठी (६) के प्रातःकाल पुरुषोत्तमनारायण के दुंदुभि की यह घोषणा सुनाई दी कि - "मेरी पूजा में कई अपराध हो जाते है , लेकिन जो इस पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की छठ का व्रत करेगा, उसके वज्र जैसे कठोर पाप भी इस व्रत के प्रभाव से धुल जाएंगे। जो व्यक्ति एक समय भोजन करके, शाम के बाद भोजन करके, बिना मांगे मिले अन्न का सेवन करके, फलाहार करके, केवल जल पी कर या केवल वायु का भक्षण (उपवास) करके यह व्रत करेगा, उसे मैं उसकी इच्छित वस्तु प्रदान करूंगा। मेरे विरुद्ध उसने जो भी अनुचित कर्म किए होंगे, उन्हें मैं पूरी तरह भुला दूंगा। मेरी यह महिमा ईश्वर की सृष्टि में भी व्याप्त है अर्थात ईश्वर भी यह व्रत करके वैसा ही लाभ प्राप्त कर सकते है। मेरे (पुरुषोत्तम के) प्रताप से यह अधिक मास सबसे श्रेष्ठ और सर्वोत्तम फल देने वाला बना है। इसलिए, जो भी इच्छा हो उसे मन में रखकर यह व्रत करो।"

यह कहकर दुंदुभि ने वहां से प्रस्थान किया, उनकी बात सुनकर उन चारों ने निश्चय किया कि वे देवराज इंद्र जैसी विशाल धन-संपत्ति, वाहन और महल आदि का सुख प्राप्त करेंगे। चूंकि समस्त देवताओं का राज्य, स्त्रियां, धाम, धन, स्वर्ग और अक्षय लक्ष्मी सदैव इंद्र के पास रहती है, इसलिए उन्होंने इंद्र का पद ही प्राप्त करने का और उसके बाद भक्ति करके वैकुण्ठ जाने का निर्णय लिया ।

ऐसा निश्चय करके उन्होंने षष्ठी का शुभ व्रत किया। प्रातःकाल उन्होंने श्रीहरि की मिट्टी की मूर्ति बनाई और उसमें पुरुषोत्तमनारायण का आवाहन करके षोडशोपचार (सोलह सामग्रियों) से पूजन किया। इसके बाद उस मूर्ति को लताओं से बंधे हुए पालने (हिंडोले) में झुलाया। इसी प्रकार दोपहर और शाम को भी पूजन किया और

अनुक्रमणिका

रात में धुन कीर्तन और नृत्य करते हुए जागरण किया।

उसी समय वहां श्रीकृष्णनारायण प्रकट हुए और कहने लगे – तुम्हारे व्रत से मैं बहुत प्रसन्न हूं और अब तुम्हारे सारे दुःख दूर हो गए है। हे भक्तों! वरदान मांगो।

श्रीहरि को साक्षात् देखकर उन सभी ने उनके चरणकमलों में पुष्पांजलि अर्पित की, उन्हें प्रणाम किया और इंद्र पद की याचना की। तब भगवान श्रीहरि 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) कहकर अदृश्य हो गए। पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में सरस्वती नदी के तट पर प्राची तीर्थ में उन चारों ने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया और महर्लोक चले गए।

जब दस लोकों का लय (विनाश) हुआ और नए कल्प का आरंभ हुआ, तब उस व्रत के पुण्य से देवयव इंद्र बने और देवजुष्टा इंद्राणी (शची) बनीं। गिरिक्षित उन दोनों का पुत्र 'जयंत' बना और अद्रिद्युति विश्वकर्मा की पुत्री तथा जयंत की पत्नी 'पुलोमजा' बनी।

इस प्रकार, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की छठ (६) के व्रत और श्रीहरि की कृपा से उन्होंने इंद्र पद का सुख प्राप्त किया। जो कोई भी सावधान होकर इस कथा को कहेगा या सुनेगा, उसे भी इस व्रत का पुण्य फल मिलेगा और उसकी मनोकामनाएं पूर्ण होगी।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की षष्टी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक ईक्कीसवां (३१३) अध्याय समाप्त।

अध्याय-२२

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की सप्तमी (७) के व्रत से ब्रह्मा की पुत्री संध्या के साथ जो चमत्कार हुआ, वह सुनो।

सृष्टि के आरंभ में स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने अत्रि, मरीचि, पुलह, पुलस्त्य, अंगीरस, ऋतु, वशिष्ठ, नारद, दक्ष और भृगु को अपने मन से उत्पन्न किया। इसके बाद ब्रह्मा के मन से अत्यंत रूपवती संध्या नाम की कन्या उत्पन्न हुई। उस समय सृष्टि काम (संभोग) के द्वारा उत्पन्न होने वाली नहीं थी।

तत्पश्चात, ब्रह्मा के मानस पुत्र के रूप में कामदेव की उत्पत्ति हुई। वह कामदेव अत्यंत सुंदर था। उसे देखकर संध्या और दक्षादि सभी के मन में परम उत्सुकता, चंचलता, राजसी भाव और इंद्रियों में आनंद का भाव जागृत हो उठा। ब्रह्माजी ने कामदेव से कहा कि - तुम हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण, द्रावण और सुमन नामक अपने पांच पुष्प-बाणों से स्त्री-पुरुषों को मोहित कर सृष्टि की रचना में सहायता करो। तुम अदृश्य रूप से प्राणियों के हृदय में सदा प्रवेश कर सुख का कारण बनो और सनातन सृष्टि का विस्तार करो। ऐसी आज्ञा देकर ब्रह्माजी ने कामदेव को अपने आसन पर बिठाया। साथ ही संध्या और दक्षादि भी अपने-अपने आसनों पर बैठ गए।

उसी समय परीक्षा लेने के लिए कामदेव ने अपना धनुष उठाया और बलपूर्वक पुष्प-बाण छोड़े। उन बाणों के प्रभाव से दक्षादि सभी ऋषि संध्या पर मोहित हो गए और उसे ही देखते हुए काम-विकार से भर गए, जिससे उनके शरीर से ४९ (उनचास) भाव प्रकट हुए। संध्या भी उनकी ओर कटाक्ष भरे भाव दिखाने लगी। संध्या के इन भावों को देखकर दक्षादि अत्यंत विचलित हो गए, जिसे देख कामदेव ने अपने कार्य में सफलता मानी।

उस समय उन सभी को विकार ग्रस्त देखकर धर्मदेव ने विवेक पूर्ण स्वर में सब को समझाया कि - धर्म की रक्षा के लिए काम की उत्पत्ति हुई है, अधर्म के लिए कभी

नहीं। इस काम-विकार के कारण परिवार के सदस्य होने के बावजूद आप एक-दूसरे के प्रति मोहित हो गए है । सृष्टि के लिए यह उचित नहीं होगा। यदि जन्म के साथ ही शरीर में युवावस्था और काम का प्रवेश हो जाएगा, तो माता, बहन, पुत्री, भाभी, पिता, भाई, पति और पुत्र जैसे पवित्र संबंधों का विनाश हो जाएगा। इसलिए हे विधाता! आप ऐसी व्यवस्था करें कि जन्म लेते ही शरीर में यौवन और काम-भाव उत्पन्न न हो, जिससे धर्म की रक्षा हो सके।

इसके बाद धर्मदेव ने कामदेव से कहा कि - तुमने गलत समय पर और गलत व्यक्तियों में विकार पैदा किया है, इसलिए तुम भस्म हो जाओगे। फिर उन्होंने दक्षादिक से कहा कि - आप सभी बद्रिकाश्रम जाकर गंगा में स्नान करें और भगवान नारायण को नमस्कार कर तपस्या द्वारा पवित्र हों, उसके बाद ही धर्म पूर्वक सृष्टि का कार्य करें।

फिर धर्मदेव ने ब्रह्माजी से कहा - हे पितामह! आप यज्ञ कीजिए। सृष्टि के आरंभ में ब्रह्माजी ने वह सबसे पहला वैदिक यज्ञ किया। उस यज्ञ के प्रभाव से तृप्ति देने वाले और अन्न उपजाने वाले मेघ (बादल) उत्पन्न हुए थे। इसके बाद, धर्मदेव ने विकार और दोष से युक्त संध्या से कहा, 'तुम चांडाल(अधम कुल) की पुत्री बनो, तभी तुम शुद्ध हो पाओगी। तब संध्या ने कहा - मैं ऐसा तप करूंगी जिससे भविष्य में जन्म लेने वाले जीवों को कामदेव लंबे समय तक पराजित न कर सके। इस प्रकार निर्णय होने के बाद, जिसे जो आदेश मिला था, वे सभी अपने-अपने नियत स्थानों पर चले गए।

संध्या भी मन में ऐसा विचार करने लगी कि - मैं उत्पन्न होते ही युवती और काम-वासना से मोहित थी। यहां तक कि दक्ष आदि भी मुझे देखकर काम-मोहित हो गए थे। मैंने अपने ही परिवार के सदस्यों के मन में काम का विकार उत्पन्न किया, इसलिए मैं इस पाप का प्रायश्चित शीघ्र ही करूंगी।

धर्म के मार्ग पर चलते हुए मैं अपने शरीर को तपस्या की अग्नि में समर्पित कर दूंगी, लेकिन साथ ही एक ऐसी मर्यादा स्थापित करूंगी कि संसार में जन्म लेने वाले देहधारी जन्म लेते ही काम-वासना से युक्त न हों। इसके लिए मैं अत्यंत कठिन तपस्या करके इस मर्यादा की स्थापना करूंगी। ऐसा सोचकर, संध्या ने अपने पापों के नाश

के लिए योग-समाधि के द्वारा अपने छाया रूपी शरीर को सूक्ष्म (छोटा) कर लिया और एक चांडाल(श्वपच) के घर में जन्म लिया। जन्म लेते ही वह युवती के समान थी और उसे अपने पिछले जन्म की सभी बातें याद थीं, यानी वह जातिस्मरा थी।

राखाल नाम के उसके पिता और मातंगिनी उसकी माता थी, जो हिमालय में निवास करते थे। माता-पिता की सेवा करते हुए संध्या अपने पिछले जन्म में धर्मदेव द्वारा दिए गए श्राप को याद कर उस समय की प्रतीक्षा कर रही थी, जब उसका उद्धार हो।

उसी समय आकाश मार्ग से पतितों का उद्धार करने वाले सप्तर्षि वहां से बदरिकाश्रम की ओर जा रहे थे। उन्होंने अपनी योग-दृष्टि से वन में संध्या को देखा और भिक्षा के बहाने उस श्वपच (चांडाल) के घर ठहरे। ऋषियों ने विचार किया कि यद्यपि वे कर्म से चांडाल है, फिर भी इन ब्रह्मा के पुत्रों से फल या कच्चा अन्न भिक्षा में लेने में कोई दोष नहीं है, ऐसा सोचकर उन्होंने भिक्षा मांगी।

तब राखाल ने मुनियों के चरणों में प्रणाम कर प्रार्थना की - मैं आपको फल, कच्चा अन्न और यह कन्या भिक्षा में देता हूं। आप इसे स्वीकार कर हमारा उद्धार करें। अन्य ऋषियों की अनुमति मिलने पर वशिष्ठ मुनि ने उस कन्या और भिक्षा का स्वीकार किया। इसके बाद वे बदरिकाश्रम गए और उस कन्या को गंगा में स्नान करवाया। फिर उसे कामधेनु गाय के मुख से प्रवेश कराकर मूत्र मार्ग से बाहर निकाला। इस प्रक्रिया से वह पवित्र होकर पुनर्जन्म को प्राप्त हुई और अरुंधति बनी।

वह कन्या अब तपस्या के योग्य ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर चुकी थी, फिर भी उसने वशिष्ठ जी से कहा - यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं एक बात कहना चाहती हूं। जन्म लेते ही शरीर में यदि यौवन हो तो लोक मर्यादा का रक्षण नहीं होता। इसलिए उस मर्यादा की स्थापना के लिए मैं चंद्रभागा नदी के किनारे तपस्या करना चाहती हूं। ऋषि वशिष्ठ ने उसके मन के गहरे भाव को समझा और उसे तपस्या की अनुमति दी।

इसके बाद, चंद्रभागा नदी के किनारे बृहल्लोहित सरोवर के तट पर आकाश मार्ग से उतर कर वशिष्ठजी ने संध्या से कहा- ''हे देवी! तुम यहीं तपस्या करो और इस

रक्षासूत्र को अपनी कलाई (मणिबंध) पर धारण करो, इससे तुम्हारी रक्षा होगी।" ऐसा कहकर सप्तर्षि सत्यलोक चले गए और देवी अरुंधती सौभाग्य की इच्छा से गौरी-पूजन में लीन होकर तप करने लगीं।

तप के प्रभाव से थोड़े ही समय में माता पार्वती प्रकट हुईं और अरुंधती से कहने लगीं- ''हे अरुंधती! 'ॐ नमः श्रीकृष्णनारायणाय ॐ नमोऽस्तु ते' - इस मंत्र का जप करते हुए तुम पुरुषोत्तमनारायण की आराधना करो, इससे तुम्हें निःसंदेह अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त होगी। मौन रहकर स्नान करना, मौन रहकर ही श्रीहरि की पूजा करना और कंद-मूल, फल, जल तथा वायु का आहार करना। प्रतिदिन श्रीहरि की मूर्ति का ध्यान करते हुए इस मंत्र की एक या दो हजार माला करना। ऐसा करने से तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।'' इतना कहकर महा गौरी अदृश्य हो गईं।

संध्या भी दिव्य ज्ञान, दिव्य शरीर और तप की विधि प्राप्त कर अत्यंत प्रसन्न हुई और तपस्या करने लगी। समय बीतने पर, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन प्रातःकाल अरुंधती ने दुंदुभि के वचन सुने कि - जो कोई भी इस पुरुषोत्तम मास की सप्तमी को निराहार रहकर व्रत करेगा, उपलब्ध सामग्रियों से श्रीहरि का पूजन करेगा, रात्रि में जागरण करेगा और अगले दिन प्रातःकाल पारण करके फलों आदि का दान देकर क्षमा याचना के साथ श्रीहरि का विसर्जन करेगा, वह उत्तम सुख को प्राप्त करेगा।

दुंदुभि के इन वचनों को सुनकर अरुंधति ने उसी प्रकार सप्तमी का व्रत किया। अष्टमी की सुबह ब्राह्ममुहूर्त में उन्हें श्रीहरि के दर्शन हुए। अरुंधति ने साक्षात् श्रीहरि को देख कर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की।

तब पुरुषोत्तमनारायण बोले, "मैं तुम्हारे व्रत, तप और स्तुति से बहुत प्रसन्न हूं, तुम वरदान मांगो। तब अरुंधति ने कहा - यदि मैं वरदान के योग्य हूं, तो पहला वरदान यह मांगती हूं कि सृष्टि में जन्म लेते ही किसी भी जीव के मन में काम विकार उत्पन्न न हो। दूसरा वर यह मांगती हूं कि पूरी सृष्टि में मेरे जितना सम्मानित और कोई न हो। तीसरा वर यह दीजिए कि संध्या के समय जो पुरुष काम वासना से युक्त हो, उसका

नाश हो जाए और उस समय उसके द्वारा उत्पन्न संतान पिशाच योनि को प्राप्त हो। चौथा वर यह दीजिए कि मेरे चार रूप हों; मेरा पहला रूप 'प्रातः संध्या' हो, दूसरा रूप 'सायं संध्या' हो, तीसरे रूप में मैं महर्षि वशिष्ठ की पत्नी बनकर उनके साथ स्वर्ग में निवास करूं, और चौथे रूप में आपके परम धाम में आपकी दासी बनकर रहूं।"

इस प्रकार वरदान मांगकर अरुंधति मौन हो गईं। तब श्रीहरि ने कहा – हे संध्ये! तुमने जो कुछ भी मांगा है, वह सब मैंने तुम्हें प्रदान किया। पहले वरदान के अनुसार, शरीर में पहले शैशव भाव (बचपन), दूसरा कुमार भाव तीसरा यौवन भाव और चौथा वार्धक्य भाव (बुढ़ापा) होगा। जब तीसरा यौवन भाव प्राप्त होगा, तब शरीर में काम भाव प्रकट होगा। आज से सृष्टि में मैं ऐसी मर्यादा स्थापित करता हूं।

दूसरे वरदान के अनुसार, जैसी ख्याति (प्रसिद्धि) एक सती के रूप में तुम्हारी होगी, वैसी तीनों लोकों में किसी और की नहीं होगी। तीसरे वरदान के अनुसार, जो व्यक्ति संध्याकाल में स्त्री-संग करेगा, उसकी संतान बल और पौरुष से रहित पिशाच जैसी होगी। चौथे वरदान के अनुसार, तुम प्रातः और सायं संध्या के रूप में स्थित हो। तुम्हारे पति वशिष्ठ सात कल्पों तक जीवित रहें और तुम उनके साथ स्वर्ग में इच्छानुसार निवास करो। इसके अलावा, दिव्य स्वरूप धारण कर अरुणा नाम की दासी बनकर मेरे साथ वैकुण्ठ में निवास करो। एक और बात सुनो, इस पर्वत की तलहटी में चंद्रभागा नदी के किनारे मेधातिथि ऋषि यज्ञ कर रहे है । तपस्या में उनके समान न कोई था, न है और न ही भविष्य में होगा। तुम उनके ज्योतिष्टोम यज्ञ की अग्नि में इस प्रकार प्रवेश करो कि लोग तुम्हें देख न सकें (सूक्ष्म रूप में) और अपना कायाकल्प करो। उस पवित्र अग्नि में शुद्ध होकर तुम चार रूप धारण करो।

उनमें से दो रूपों में तुम संध्या (प्रातः और सायं) के रूप में स्थिर हो जाओ और बाकी दो कन्याओं के रूप धारण करो। उन कन्याओं में से एक रूप में तुम मेधातिथि की पुत्री और वशिष्ठ की प्रिय पत्नी बनो, और दूसरे रूप में 'अरुणा' नाम की मेरी दासी बनो। यह पर्वत तुम्हारे नाम से 'अरुणाचल' कहलाएगा और जगत में एक महान तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध होगा।

ऐसा कहकर और उसके मस्तक पर अपने दोनों हाथ रखकर, प्रेम पूर्वक उसे देखते हुए श्रीहरि अदृश्य हो गए। इसके बाद अरुंधति ने भी श्रीहरि की आज्ञानुसार ही ज्योतिष्टोम यज्ञ की अग्नि में प्रवेश किया। अग्निदेव ने उसे सूर्य मंडल में पहुंचा दिया। तब सूर्यदेव ने उसके दो भाग किए।

ऊपरी भाग प्रातः संध्या बना, जो देवताओं को प्रिय है, और निचला भाग सायं संध्या बना, जो पितरों को आनंद देने वाला है। साथ ही, उस समय श्रीहरि ने उसके प्राणों का ध्यान किया, जिससे वह शाश्वत ब्रह्ममयी देह पाकर अरुणा नाम की श्रीहरि की दासी बनी।

इसके अलावा, यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञकुंड से मेधातिथि मुनि को एक कन्या प्राप्त हुई, जिसका नाम मुनि ने अरुंधति रखा और उसका विवाह वशिष्ठ जी के साथ करवाया।

[1] जो नर या नारी दृढ़ मन (पूरी श्रद्धा) से इस कथा को सुनेंगे, भगवान पुरुषोत्तमनारायण की कृपा से उनकी सभी मनोकामनाएं पूर्ण होंगी।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक बाईसवां (३१४) अध्याय समाप्त।

1. येदं संश्रृणुयान्नारी नरो वा दृढमानसः । सर्वान् कामानवाप्नोति पुरुषोत्तमतोषणात् ॥ १३१ ॥

अध्याय-२३

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण बोले - हे लक्ष्मी! सुनो, जब नारायण और श्रीकृष्ण अधिक मास की सहायता करने के लिए अक्षरधाम में पुरुषोत्तमनारायण के पास गए, तब उनकी बातें सुनकर स्वयं पुरुषोत्तमनारायण अधिक मास के अधिष्ठाता देव बने। उन्होंने अधिक मास को उत्तम पद प्रदान किया, जिससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने गोलोक में एक विशाल उत्सव मनाया।

उस महोत्सव के दौरान रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि यह उत्सव मेरे महल में आयोजित कराएं। तब श्री कृष्ण ने रुक्मिणी के महल में ऐसी भव्य तैयारियां करवाईं, जैसी सभी धामों के सम्राट पुरुषोत्तमनारायण के स्वागत में होनी चाहिए।

उस समय रुक्मिणी के महल में धामवासी गंधर्व मधुर स्वर और आलाप के साथ गायन करने लगे। वादक तरह-तरह के वाद्य यंत्र बजाने लगे और नर्तक-नर्तकियां, सेवक-सेविकाएं तथा सभी रानियां और महारानियां नृत्य करने लगीं। उस समय भगवान श्रीकृष्ण की पत्नियों और गोपियों के ऐश्वर्य तथा आभूषण आदि भी साकार रूप धारण करके रास खेलने लगे। वह सारा वातावरण श्रीकृष्णनारायण के आनंद में पूरी तरह ओतप्रोत हो गया। उस उत्सव में राधा, लक्ष्मी और रुक्मिणी आदि श्रीकृष्ण को आग्रहपूर्वक रासमंडल में ले आईं। श्रीकृष्ण भी अत्यंत तीव्र गति से नृत्य करते हुए और ताल के साथ एक पत्नी से दूसरी पत्नी की ओर जा रहे थे, जिससे बार-बार उनका मुकुट हिल रहा था। इसकी परवाह किए बिना, महाप्रभु पूर्ण आनंद और सुख में मगन होकर अपने चरणकमलों की थपकी के साथ रास खेल रहे थे।

उसी समय (उनकी ही इच्छा से) उनके मुकुट में स्थित मणि शिथिल होकर गिर गया और उसके साथ कल्गी भी गिर गई। फिर भी श्रीकृष्ण रास से रुके नहीं। तब कुचले जाने के भय से उस मणि और कल्गी ने दिव्य शरीर धारण कर लिया और वे भी रास खेलने लगे। जब राधाजी ने यह समाचार श्री कृष्ण को दिया, तब श्री कृष्ण ने

उनसे (मणि और कल्गी से) पूछा, "तुम अपने स्थान से बाहर क्यों निकल आए? तुम्हारे बिना मेरा मुकुट शोभा नहीं देता। अब मैं इस कल्गी और मणि रहित मुकुट धारण नहीं करूंगा, बल्कि मयूर पंख से सुशोभित दूसरा मुकुट धारण करूंगा।" जब श्री कृष्ण यह कह रहे थे, तभी महाभक्त राजा आनर्त गोलोक में आए। उन्होंने श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही तप किया था। उनके तप से प्रसन्न होकर भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें नए राज्य की स्थापना करने को कहा और इसके लिए गोलोक की दिव्य भूमि का एक कण (अंश) प्रदान किया। वही कण आगे चलकर सौराष्ट्र नामक देश बना।

राजा आनर्त ने श्रीहरि से प्रार्थना करते हुए कहा कि – मेरे राज्य और मेरी रक्षा के लिए अपना कोई प्रतापी दूत साथ भेजें। तब श्रीकृष्ण ने राजा आनर्त को मुकुट से अलग हुआ वह मणि दे दिया। वह मणि दिव्य पार्षद बनकर राजा के साथ जाने लगा। तब कल्गी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हुए कहा कि – मैं अपने मूल (मणि) के बिना रहने में असमर्थ हूं। तब श्रीकृष्ण ने कहा – तुम भी दिव्य स्वरूप धारण कर मणि के साथ जाओ। वहां मणि ब्राह्मण के रूप में और तुम ब्राह्मण की पत्नी के रूप में रहोगे।

उसके बाद राजा आनर्त ने भी श्रीहरि को प्रणाम किया और कल्गी, मणि, भूकण (गोलोक की पृथ्वी का अंश) आदि को लेकर पश्चिम समुद्र के किनारे आए। वहां जैसे ही उन्होंने उस कण को स्थापित किया, वह तुरंत विस्तारित होकर सौराष्ट्र नामक भूमि बन गई। तत्पश्चात, मणि के समान दिव्य देह धारण करने वाले पार्षद निंबदेव ने व्याघ्रारण्य में अश्वपट्ट सरोवर के किनारे एक पर्णकुटी (पत्तों की झोपड़ी) में निवास किया। जो कल्गी थी, उसने भी वहीं दिव्य देह धारण कर निवास किया।

उन्होंने पहले लौकिक (साधारण मनुष्य जैसा) शरीर स्वीकार नहीं किया था, परंतु भक्तों की प्रार्थना से प्रेरित होकर और मनुष्यों के कल्याण के विचार से, देह धारण करने की इच्छा से उन्होंने हृदय में श्रीकृष्ण का स्मरण किया। तब भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए और अपने संकल्प से उन्हें देह प्रदान कर अदृश्य हो गए। इसके बाद वे सभी लोगों को दिखाई देने लगे। अश्वपट्ट सरोवर के किनारे तपस्या करते हुए और लक्ष्मीनारायण संहिता का पाठ कर अपना समय बिताते हुए, वे निंबदेव और

मिष्टादेवी के नाम से विख्यात हुए।

उस समय रैवत गिरि के पौत्र राजा खटवांगद, निंबदेव के आश्रम में तपस्या करने के लिए आए। वे बेर के पेड़ के नीचे बैठकर "ॐ श्रीलक्ष्मीपते कृष्णनारायण नमोऽस्तु ते" मंत्र का जाप करते हुए तप करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर लक्ष्मीनारायण वहां प्रकट हुए और उन्हें वरदान मांगने को कहा। तब राजा ने प्रभु के नित्य दर्शन की इच्छा से प्रार्थना करते हुए कहा कि – आप सदा के लिए यहां निवास करें। भगवान ने 'तथास्तु' कहा और अदृश्य हो गए। उनमें जो लक्ष्मी थीं वे रुक्मिणी थीं और जो नारायण थे वे स्वयं श्रीकृष्ण थे। वही श्रीकृष्ण, मणि और कल्गी रूप निंबदेव और मिष्टादेवी के यहां गोपाल नाम से प्रकट हुए। कुंकुमवापी (कुंकावाव) में, अश्वपट्ट सरोवर के किनारे, पर्णकुटी (पत्तों की कुटिया) में, आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी के दिन प्रातःकाल निंबदेव के मानस पुत्र के रूप में प्रकट हुए गोपाल, जन्म लेते ही पूर्ण युवा अवस्था में थे। वे पृथ्वी के पालक राजाओं की रक्षा करते है, इसलिए उन्हें गोपाल कहा गया। वहीं दूसरी ओर, रुक्मिणी स्वरूपा लक्ष्मीजी शत्रुंजी नदी के किनारे ओळिया गांव में प्रेममणि (प्रेमजीभाई) के यहां फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी को कंभरा के रूप में प्रकट हुईं। श्रीकृष्ण के शाश्वत सुख को भरने वाली होने के कारण वे कंभरा नाम से विख्यात हुईं। वे भी अवतार लेते ही युवती के रूप में प्रकट हुई थीं। उनके पिता ने दिव्य दृष्टि से उन्हें श्रीकृष्ण के योग्य जानकर गोपाल को बुलाया और विवाह की विधि के साथ उन्हें सौंप दिया।

इस प्रकार, वे दोनों दिव्य स्वरूप वाले दंपति बन गए। उन्होंने अश्वपट्ट सरोवर के पास अधिक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को दुंदुभि की घोषणा सुनी कि – पुरुषोत्तमनारायण के रूप में मैंने इस अधिक मास को अत्यंत पवित्र और अपने समान बना दिया है। इसलिए, जो कोई भी इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में केवल एक दिन का व्रत भी करेगा, वह मेरी कृपा से मुझे, मेरे धाम को या अन्य सभी सुखों को प्राप्त कर लेगा।

ऐसा कहकर, अश्वपट्ट सरोवर में स्नान करने के बाद, उन्होंने निंबदेव और

अनुक्रमणिका

मिष्टादेवी को प्रणाम किया तथा कंभरालक्ष्मी और गोपालकृष्ण की पूजा की। इसके बाद उनसे सत्कार प्राप्त कर वे दुंदुभि गिरनार पर्वत पर चले गए।

कंभरा और गोपाल ने पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की अष्टमी का वह व्रत निर्जला उपवास रखकर किया। उन्होंने प्रातः, मध्यान्ह एवं सायंकाल में १०८ प्रकार की सामग्रियों से पुरुषोत्तमनारायण का पूजन किया। नैवेद्य में छप्पन भोग अर्पित किए और १०८ दीपकों की ज्योत से महा आरती की। लाखों दक्षिणा देने के साथ उन्होंने रात्रि में जागरण भी किया।

उस समय स्वयं पुरुषोत्तमनारायण प्रकट हुए और मंद मुस्कान के साथ कहने लगे, "हे गोलोकेश! और हे रुक्मिणी स्वरूपा कंभरा! आप दोनों मुझसे क्या चाहते है ? आप दोनों का यहां निवास पूरी तरह से मेरी इच्छा से ही हुआ है। राजा खटवांगद का तप तो केवल एक निमित्त मात्र है। इसके अलावा, मेरे मुकुट से मणि और कल्गी का अलग होना भी मेरी ही इच्छा थी। इसलिए, आपकी जो भी इच्छा हो, वह वरदान मांग लो।

साक्षात् पुरुषोत्तमनारायण के ऐसे भावपूर्ण वचनों को सुनकर और उन्हें प्रणाम करके, अपने मूल रूप का चिंतन करते हुए कंभरा और गोपाल कहने लगे, "हे भगवन! यदि यहां हमारा रहना आपकी ही इच्छा है, तो हम प्रार्थना करते है कि आप भी यहां स्थिर हो जाइए, ताकि हमें सदैव आपकी सेवा का लाभ मिलता रहे। देश और काल के अनुसार आपका लालन-पालन करके हम परमानंद को प्राप्त करें।''

ऐसा कहकर कंभरा और गोपाल ने पुरुषोत्तमनारायण को नमस्कार किया। भगवान श्रीहरि ने भी तथास्तु (ऐसा ही हो) कहा और धाम में स्थित अपनी प्रिया महालक्ष्मी को नेत्रों से संकेत किया। श्रीहरि के हृदय की बात जानकर वे महालक्ष्मी वहां आईं और पुरुषोत्तमनारायण में समाहित (विलीन) हो गईं।

उसके बाद, वे श्री पुरुषोत्तमनारायण वहां बाल रूप में प्रकट हुए। उन्हें देखकर कंभरा और गोपाल अत्यंत प्रसन्न हुए। वे यह मानने लगे कि पुरुषोत्तमनारायण के इस अवतार में व्रत तो केवल एक निमित्त मात्र है, वास्तव में उनकी लीला करने की इच्छा

ही मुख्य कारण है।

उस समय देवताओं ने दुंदुभियां बजाईं और फूलों की वर्षा करने लगे, अप्सराएं नृत्य करने लगीं और गंधर्व गीत गाने लगे, प्रत्येक धाम के निवासी ईश्वर, देवता, महर्षि और उनकी देवियां जयकार करते हुए परमेश्वर का पूजन करने लगीं। सर्वत्र ब्रह्मांडों में वह महान उत्सव मनाया जाने लगा।

कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को, पुनर्वसु नक्षत्र में, सूर्यास्त के बाद पांच घटी बीतने पर रात्रि के पूर्व पद में अनादिश्रीकृष्णनारायण कंभरा और गोपाल के घर अवतरित हुए। उस समय चारों ओर अनेक सूर्यों के समान दिव्य प्रकाश फैल गया। अनादि श्रीकृष्णनारायण प्रकट हो चुके है , यह जानकर वेद उनकी स्तुति करने लगे।

सभी विद्याओं के सागर, प्रभा, लक्ष्मी, पार्वती, माणिकी और श्री इत्यादि शक्तियों के स्वामी श्रीकृष्णवल्लभाचार्य ने अनेक चमत्कार दिखाते हुए कार्तिक शुक्ल एकादशी को यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न किया।

माघ मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के प्रातःकाल वे महाप्रभु काशी पधारे और नवमी को उन्होंने ब्रह्मविद्या का संचार किया। अपने ही भीतर समाई हुई उस विद्या को अपने पिता के मुख से सुनकर, वे सभी वेदों और विद्याओं के ज्ञान का उपदेश लक्ष्मी को दे रहे थे।

हे लक्ष्मी! वे ही अक्षरातीत अनादिश्रीकृष्णनारायण है। गोलोकधाम में जो राधा के पति है , वही गोपालकृष्ण है। वह 'नारायण' मैं हूं और वह 'लक्ष्मी' तुम हो। स्थान के भेद के कारण हमारे रूपों में अनेकता दिखाई देती है। मैं पुरुषोत्तमनारायण, वेदों और शास्त्रों सहित सभी विद्याओं का वक्ता (बोलने वाला) हूं और तुम मेरी प्रिय शिष्या और श्रोता (सुनने वाली) हो।

मेरे द्वारा तुम्हें मेरा वह अपरोक्ष ज्ञान और विज्ञान दिया गया है, जिसमें सृष्टि, कल्प और प्रलय आदि का विस्तार से वर्णन है। ऐसी एक करोड़ श्लोकों वाली 'लक्ष्मी-नारायण संहिता' का उपदेश मैंने तुम्हें दिया है। उसमें से तुम्हें पचास लाख श्लोक विराट नारायण को देने है , जिनमें ईश्वर की विशेषता का ईश-सृष्टि के लिए,

अनुक्रमणिका

विशेष वर्णन किया गया है। साथ ही, आपको उस संहिता के पच्चीस लाख श्लोक ब्रह्माजी को देने है , जिसमें अनगिनत ब्रह्मांडों की कथाएं है । हे प्रिये! इसके अलावा साढ़े बारह लाख श्लोक आपको पितरों को अर्पित करने है , जिनमें उनके सर्वकांड का परमार्थ रीति से आदर पूर्वक वर्णन किया गया है। पांच लाख श्लोक स्वर्ग में देवताओं के गुरु बृहस्पति को देने है, जिनमें देवताओं को प्राप्त करने योग्य ज्ञान का वर्णन है। और पांच लाख श्लोक दैत्यगुरु शुक्राचार्य को अर्पित करने है, जिनमें तामसी विद्याओं का वर्णन दिया गया है। सवा लाख श्लोक महर्षियों को देने है, जो उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाले है । इसके अलावा, सवा लाख श्लोक मानवों में ब्राह्मणों को देने है , जिनका अध्ययन करके मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चारों पुरुषार्थों को सिद्ध कर सकें।

[1] कालांतर में जब इस ज्ञान का लोप होगा, तब इस ज्ञान के प्रकाश के लिए मैं बार-बार महर्षि व्यासाचार्य के रूप में प्रकट होऊंगा। हे लक्ष्मी! इस प्रकार मैंने तुम्हें हमारे पूर्व वृत्तांत (पुरानी कथा) का स्मरण कराया है। अब तक करोड़ों विराट (ब्रह्मांड के अधिपति) नष्ट हो चुके है, तो फिर ब्रह्मा आदि की तो बात ही क्या? पुरुषोत्तम रूप में मैं ही सृष्टि का कर्ता और महाप्रलय का भी कर्ता हूं; मैं नित्य विज्ञानवान, सभी की आत्मा और सभी के भीतर प्रवेश कर उनका नियमन (शासन) करने वाला हूं। मुझे अणु मात्र भी विस्मरण नहीं होता।

जहां आज पर्वत है, समय आने पर वहां जल होगा। जहां जल है, वहां स्थल होगा। जहां बस्तियां है, वहां वन हो जाएगा और वन के स्थान पर बस्तियां बस जाएगी। जहां रेगिस्तान है वहां अरण्य (जंगल) होगा और अरण्य के स्थान पर नगर बन जाएंगे। कहां, कब, क्या हुआ था और क्या होगा – मैं वह सर्वस्व जानता हूं। सृष्टि के आरंभ में हुई हमारी इस कथा को मैंने पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की अष्टमी के व्रत के बहाने तुम्हें याद दिलाई है।

यह चरित्र पढ़ने वाले को स्वर्ग, मोक्ष और व्रत का पुण्य प्रदान करता है। इस व्रत को जो करेगा उसे भुक्ति और मुक्ति मिलेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। साथ ही, इस

1. कालान्तरे लयं याते भविष्यामि पुनः पुनः । तत्तज्ज्ञानप्रकाशाय व्यासाचार्यर्षिरूपतः ॥ १३७ ॥

व्रत के केवल श्रवण (सुनने) मात्र से पुत्र की इच्छा रखने वाले को पुत्र, पत्नी की इच्छा रखने वाले को पत्नी, धन की इच्छा रखने वाले को धन, भूमि की इच्छा रखने वाले को भूमि, धर्म की इच्छा रखने वाले को पुण्य और यश की इच्छा रखने वाले को कीर्ति अवश्य प्राप्त होती है।

इस कथा को सुनने से ब्राह्मण ज्ञानवान बनता है, क्षत्रिय विजय प्राप्त करता है, वैश्य धन-धान्य और समृद्धि से युक्त होता है और शूद्र सब प्रकार से समृद्ध होता है। जो भी इस कथा को सुनता है, उसे कल्याण, लक्ष्मी, तेज, वीर्य, बल, रूप, गुण, संपत्ति, पुत्र, पत्नी, दास-दासी, आरोग्य, स्वतंत्रता, बंधनों से मुक्ति, निर्भयता और मोक्ष प्राप्त होगा। हे प्रिये! मैंने तुम्हें पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी के व्रत से मिलने वाले फलों के बारे में बताया। इस व्रत का आचरण करके और विधि-विधान से पूजा करके पुरुषोत्तमनारायण को प्राप्त करना चाहिए।

[1] मेरे अवतार असंख्य है । मैं अवतारी परब्रह्म श्रीपुरुषोत्तम महाराज सनातन हूं। जब तक विराटपुरुष, ब्रह्मा या वैकुंठ की भूमि रहेगी, तब तक मैं पुरुषोत्तमनारायण सर्वत्र पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की स्थापना करूंगा। जब तक सूर्य-चंद्रमा और पृथ्वी रहेंगे, तब तक यह शाश्वत कृष्णनारायण तीर्थ (पुरुषोत्तम मास) रहेगा। इसमें ध्वज, धनुष आदि चिह्नों से सुशोभित और लक्ष्मी आदि शक्तियों द्वारा सेवित, मैं पुरुषोत्तम श्रीकृष्णनारायण सदैव स्थित रहूंगा।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक तेईसवां (३१५) अध्याय समाप्त ।

1. मेऽवतारा असंख्याता ह्यहं श्रीपुरुषोत्तमः । अवतारी महाराजः परब्रह्म सनातनः ॥ १५४ ॥ यावद् ब्रह्मा विराट् वापि वैकुण्ठभूमयस्तथा । सर्वत्राऽधिकमासोऽहं स्थास्यामि पुरुषोत्तमः ॥ १५५ ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च स्थास्यन्ति मेदिनी तथा । कृष्णनारायणतीर्थं तावत् स्थास्यति शाश्वतम् ॥ १५६ ॥ कृष्णनारायणाश्चाहं ध्वजशार्ङ्गादिशोभितः । लक्ष्म्यादिसेवितस्तत्र स्थास्यामि पुरुषोत्तमः ॥ १५७ ॥

अध्याय-२४

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण बोले : हे लक्ष्मी! सुनो। कई कल्पों पहले द्युमेरुजीत नाम के एक इंद्र हुए थे। ब्रह्माजी की संध्या (प्रलय) के समय, अपने शेष बचे हुए पुण्यों के प्रभाव से सत्यलोक में रात्रि के सुख भोगकर, ब्रह्माजी के प्रातःकाल (नये कल्प की शुरुआत) में वे सृष्टि के प्रथम त्रेतायुग में शतमख नाम के चक्रवर्ती सम्राट बने।

वे राजा दान, धर्म और दया से युक्त थे। वे प्रजा की रक्षा में तत्पर, सभी को सम्मान देने वाले, अपनी इंद्रियों को वश में रखने वाले तथा गाय, ब्राह्मण, सती, संन्यासी और साधुओं का पूजन करने वाले थे। वे विमान द्वारा आकाश मार्ग से तीनों लोकों में विचरण करते थे। उनके हाथों में वज्र, छत्र और तलवार के चिह्न थे, जो उनके देवत्व (देवता होने) के सूचक थे। उनकी पत्नी महारानी द्युवर्णा थीं। वे परम पतिव्रता थीं और निरंतर पति की सेवा तथा देवताओं की भक्ति में लीन रहती थीं। उनके पास अलग-अलग लोकों से कन्याएं शिक्षा प्राप्त करने आती थीं। सावित्री, गायत्री, स्वाहा, अरुंधती, पार्वती, लक्ष्मी, स्वधा, सती, प्रभा, माणिकी और जया आदि उनकी सखियां थीं।

उनके प्राग्ज्योतिष नामक राज्य में कल्पवृक्ष, चिंतामणि और कल्पलताएं (दिव्य बेलें) थीं, जो तुरंत मनोवांछित वस्तुएं प्रदान करती थीं। इस प्रकार राज धर्म का पालन करते हुए, राजा और रानी ने सरयू नदी के किनारे साकेत (अयोध्या) नगरी को अपनी राजधानी बनाया।

एक बार राजा और रानी राज्य की रक्षा का कार्य मंत्री (प्रधान) को सौंपकर बद्रिकाश्रम की यात्रा पर निकले। तीर्थयात्रा के सभी नियमों का पालन करते हुए और भगवान नारायण का स्मरण करते हुए वे गंगा नदी के तट पर पहुंचे। वहां उन्होंने गंगा जल से आचमन, स्नान और जलपान किया। इसके बाद वे अनेक तीर्थों से होते हुए

भगवान नर-नारायण के दर्शन करने पहुंचे।

वहां उन्होंने अनेक उपचारों से भगवान नर-नारायण की पूजा की और कई साधुओं, ब्राह्मणों तथा अतिथियों को भोजन कराया तथा भगवान नर-नारायण को प्रसन्न करने के लिए राजा-रानी ने उनके सम्मुख कीर्तन और नृत्य किया। उन्होंने भगवान को अनेक उपहार भेंट किए, चरण स्पर्श किए और चरणामृत ग्रहण करते हुए कहा, "हमारा सब कुछ आपका ही है।"

उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर परमेश्वर ने उन्हें आशीर्वाद दिया, "हे दंपत्ति! आप पुत्रवान हों।" यह सुनकर राजा-रानी अत्यंत प्रसन्न हुए। उसी समय, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की नवमी (९) की सुबह उन्हें दुंदुभि की उद्घोषणा सुनाई दी कि - आज व्रत करके पुरुषोत्तमनारायण से अपनी जो भी मनोकामना हो, उसे मांग लें।

[1] जो कोई भी अधिक वद नवमी का व्रत करेगा, उसके लिए जो अगम्य (समझ से परे) है वह बुद्धिगम्य (समझने योग्य) हो जाएगा। जो अलभ्य (अप्राप्य) है वह लभ्य (प्राप्त) हो जाएगा और जो अतर्क्य (तर्क से परे) है वह तर्कसंगत हो जाएगा। उसके सभी संकल्प सिद्ध होंगे और उसे पुरुषोत्तमनारायण की प्राप्ति होगी।

ऐसी घोषणा करके और भगवान नर-नारायण की वंदना व पूजा कर, वे दुंदुभि वहां से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान कर गए। उस समय उस घोषणा को सुनकर राजा और रानी भगवान नर-नारायण के ध्यान में मग्न हो गए। ध्यान की अवस्था में उन्होंने अपने हृदय में अत्यंत मनोहर और दिव्य रूप वाले, लाड़-प्यार के योग्य तथा राजभवन की शोभा बढ़ाने वाले दो अत्यंत सुंदर युवकों को देखा। उन्हें देखकर दंपत्ति के मन में संकल्प जागा कि, "हमें ऐसे ही पुत्र प्राप्त हों।" जब वे ध्यान से बाहर आए, तब भगवान नर-नारायण ने उनसे कहा - आपका यह संकल्प अवश्य सिद्ध होगा।

यह सब सुनकर अत्यंत तृप्त (संतुष्ट) होकर उन्होंने तीर्थ की विधि पूर्ण की और वहां से चलकर गंगा किनारे आए। वहां उन्होंने पुरुषोत्तमनारायण की स्वर्णमयी

1. अगम्यं बुद्धिगम्यं स्यादलभ्यं लभ्यमेव च । अतर्क्यं चापि तर्क्यं स्यान्नवमीव्रतकारिणः ॥ ३९ ॥

(सोने की) मूर्ति बनाई और षोडशोपचार (१६ विधियों) से उनका विधिवत पूजन किया। मध्याह्न(दोपहर) के समय भी श्रीहरि का पूजन और विसर्जन कर, तीर्थ विधि समाप्त की और विमान द्वारा अपनी राजधानी अयोध्या लौट आए।

अयोध्या में उन्होंने एक अत्यंत सुशोभित मंडप बनवाया और उसमें लगे दिव्य झूले में पुरुषोत्तमनारायण की स्वर्ण मूर्ति को विराजमान कर उन्हें झुलाने लगे। साथ ही, प्रभु के समीप सात प्रकार के अन्न (सप्त धान्य) तथा सोना, चांदी, रत्न और हीरों से सुसज्जित सर्वतोभद्र मंडल की रचना की।

मंडल के मध्य में पंचरत्न, जल, पुष्प, द्रव्य और वस्त्र आदि से युक्त स्वर्ण कलश की स्थापना की। उस पर तिल, नारियल और अंगूठी (मुद्रिका) से युक्त थाली ढककर, उसके ऊपर पुरुषोत्तमनारायण की एक अन्य स्वर्ण मूर्ति स्थापित की और षोडशोपचार से पूजन किया और वहां धुन-कीर्तन और हवन किया गया तथा देवताओं, ब्राह्मणों, साधुओं, दीन-दुखियों, अनाथों और भिक्षुकों को भोजन कराकर दक्षिणा से तृप्त किया गया।

जब उन्होंने श्रीहरि को पुष्पांजलि अर्पित की, तब उस मंडप में युवा और दिव्य स्वरूपवान पुरुषोत्तमनारायण प्रकट हुए। उनका नाम रामादित्य हुआ, जिन्हें प्रथम रामावतार कहा गया। उन्हें देखकर राजा-रानी आश्चर्यचकित रह गए। तब श्री राम कहने लगे -

मैं तुम्हारे व्रत से अत्यंत प्रसन्न हूं, इसलिए जो तुम्हारी इच्छा हो वह वरदान मांगो। तुमने बद्रिकाश्रम में जिन नर-नारायण के दर्शन किए थे और अपने हृदय में जिन दो दिव्य रूपधारी पुरुषों को देखा था, वही मैं पुरुषोत्तमनारायण रामादित्य के नाम से तुम्हें दर्शन देने यहां आया हूं। मेरे साथ मेरे भाई नरादित्य भी कृपावश यहां आए है । अतः वरदान मांगने में देर न करो, मुझे प्रस्थान करना है।

यह सुनकर राजा-रानी का मन अत्यंत व्याकुल हो उठा और वे कहने लगे - ठहरिए, ठहरिए! मत जाइए, मत जाइए। हमारे भवन में हमें सदैव दर्शन दीजिए, भोजन ग्रहण कीजिए, जलपान कीजिए और इस उपवन में क्रीड़ा कीजिए। हे पुत्रों!

ऐसी क्या जल्दी है? ऐसा कहकर रानी ने दोनों पुत्रों को अपने पास बुलाकर गले लगा लिया। उस समय रानी की आंखों में प्रेमाश्रु भर आए और वात्सल्य के कारण उनके स्तनों में दूध उतर आया; वे उन पुत्रों को छोड़ना ही नहीं चाहती थीं। राजा भी पुत्र-प्रेम के कारण श्रीहरि के रूप में मोहित हो गए। तब श्रीहरि ने 'तथास्तु' कहकर क्षण भर के लिए बालकों का रूप धारण कर लिया।

रानी द्युवर्णा ने रामादित्य और नरादित्य को स्तनपान कराया और वे स्वयं को अत्यंत धन्य महसूस करने लगीं। दोपहर के समय श्रीहरि के प्राकट्य का महान उत्सव मनाया गया। उस उत्सव में सभी देवता, मनुष्य, तीर्थ, वेद, पितृ और समस्त जड़-चेतन जीव बधाई देने के लिए वहां एकत्र हुए।

पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की नवमी (९) के दोपहर के समय सभी ने भगवान राम और नर के दर्शन कर, उनका सत्कार, भोजन और प्रसन्नता प्राप्त की। तत्पश्चात सबने धुन कीर्तन और नृत्य किया और फिर अपने-अपने निवास स्थान को लौट गए। राजा-रानी ने भी दोपहर की भांति संध्याकाल में पूजन किया, रात भर जागरण किया और अगले दिन स्नान आदि कर्मों के पश्चात मूर्ति की पूजा की। उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिणा देकर विधिपूर्वक व्रत का उद्यापन किया और पारण किया। हे लक्ष्मी! यह मैंने तुम्हें अति उत्तम रामादित्य जयंती के व्रत की कथा सुनाई।

जो कोई भी इस रामचरित्र को परम भक्तिभाव से पढ़ेगा, सुनेगा या दूसरों को सुनाएगा, वे इस व्रत के पुण्य के भागीदार बनेंगे। उन्हें अपनी इच्छानुसार फल प्राप्त होगा और अयोध्या की तीर्थयात्रा का पुण्य मिलेगा। उन्हें पुरुषोत्तमनारायण के समान बलवान पुत्र की प्राप्ति होगी तथा भगवान पुरुषोत्तमनारायण की कृपा से वे भुक्ति (सांसारिक सुख), मुक्ति, स्वर्ग और वैकुंठधाम इनमें से जो भी इच्छित हो उसको प्राप्त करेंगे।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक चौबीसवां (३१६) अध्याय समाप्त।

अध्याय-२५

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण बोले - हे लक्ष्मी! गोलोक में राधिका की पुत्री और केवल संकल्प मात्र से प्रकट होने वाली 'विकुंठा' नाम की कन्या के व्रत का वृत्तांत सुनो। जब पुरुषोत्तमनारायण भगवान पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के अधिष्ठाता देव बने, तब राधा सहित श्रीकृष्ण ने उस उत्सव में रास का आयोजन किया। उस रास उत्सव में सौंदर्य और लावण्य से युक्त अनगिनत गोप कन्याएं आई। वे कन्याएं अपनी माताओं को "हे मां! हे अंबा! हे जननी!" कहकर बुलाती थीं और उन्हें आनंदित करती थीं। पति के साथ रहने वाली स्त्री भी यदि पुत्री के बिना हो, तो वह पूर्ण सुखी नहीं मानी जाती। पुत्री माता का ही रूप होती है और माता के कार्यों में उसकी सहायक (सेविका) होती है। वह भोजन में, उत्सवों में, वाहन में, गोपनीय बातों में, घर के कार्यों में, शयन के समय और यात्रा के दौरान - हर स्थान पर साथ रहकर माता की सेवा करती है। स्त्री वर्ग की सच्ची सहायिका स्त्री ही होती है। उसमें भी अपनी पुत्री के समान न तो बहन, न कोई अन्य पारिवारिक महिला और न ही कोई सेविका हो सकती है। इसीलिए पुत्री के बिना स्त्री अर्ध-सौभाग्य शालिनी (अधूरे सौभाग्य वाली) कहलाती है।

प्रात: काल अपनी पुत्री का मुख देखकर माता को स्वर्ग से भी अधिक सुख की अनुभूति होती है; ऐसा सुख उसे पुत्र को देखकर भी प्राप्त नहीं होता। पिता का स्नेह जितना पुत्र के प्रति होता है, उससे कहीं अधिक स्नेह माता का अपनी पुत्री के प्रति होता है। कुमारी कन्या विवाह के पश्चात पति-परायण हो जाती है (अपने ससुराल की हो जाती है)। अत: पुत्री के संपूर्ण जीवन का सुख माता को उसकी कुमारी अवस्था (कुंवारेपन) में ही प्राप्त करना पड़ता है। इसी कारण माता को अपनी पुत्री दस गुना अधिक प्रिय होती है।

माता की कला-कौशल और गृहकार्य की शिक्षा पुत्री के भीतर सदैव के लिए निवास करती है। एक सत्पुत्री (गुणी पुत्री) के कारण माता अपने और ससुराल, दोनों

कुलों में यशस्वी बनती है। पुत्र पिता का स्वरूप होता है और पुत्री माता का स्वरूप होती है। इसके अलावा, पुत्री रहित मुझे विरजा, रुक्मिणी, रमा, जया, माणिकी, प्रभा और पार्वती जैसी मेरी अनंत सौतनों को सदा देखते ही रहना पड़ता है। इसलिए, मुझे भगवान श्रीकृष्ण से सबसे श्रेष्ठ पुत्री मांगनी है।

ऐसा सोचकर, उत्सव के बाद राधा जी ने एकांत में श्रीकृष्ण के सामने अपने भाव प्रकट करते हुए कहा – हे नाथ! मुझे पुत्री दीजिए। पुत्री रहित जीवन से तो मृत्यु भली है। इस उत्सव के दौरान पुत्री वाली सभी स्त्रियों के बीच मैं शोभा नहीं पा रही हूं। मुझे ऐसी पुत्री दीजिए जो सभी सद्गुणों से युक्त हो, माता की आज्ञा का पालन करने वाली हो, कुल धर्म का अनुसरण करने वाली हो और समस्त लोकों में विख्यात हो। उसे देखने मात्र से या उसका स्मरण करने से ही हृदय में शांति का अनुभव हो, ऐसी सर्वश्रेष्ठ पुत्री मुझे प्रदान करें।

यदि मैं आपकी प्रिय पत्नी हूं और आप मेरे प्रिय कांत (स्वामी) है , तो राधा आपसे एक ऐसी सुलक्षणा पुत्री मांगती है, जो संसार की सभी पुत्रियों वाली स्त्रियों की पुत्रियों का विस्मरण करा दे (अर्थात वह सबसे श्रेष्ठ हो)। ऐसी प्रार्थना करके जब राधा ने भावपूर्ण हृदय से श्रीकृष्णनारायण का आलिंगन किया और उनकी सेवा की, तब श्रीकृष्णनारायण ने राधा को मात्र संकल्प से प्रकट होने वाली एक पुत्री प्रदान की।

वह पुत्री प्रकट होते ही युवती थी और अरबों दिव्य रूपवती गोपियों से भी अधिक सुंदर थी। जैसी राधा थीं, वैसी ही वह पुत्री थी; और जैसी वह पुत्री थी, वैसी ही राधा थीं। उन दोनों में सब कुछ समान होने के कारण कोई अंतर नहीं दिखाई दे रहा था। उस क्षण श्रीकृष्ण की अन्य सभी पत्नियां उसे देखकर इतनी मोहित और स्तब्ध रह गईं, मानो वे चित्रित हो गई हों। श्रीकृष्ण भी अपनी रूपवती पुत्री को देखकर अत्यंत आनंदित हुए। सभी के मन की वृत्तियां और भाव उस पुत्री के रूप में कुंठित (एकाग्र, स्थिर) हो गए, इसलिए श्रीकृष्ण ने वात्सल्य और आदर के साथ उसे 'विकुंठा' नाम से पुकारा। इसके बाद श्रीराधा ने भी उसे इसी नाम से संबोधित किया।

राधा की पुत्री विकुंठा को देखने के लिए समस्त गोलोक वासी आने लगे। सभी स्त्रियां उसकी प्रशंसा करते हुए कहने लगीं, अहो! यह पुत्री तो राधा से भी अधिक रूपवती है। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि - शास्त्रोक्त विधि-विधान के साथ यह कन्या जिसकी पत्नी बनेगी, वह कृष्णोत्तम कृष्ण अर्थात् स्वयं पुरुषोत्तम होंगे। इस प्रकार मंगल कामना और आशीर्वाद देकर सभी लोग अपने-अपने घर चले गए।

इसके बाद, शास्त्रोक्त संस्कारों के साथ माता-पिता उस कन्या (विकुंठा) का लालन-पालन करने लगे। वह कन्या अत्यंत भाव पूर्वक राधिकाजी की सेवा करती और घर के सभी कार्य पूर्ण करती थी। जब वह कन्या विवाह के योग्य हुई, तब वह प्रतिदिन अपने पिता के साथ अक्षराधिपति परब्रह्म पुरुषोत्तम के दर्शन करने जाने लगी।

जब पूजा करने के बाद राधिका पति (कृष्ण) वापस लौटते, तब वह कन्या पुरुषोत्तमनारायण को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाती थी। पुरुषोत्तमनारायण भी उसके मन को आकर्षित कर अपने स्वरूप में स्थित कर देते थे, जिसके कारण विकुंठा का ध्यान सभी कार्यों के दौरान निरंतर अनादि श्रीकृष्णनारायण में ही लगा रहता था। वह दिन-रात पुरुषोत्तमनारायण को पति रूप में प्राप्त करने का चिंतन करती रहती थी।

उसी समय, वहां श्रीहरि के पार्षद दुंदुभि की घोषणा गूंजी कि - आज पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि है। इस पुण्यदायी और मनोरम तिथि पर जो भी व्रत करेगा, वह अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त करेगा। इस व्रत को करने वाले को स्वयं अक्षराधिपति अनादि श्रीकृष्णपुरुषोत्तम वह सब कुछ प्रदान करते है जो वह चाहता है, इसलिए प्रार्थना करने (अपनी इच्छा मांगने) में संकोच न करें। यहां तक कि जो संकल्प कहा न जा सके या जो अत्यंत गोपनीय हो, उसे भी श्रीहरि निश्चित रूप से पूरा करेंगे।

यह सुनकर विकुंठा ने पुरुषोत्तमनारायण की प्राप्ति के लिए जागरण सहित दशमी का व्रत किया। उन्होंने प्रातः काल में पुरुषोत्तम भगवान की मूर्ति की षोडशोपचार (सोलह सामग्रियों) से पूजा की। इसी प्रकार उन्होंने सायंकाल और

रात्रि में भी श्रीहरि का पूजन किया।

मध्यरात्रि के समय, करोड़ों कृष्ण के समान तेजस्वी साक्षात् पुरुषोत्तमनारायण स्वयं अक्षरधाम से पधारे। उन्होंने मंद मुस्कान के साथ विकुंठा से कहा – अधिक मास के व्रत का फल देने वाला मैं पुरुषोत्तम यहां आया हूं और तुम्हारी भक्ति से अत्यंत प्रसन्न हूं। इसलिए हे विकुंठा! जो तुम्हारी इच्छा हो, वह मांग लो। सदा मेरा स्मरण करने वाली तुम्हारे लिए ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैं न दे सकूं।

तब संकोच और भक्ति भाव से भरी विकुंठा ने कहा – हे प्राणनाथ! आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। आप मेरे हृदय में निवास करते है । हे भगवन! हे प्राणपति! आप मेरे स्वामी बनें।

तब 'तथास्तु' कहकर श्रीहरि ने आगे कहा की – मैं अनेक स्वरूपों में निवास करता हूं, उसे तुम सुनो। मैं अक्षरधाम में पुरुषोत्तमनारायण के रूप में सदा निवास करता हूं। महावैकुंठ धाम में दूसरे स्वरूप से, जलावरण के वैकुंठ में तीसरे स्वरूप से, श्वेतद्वीप नामक वैकुंठ में चौथे स्वरूप से और क्षीरसागर वैकुंठ में पांचवें स्वरूप से मैं निवास करता हूं। इसलिए, तुम्हें भी दिव्य रूप धारण कर सर्वत्र मेरे साथ निवास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, तुम्हारा प्राकट्य माता राधिका की सेवा के लिए हुआ है, इसलिए हे सुंदरी! तुम्हें सदैव राधिका की सेवा में भी तत्पर रहना चाहिए। मेरी कृपा से तुम्हारे छह स्वरूप हों। इस प्रकार पुरुषोत्तमनारायण की कृपा दृष्टि से उस विकुंठा के छह स्वरूप हो गए। उनमें से प्रथम रूप में वह सबसे श्रेष्ठ अक्षरधाम में निवास करने योग्य और पुरुषोत्तम के अनुरूप बनी। उस विकुंठा को पुरुषोत्तम ने अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया।

दूसरे रूप में, श्रीहरि ने उसे गोलोक में राधिकाजी की सेवा के योग्य पुत्री के रूप में स्थित किया; इसलिए जैसे वह पहले गोलोक में रहती थी, वैसे ही अब भी वहां स्थित है। तीसरा विकुंठा का रूप मूर्तिमान (साकार) और व्यापक, इन दो रूपों में प्रकट हुआ। इसमें जो व्यापक रूप है, वह नारायण का 'महावैकुंठ' नामक धाम कहलाता है और उसमें वे मूर्तिमान (साकार) हो कर नारायण की पत्नी महालक्ष्मी के रूप में स्थित

हुईं। इसके बाद, चौथे विकुंठा रूप के भी व्यापक और मूर्तिमान – ऐसे दो भेद हुए। उसमें व्यापक रूप 'जलावरण वैकुंठ' बना और उसमें वे मूर्तिमान (साकार) हो कर लक्ष्मी रूप में भगवान विष्णु की पत्नी बनकर आदरपूर्वक उनकी सेवा करती है । पांचवां विकुंठा रूप भी दो प्रकार का हुआ, जिसमें व्यापक रूप 'श्वेतद्वीप' नामक वैकुंठ बना और उसमें मूर्तिमान (साकार) हो कर लक्ष्मी रूप में वे विष्णु-पत्नी बनकर श्रद्धा के साथ भगवान की सेवा करती है। छठे विकुंठा रूप के भी दो भेद हुए। उनमें व्यापक रूप तेजोमय क्षीर-वैकुंठ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उसमें मूर्तिमान (साकार) हो कर लक्ष्मी रूप में वे, वहां विष्णु-पत्नी बनकर आदर के साथ सेवा करती है।

वह विकुंठा, श्रीहरि की इच्छा से छह स्वरूपों में श्रीहरि की पत्नी के रूप में और चार महादिव्य धाम वैकुण्ठ की अधिष्ठात्री देवी के रूप में – इस प्रकार कुल दस स्वरूपों में अलग-अलग प्रकट हुईं। यह सब अधिक मास के व्रत के प्रभाव से संभव हुआ। श्रीकृष्णनारायण की कृपा भला क्या नहीं कर सकती?

हे लक्ष्मी! वह विकुंठा तू स्वयं ही है। तू यहां और सर्वत्र मुझे पुरुषोत्तम जानकर मेरी भक्ति करती है। चूंकि मैं प्रत्यक्षदर्शी (सब कुछ देखने वाला) हूं, इसलिए मैं यह सब जानता हूं, परंतु आप यह सब नहीं जानतीं। इसमें मेरी इच्छा ही मुख्य कारण है।

[1] हे लक्ष्मी! इस प्रकार मैंने तुम्हें पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की दशमी (१०) के व्रत के फल से, मेरी इच्छा और मेरी कृपा से प्राप्त तुम्हारे उन विकुंठा के दस रूपों की कथा सुनाई।

जो कोई भी इस कथा को पढ़ेगा या सुनेगा, मैं पुरुषोत्तमनारायण उसे भी वैसा ही फल प्रदान करूंगा और उसके मन की सभी मनोकामनाएं पूर्ण करूंगा।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की दसवी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक पच्चीसवां (३१७) अध्याय समाप्त ।

1. इति ते कथितं लक्ष्मि वृत्तं दशमिकाव्रतात् ॥ १०६ ॥
विकुण्ठायास्तव रूपाण्यभवन् दशधा फलम् । मदिच्छया तथा जातं ममानुग्रहकारणम् ॥ १०७ ॥ पठेद्वा श्रृणुयाद्वापि फलं तस्यापि तादृशम् । ददामीष्टं पूरयामि कृपया पुरुषोत्तमः ॥ १०८ ॥

अध्याय-२६

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण बोले - हे लक्ष्मी! सुनो, पूर्व कल्प में पुत्री रहित सती पार्वती ने जब राधिका की पुत्री विकुंठा को देखा, तब उन्होंने बार-बार महादेव से प्रार्थना की- मैं भी पुत्री वाली बनूं। तब शंकर भगवान ने प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कहा। इसके बाद, मंदराचल पर्वत पर एक वट वृक्ष (बरगद) के नीचे सती ने करोड़ों चंद्रमाओं के तेज से भी अधिक तेजस्वी, मानसी और समस्त दिव्य गुणों से युक्त पुत्री प्राप्त की, जो जन्म लेते ही युवती के समान थी। उस पुत्री ने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया, जिससे सती और महादेव अत्यंत प्रसन्न हुए। शंभु और सती ने मंदराचल पर्वत पर उसका बड़ा जन्मोत्सव मनाया।

उस जन्मोत्सव में देवता, देवियां, दिक्पाल, महर्षि, पितृ, मनु और मानवों के समूह आए। सप्त ऋषियों ने सती की उस पुत्री, जिसका नाम वम्री था, उसका यज्ञोपवीत संस्कार किया। तत्पश्चात वह वम्री ब्रह्मरूप महादेव और माता सती की सेवा करने लगी। वह अपने माता-पिता की तरह समाधि में भी बैठती थी। वह वट वृक्ष के नीचे निवास करती, वट की छाल के वस्त्र पहनती, वट के फलों का भोजन करती और वट का दूध पीती थी। वट की जड़ में वेदिका बनाकर वह होम (यज्ञ) कार्य करती थी और वट की लकड़ी के ही आभूषण धारण करती थी। वह तपस्विनी वटपुत्री समस्त सिद्धियों को धारण करने वाली बनी।

वह योगिनी जो भी सम्पत्ति, समृद्धि, लक्ष्मी, रस, अमृत, रत्न और भोग-विलास के साधनों की इच्छा करती, वे सभी वहां तुरंत उपस्थित हो जाते थे। अपने योगबल के कारण वह इन सभी वस्तुओं का अपने सामने प्रत्यक्ष अनुभव करती थी।

वह योगिनी गुदा मार्ग में स्थित मूलाधार चक्र में जाकर वहां के देवता गणपति का ध्यान करती और उनके सामर्थ्य को पूरी तरह अपने वश में कर लेती। फिर वह योनि के मूल में स्थित स्वाधिष्ठान चक्र में जाकर चतुर्मुख ब्रह्मा का ध्यान करती और

उनकी शक्तियों को भी पूर्णत: वश में कर लेती।

इसके बाद, नाभि प्रदेश में स्थित मणिपुर चक्र में जाकर वह विष्णु का ध्यान करती और उनके सामर्थ्य को वश में करती। फिर हृदय में स्थित अनाहत चक्र में जाकर वहां के देवता शिव का ध्यान कर, वह योगिनी उनके समस्त सामर्थ्य को भी अपने वश में कर लेती। फिर कंठ में स्थित विशुद्धि चक्र में पहुंचकर, वह अपने आत्मा में परम संयम रखते हुए आत्म-तत्व के सामर्थ्य को पूरी तरह वश में कर लेती। इसके बाद, भ्रुकुटी (भौंओं) के मध्य स्थित आज्ञा चक्र में जाकर वहां विराजमान हंस तथा गुरु का ध्यान कर वह ब्रह्मज्ञान को सिद्ध करती और सर्वज्ञता (सब कुछ जानने की शक्ति) प्राप्त करती। अंत में, ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रार चक्र में जाकर वह श्रीकृष्ण परमात्मा के साक्षात दर्शन करती।

वह (देवी) अपनी समाधि की शक्ति के द्वारा कभी वैकुंठ, श्वेतद्वीप, गोलोक, अमृतपुर और श्रीपुर जैसे दिव्य धामों में, तो कभी ब्रह्मा, सूर्य, चंद्र, वरुण और कुबेर आदि देवताओं के लोकों में विचरण करती थीं। कभी वे चतुर्व्यूह, चौबीस तत्वों, असुरों के लोक, नागलोक, भूगोल, खगोल और संपूर्ण ब्रह्मांड में सर्वत्र आती-जाती रहती थीं। इसके अतिरिक्त, योग का आश्रय लेकर वे इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ियों के मार्ग से सूर्य-चंद्रादि लोकों में तथा धर्मपुरी (यमपुरी) में भी जाती थीं। अनेक रूप धारण करने की शक्ति रखने वाली वे देवी, एक रूप से वटवृक्ष (बरगद) में, दूसरे रूप से अन्य वृक्षों में, और साथ ही वैकुंठ तथा श्रीपुर में भी निवास करती थीं। वही देवी यक्षिणी का रूप धारण कर कुबेर के महाकोष (खजाने) की धनयक्षिणी के नाम से रक्षा करती थीं। इस प्रकार, अनेक रूप धारण कर वे अपनी इच्छानुसार सर्वत्र क्रीड़ा (रमण) करती थीं। वटवृक्ष के नीचे प्रकट होने के कारण उन्हें 'वटसावित्री' कहा जाता है।

[1] वटसावित्री का व्रत सदैव पति का साथ (संयोग) प्रदान करने वाला है। वटसावित्री के पूजन से स्त्री को कभी वैधव्य (विधवापन) नहीं आता और न ही कभी

1. वटसावित्रिकाकृच्छ्रम् पतिसंयोगदं सदा । वैधव्यं नैव चायाति वटसावित्रिकार्चने ॥ ३७ ॥ दारिद्र्यं नैव जायेत वटयक्षिणिकार्चने । लक्ष्मीं च सम्पदश्चैव धनं ददाति यक्षिणी ॥ ३८ ॥

अनुक्रमणिका

दरिद्रता आती है। पूजित वटसावित्री (यक्षिणी) धन, लक्ष्मी और संपत्ति प्रदान करने वाली है । साथ ही, वे अन्न और धान्य की प्रदात्री भी है। वे समस्त वृक्षों में वास करती है।

उसी वटसावित्री ने अपने योगाभ्यास के बल पर संपूर्ण सृष्टि का भ्रमण किया। वहां ईश्वरों, देवताओं और मनुष्यों के युगलों को देखकर उसने विचार किया कि - स्त्रियों के लिए पति के बिना यौवन अशुद्ध और दोषपूर्ण है, इसलिए मुझे भी पति के साथ रहना चाहिए।

जब सती-पुत्री वटसावित्री मंदराचल पर्वत पर एक वट वृक्ष (बरगद) के नीचे बैठकर यह विचार कर रही थीं, तभी वहां से दस प्रचेता पसार हुए । समान रूपवान, पुष्ट और युवा उन प्रचेताओं ने भगवान शंकर के दर्शन किए और पुनः वहां से निकले। उन प्रचेताओं को देखकर वटसावित्री के मन में उनके प्रति स्नेह जागृत हुआ।

जब वह व्याकुल मन से उन्हीं का स्मरण कर रही थीं, तभी उन्हें पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के व्रत का बोध कराने वाले दुंदुभि की उद्घोषणा सुनाई दी कि - आज पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का पर्व है, जो महान पुण्य देने वाला है। जो भी इस व्रत को करेगा, उसे बिना किसी विशेष प्रयास के अपने अभीष्ट (इच्छित फल) की सिद्धि होगी। मैं साक्षात् श्री पुरुषोत्तमनारायण कहता हूं कि - इस व्रत को करके मुझसे इच्छित वरदान प्राप्त करो।

यह सुनकर वह कन्या शीघ्र वहां आई और उसने दुंदुभि का पूजन करके दस बार कहा - पतिम् देहि (मुझे पति प्रदान करें)। यह सुनकर दुंदुभि ने "तथास्तु" (ऐसा ही हो) कहा और वहां से प्रस्थान किया । वह कन्या भी माता पार्वती को पता न चले, इस तरह चुपचाप और शीघ्रता से वटवृक्ष (बरगद) के नीचे आ गई। जिसे वरदान मिल चुका था ऐसी प्रसन्न और संतुष्ट हृदय वाली उस कन्या ने, फिर से दुंदुभि का नाद सुना कि - पूजा से संतुष्ट हुए श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम शीघ्र ही मनोरथ पूर्ण करेंगे।

यह सुनकर उस वम्री ने बरगद के वृक्ष के नीचे भगवान पुरुषोत्तमनारायण की प्रतिमा स्थापित की। उन्होंने षोडशोपचार विधि से भगवान का पूजन किया, जिसमें - आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, अलंकार, धूप,

दीप, नैवेद्य, तांबूल, फल, आरती, दंडवत प्रणाम, परिक्रमा, स्तुति और पुष्पांजलि अर्पित की।

इसी प्रकार, वम्री ने दोपहर और शाम को भी भगवान पुरुषोत्तम का पूजन किया। रात में जागरण करते हुए उन्होंने श्रीहरि के सानिध्य में नृत्य किया और डमरू बजाते हुए घुंघरूओं की झंकार के साथ मधुर गायन किया। उस संगीत से आकर्षित होकर वन के वृक्ष, लता और घास जैसे सभी चेतन वहां खिंचे चले आए। वम्री ने भगवान पुरुषोत्तम के चरणों का चरणामृत और प्रसादी रूप पत्र, पुष्प एवं फल उन सभी को वितरित किए और उसके बाद स्वयं प्रसाद ग्रहण किया।

भगवान पुरुषोत्तम के इस महापूजन को देखकर माता पार्वती और भगवान शंकर अत्यंत आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने अपनी पुत्री की प्रशंसा करते हुए आशीर्वाद दिया – हे पुत्री! तुम इच्छित सुख प्राप्त करो। हे कल्याणी! तुम वैष्णवी बनो और इस वन को सुख प्रदान करने वाली बनो। तुम तपस्विनी, ब्रह्मशक्ति से संपन्न और भगवान पुरुषोत्तमनारायण की प्रिया बनो। तुम इस वटवृक्ष (बरगद) में निवास कर सभी के लिए पूजनीया बनो और वृक्षों को रस (जीवन शक्ति) प्रदान करने वाली बनो।

इस प्रकार पुरुषोत्तम भगवान का पूजन और विसर्जन करने के बाद, जब वम्री वटवृक्ष की वेदिका (चबूतरे) पर बैठी, तभी वहां करोड़ों शिव के समान उज्ज्वल आभा वाले एक दिव्य रूपधारी युवा प्रकट हुए। उन्होंने मंद मुस्कान के साथ वम्री को अपनी ओर आकर्षित किया और उसे "प्रिया" कहकर संबोधित किया। उन्हें चक्र और पद्म धारण किए हुए साक्षात् पुरुषोत्तमनारायण जानकर, वम्री अत्यंत विनम्र भाव से उनके चरण कमलों में गिर पड़ी। तब पुरुषोत्तम ने कहा – हे देवी! मैं तुम्हारे व्रत से अत्यंत प्रसन्न हूं। तुम्हारे मन में जो भी इच्छा हो, वह वरदान मांग लो। तब श्रीहरि की चरण-धूलि को अपने मस्तक पर लगाते हुए उसने कहा – मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें। उसके इस परम भाव को जानकर श्रीहरि ने 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) कहा। फिर उन्होंने वम्री से कहा – तूमने मेरे पार्षद दुंदुभि की उपस्थिति में जो दस बार 'पतिम् देहि' (मुझे पति प्रदान करें) कहा था, उस बात का स्मरण कर। मैं साक्षात्

पुरुषोत्तम तेरा पति बनूंगा। अब तू दिव्य स्वरूप धारण कर परमधाम अक्षर में मेरी पत्नी के रूप में चल। इसके अतिरिक्त, तू पार्वती की सेवा में तत्पर 'वटसावित्री' नाम की पुत्री बनकर यहां नित्य निवास कर। लोग तुझे 'वटयक्षिणी' के नाम से भी जानेंगे। साथ ही, तू पृथ्वी की खानों में द्रव्यों की रक्षा करने वाली 'रुद्रस्वरुपिणी' के रूप में स्थित हो।

चूंकि प्रचेताओं को देखकर तेरा मन प्रेम से भर गया था, इसीलिए तूने दुंदुभि के पास दस बार 'पतिम् देहि' ऐसा वरदान मांगा था। इस कारण ये दस प्रचेता तेरे पति होंगे। किंतु इस (वर्तमान) देह से वे तेरे पति होने के योग्य नहीं है, इसलिए यह पूजन हुआ तब तक यहां उपस्थित इन वृक्षों की तू पुत्री बन। हे प्रिये! तू भिन्न भिन्न दस रूप धारण करके वृक्ष-पुत्री बन। वहां मेरी आज्ञा से तेरा नाम 'वार्क्षी' होगा। वृक्ष, स्तंब, अन्न, शाक, तृण, नल, बेल, दंड, पत्ते और कंद - इन दस जातियों का पितृत्व स्वीकार कर तू दस रूपों में इनकी पुत्री बन और सभी को 'रस' प्रदान करने वाली हो।

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण नारायण ने अत्यंत प्रेमभाव से वम्री (वार्क्षी) को परमधाम के योग्य बनाया और उसे अपने साथ ले गए। माता पार्वती के लिए वम्री का एक पुत्री रूप वहीं रहा, जबकि अन्य दस रूपों में वह वृक्ष-कन्या बन गई। उन दस कन्याओं को दस प्रकार के वृक्षों ने स्वीकार किया। जब उचित समय आया, तब उन वृक्षों ने दस प्रचेताओं के साथ उन दस कन्याओं का विवाह करा दिया। वे वृक्ष-कन्याएं सर्वत्र रस और फल प्रदान करने वाली है। वैसे तो वार्क्षी की मुक्ति हो ही गई है परंतु जब नारदजी के उपदेश से प्रचेताओं को मोक्ष प्राप्त होगा, तब उनकी पत्नियों के रूप में स्थित इन वृक्ष-कन्याओं का भी निश्चित रूप से मोक्ष अर्थात इस कार्य भार से मुक्ति होगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।

इस प्रकार पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का व्रत करके पार्वती की पुत्री वार्क्षी परम अक्षर धाम में शाश्वत ब्रह्मत्व (दिव्य स्वरूप) को प्राप्त हुईं और उसने पुरुषोत्तमनारायण की पत्नी का पद प्राप्त किया। साथ ही, भगवान पुरुषोत्तम की कृपा से पार्वती की पुत्री दस दिव्य स्वरूपों में प्रकट हुईं, जो पृथ्वी पर यज्ञ की समिधाओं के

रूप में प्रतिष्ठित हुई।

इस कथा को सुनने या पढ़ने मात्र से पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के व्रत का पुण्य फल प्राप्त होता है। जो कोई भी इस कथा का वाचन करवाता है, वह भगवान पुरुषोत्तमनारायण की कृपा से धन-धान्य समृद्धि से युक्त होकर भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त करता है।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की एकादशी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक छब्बीसवां (३१८) अध्याय समाप्त ।

अध्याय-२७

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

नारायण बोले - हे लक्ष्मी! सुनो, मैं तुम्हें सृष्टि के आरंभ में विराट पुरुष के चरणों से उत्पन्न हुई सेविका जोष्ट्री देवी की कथा सुनाता हूं। विराट पुरुष ने अपने नाभि प्रदेश से पुत्र ब्रह्मा का सृजन किया और उन्हें जोष्ट्री नामक सेविका अर्पित की। ब्रह्माजी ने उस दासी को सदैव सत्यलोक में निवास दिया। ब्रह्माजी जब-जब मन से उसका स्मरण करते थे, तब-तब वह सेविका बार-बार अनेक प्रकार की सेविका जातियां उत्पन्न करती थी। एक बार जोष्ट्री ने प्रजा की सेवा के लिए अपनी बारह पुत्रियों को उत्पन्न कर आदरपूर्वक उन्हें अर्पित किया, जिनमें उन्होंने ऋषियों को अनशना (उपवास), पितर को पिपासा (प्यास), देवों को अशना (भूख), भूत-प्रेत और पिशाचों को वासना, राजाओं को करा (कर या टैक्स), मनुष्यों को व्यवसाया (कार्य/उद्योग), दानवों को प्रसह्या (बल/हठ), दैत्यों को विलासा (भोग-विलास), पशु-पक्षियों को विश्वासा (भरोसा), वृक्ष और लताओं को मेघा (वर्षा), कीट-पतंग एवं जंतुओं को कर्दमा (कीचड़) तथा जलचरों को कुम्भिका (जलीय वनस्पति) के रूप में प्रदान किया।

इस प्रकार ब्रह्माजी की सेविका 'जोष्ट्री' सत्यलोक में निरंतर सेवा धर्म का पालन करती है। जिस प्रकार ब्राह्मणों के लिए छह कर्म (पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना) मोक्ष दायक है , उसी प्रकार चौथे वर्ण के लिए सेवा को ही मोक्षकारी मानी गई है; जैसे क्षत्रियों के लिए रक्षा करना कल्याणकारी है, वैसे ही सेवक वर्ग के लिए सेवा कल्याण प्रदान करने वाली है; जिस प्रकार वैश्य के लिए दान देना इस लोक और परलोक में श्रेष्ठ फल देने वाला है, वैसे ही सेविका सेवा के माध्यम से ही श्रेय (कल्याण) प्राप्त करती है; जैसे दासी के लिए सदा आज्ञा में रहना मोक्ष दायक है, वैसे ही सेवक वर्ग के लिए सेवा ही मोक्ष का द्वार बनती है; जिस प्रकार शील यानी ब्रह्मचर्य रक्षा करने वाला होता है, वैसे ही सेविका के लिए उसकी सेवा ही सदा रक्षक बनती है;

जैसे वनवासियों के लिए तपस्या को सुखकारी माना गया है, वैसे ही सेवकों के लिए सेवा हमेशा सुख देने वाली है; जिस प्रकार त्यागियों के लिए त्याग परम आनंद देने वाला माना गया है, वैसे ही सेवक के लिए भक्तिभाव से की गई सेवा आनंददायी होती है और जिस प्रकार यज्ञ, तप, ध्यान, जप, दान और हवन आदि इस लोक और परलोक में सुख देने वाले है , उसी प्रकार सेवा भी सर्वत्र सुख प्रदान करने वाली है।

[1] सेवा से स्वर्ग, राज्य, लक्ष्मी, धन, यश, कीर्ति, पुण्य और शाश्वत मोक्ष को निश्चित रूप से प्राप्त किया जा सकता है; भगवान कृष्ण की सेवा, माता की सेवा, पिता की सेवा, आत्म सेवा, देव सेवा, जन सेवा, वृद्धों की सेवा, दुःखी की सेवा, पति की सेवा, सती की सेवा, पत्नी की सेवा, ईश्वर की सेवा, गौ की सेवा, ब्राह्मण की सेवा, अनाथों की सेवा, आश्रितों की सेवा, प्रजा की सेवा, स्वामी की सेवा, अतिथियों की सेवा तथा परमात्मा की सेवा इस लोक और परलोक में सुख, पुण्य और शांति प्रदान करने वाली होती है।

[2] पुरुषोत्तम भाव (परमात्मा की बुद्धि) से की गई सेवा ही मोक्ष प्रदान करने वाली होती है। देह सेवा, धन सेवा, चरण-सेवा, गुणों की सेवा, वस्तुओं की सेवा, अन्न सेवा, जल सेवा, गृह सेवा, रोगियों की सेवा तथा लोक सेवा आदि सभी सेवाएं यदि परमात्मा की दृष्टि से की जाएं, (अर्थात मैं इन रूपों में स्थित परमात्मा की ही सेवा कर रहा हूं इस भावना से सेवा की जाय) तो वे सुखदायी और मोक्षदायिनी बन जाती है , इसीलिए सेवा धर्म को सभी देहधारियों के लिए अत्यंत कठिन और अगम्य समझना चाहिए। सब कुछ संभव है लेकिन श्रद्धा के बिना सेवा नहीं हो सकती और भावना के बिना सौंपी गई सेवा भी नहीं हो पाती; वैसे तो सेवा मोक्ष की इच्छा से, सुख की इच्छा से, स्वार्थ की इच्छा से या किसी फल की प्राप्ति की इच्छा से भी की जाती है परंतु –

[3] निष्काम भाव से की गई सेवा करोड़ों गुना फल देने वाली होती है और इस निष्काम कर्म का फल देने वाले स्वयं भगवान पुरुषोत्तमनारायण है; ऐसा विचार कर वह जोष्ट्री अपनी पुत्रियों से सभी लोगों की सेवा करवाती थी, जिससे सभी में वास

1. सेवया प्राप्यते स्वर्गं राज्यं लक्ष्मीर्धनादिकम् । यशः कीर्तिस्तथा पुण्यं शाश्वतं मोक्षणं ध्रुवम् ॥ २२ ॥ 2. पुरुषोत्तमबुद्धया तु कृतं मोक्षकरं भवेत् ।
3. निष्कामेन कृता या तु कोटिगुणार्थदा हि सा । अकामस्य तु कार्यस्य फलदः पुरुषोत्तमः ॥ ३१ ॥

करने वाले अंतरात्मा संतुष्ट होते थे, क्योंकि सेवा से प्रसन्न होकर सत्पुरुष अवश्य आशीर्वाद देते ही है और वृद्धों एवं ब्राह्मणों की सेवा करने वाले को उनके उत्तम आशीर्वाद प्राप्त होते है।

[1] शरीर नष्ट हो जाता है, परंतु उसके द्वारा की गई सेवा परलोक में सहायता करती है, इसलिए सेवा करनी चाहिए। परोपकार कभी भी व्यर्थ नहीं जाता और वैसे ही सेवा भी कभी निष्फल नहीं होती; कालांतर में भी उसका फल अवश्य प्राप्त होता है। (समय आने पर) किया हुआ दान और की गई सेवा ही साथ खड़े रहते है , जबकि जो दान नहीं दिया गया और जो सेवा नहीं की गई, वह साथ नहीं देते । मनुष्य को अपने शरीर, मन और वाणी से माता-पिता, गुरु और परमेश्वर की सदैव सेवा करनी चाहिए क्योंकि उस सेवा का फल शाश्वत होता है; यही सोचकर जोष्ट्री सत्यलोक में सदा ब्रह्माजी की सेवा करती है और अपनी पुत्रियों द्वारा निरंतर प्रजा की सेवा करवाती है।

एक बार धर्मराज के घर पर संपूर्ण समाज एकत्रित हुआ था, जिसमें ऋषि, मुनि, देवता, पितर, मानव, वृक्ष, बेली, पिशाच, दैत्य और दानव आदि चौदह लोकों में स्थित सभी दृश्य तथा अदृश्य देहधारी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ वहां आए थे। उस समाज के श्रेष्ठ पुरुषों के साथ सेविका के रूप में जोष्ट्री की बारह पुत्रियां भी वहां आई थीं, जिन्होंने अपनी सेवा से वहां उपस्थित सभी को संतुष्ट किया और उन सभी ने प्रसन्न होकर उन्हें कई पुरस्कार तथा आशीर्वाद दिए। सभा समाप्त होने पर जब वे बारह बहनें कुछ समय के लिए अपनी माता के घर गईं, तभी वहां सत्यलोक में श्रीहरि के वचनों की घोषणा करता हुआ दुंदुभि का नाद सुनाई दिया कि - इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की द्वादशी (१२) के दिन केवल मेरी ही शरण स्वीकार करके, मेरा पूजन करते हुए यह व्रत करो।

[2] मैं पुरुषोत्तम तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूंगा। इस व्रत में आलस्य बिल्कुल मत करना क्योंकि यह व्रत अत्यंत सरलता से किया जा सकता है। जिनके भाग्य उज्ज्वल है, वे भी इस व्रत का फल प्राप्त करें। मैं श्रीकृष्णनारायण अपनी पूर्ण कृपा से सब कुछ

1. शरीरं नाशमायाति तेन सेवा कृता परे । लोके सहायतां याति तस्मात् सेवां समाचरेत् ॥ ३४ ॥ परोपकारः कुत्रापि विफलो याति नैव ह । सेवापि विफला नैव कालान्तरेऽपि जायते ॥ ३५ ॥ अदत्तं नोपतिष्ठेत दत्तमेवोपतिष्ठते । असेवा नोपतिष्ठेत कृता सेवोपतिष्ठते ॥ ३६ ॥ देहेन मनसा वाचा पितरं गुरुमच्युतम् । सेवेत सर्वदा प्राणी फलं तच्छाश्वतं भवेत् ॥ ३७ ॥

2. भवन्मनोऽभिलषितं दास्येऽहं पुरुषोत्तमः । माऽत्र प्रमदितव्यं वै कृच्छ्रे स्वल्पं व्रतं बहु ॥ ५०॥

देने वाला हूं। इस व्रत के प्रभाव से मैं सिद्धि, अपना परम धाम, शाश्वत सुख, स्वयं को और अपना सर्वस्व प्रदान करूंगा। एक समय भोजन करके, नक्त (सूर्यास्त के बाद) भोजन करके, केवल फलाहार करके, मात्र जल पीकर या केवल दूध, दही, भाजी, कंद, मूल, पत्ते अथवा सांवा (मोरिया) आदि का भक्षण करके यह व्रत करना चाहिए।

[1] जो कोई, किसी भी भाव से इस पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की द्वादशी का व्रत करेगा, उसकी सभी मनोकामनाएं मैं पूरी करूंगा। प्रातःकाल, दोपहर और संध्या के समय मेरा पूजन करना, रात्रि में जागरण करना और अगले दिन अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार दान देना तथा भोजन कराना। मुझे पुष्पांजलि, अक्षतांजलि, जलांजलि, भावांजलि, स्नेहांजलि और आत्मांजलि अर्पित करना, किंतु इन सबमें सबसे श्रेष्ठ सर्व-समर्पणांजलि है, वह मुझे अर्पित करना। मैं भाव, स्नेह और प्रेम से ही प्राप्त होने योग्य हूं। यौवन बीत जाएगा, लंबी आयु समाप्त हो जाएगी और संपत्ति का भी नाश हो जाएगा, परंतु मेरी कृपा सदैव बनी रहेगी; जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, वह राज्य, पुण्य और धन आदि सब नष्ट हो जाएगा, लेकिन मेरी कृपा शाश्वत है जिसका कभी विनाश नहीं होता।

[2] कृपा के पात्र भक्तो! मेरी कृपा को ग्रहण करो और अपनी दरिद्रता को दूर करो; मेरी आज्ञा से, इस व्रत के प्रभाव से तुम सदैव सुख-संपत्ति से संपन्न रहोगे।

ऐसी दुंदुभि की घोषणा सुनकर उन बारह बहनों ने केवल दूध पान करके पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की द्वादशी (१२) का व्रत किया, जबकि जोष्ट्री देवी ने मात्र जल पीकर व्रत पूर्ण किया। उन सभी ने प्रातःकाल स्नान करके श्रीकृष्णनारायण की तेरह स्वर्ण मूर्तियां बनाईं और केले के खंभों तथा आम एवं अशोक के पत्तों के तोरणों से सुसज्जित एक सुंदर मंडप तैयार किया। उस मंडप के बीच में 'सर्वतोभद्र मंडल' बनाकर उसके मध्य में एक रमणीय स्वर्ण कलश स्थापित किया, उसमें पंचरत्न, पान के पत्ते, चंदन, अक्षत और फल आदि अर्पित

1. येन केनापि भावेन द्वादशीव्रतमाहितम् ॥ ५५ ॥ तस्याऽहं वाञ्छितं सर्वं पूरयिष्यामि सर्वथा । 2. कृपां गृह्णन्तु कृपणा दूरयान्तु दरिद्रताम् । मदाज्ञया व्रतेनैव शाश्वताढ्या भवन्तु वै ॥ ६४ ॥

किए। फिर उस कलश के ऊपर तिल और शक्कर से भरा हुआ सोने का पात्र रखकर, उसमें श्रीकृष्णनारायण को विराजमान किया और बड़ी श्रद्धा व आदर के साथ उनका षोडशोपचार (सोलह उपचार) से पूजन किया।

दोपहर और सायंकाल में भी उन्होंने उसी प्रकार पूजन किया तथा रात में सभी ने जागरण करते हुए श्रीहरि के सम्मुख गायन-वादन के साथ नृत्य किया। प्रात:काल श्रीहरि मंद मुस्कान के साथ प्रकट हुए, जो करोड़ों कामदेवों से भी अधिक सुंदर, युवा और पुष्ट थे। वे बार-बार कह रहे थे कि मैं तुम्हारी सेवा से अत्यंत प्रसन्न हूं, तुम अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहते हो वह वरदान मांग लो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूंगा इसमें कोई संदेह नहीं है। तुम बारह युवतियों ने अपनी सेवा, श्रद्धा और स्नेहपूर्ण भावना से परात्पर धाम को भी जीत लिया है; तुम दासियों ने अपनी सेवा से आज अदासता (स्वाधीनता) प्राप्त कर ली है, इसलिए मन में जो हो वह मांगो। मैं सेवकों का सेवक, शासकों का शासक, मित्रों का मित्र, स्नेहियों का स्नेही और शरणागत का रक्षक हूं; जो मेरे लिए अपना सर्वस्व त्याग देता है, मैं उसे अपना सर्वस्व दे देता हूं।

[1] मैं धन और सेवकों द्वारा की गई सेवा से मैं उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना स्वयं की गई सेवा से प्रसन्न होता हूं। इसलिए कहो, मैं तुम्हें क्या दूं? तब उन्होंने कहा कि हम सभी के पति आप श्रीपुरुषोत्तमनारायण है और हम आपको ही समर्पित है। दासियों का यह धर्म है कि वे शासक को सर्वस्व अर्पित करें, प्रिया का धर्म है कि वे पति को सर्वस्व अर्पित करें और स्वामी का धर्म है कि जो उन्हें समर्पित हो चुके है, उनका सदैव स्वीकार करें। अत: हमने अपना सर्वस्व आपको अर्पित कर दिया है, अब आपको जो उचित लगे वह करें। यह सुनकर श्रीकृष्णनारायण ने कहा कि - मैं सब जानता हूं और तुम सब का अपने हृदय में स्वीकार करता हूं। बाह्य रूप से भी मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हें अपनी पत्नियां बनाऊंगा। मेरे हाथ के स्पर्श से तुम दिव्य रूप धारण कर मेरी पत्नियां बनकर सदैव मेरे 'अक्षर' नामक धाम में निवास करोगी। मैं जोष्ट्री देवी को भी अपने सच्चिदानंद स्वरूप के तेज और चिन्मयी शक्ति से युक्त करता हूं। साथ ही,

1. तथा न तोषमाप्नोमि धनैर्भूत्यैश्च सेवया । यथा सन्तोषमाप्नोमि स्वेनैव कृतसेवया ॥ ८९ ॥

तुम्हारे अन्य बारह स्वरूप बनाकर मैं उन्हें महाकाल को अर्पित करता हूं, जिससे विश्व का संचालन हो सके। महाकाल को अर्पित होने के बाद तुम इस लोक में मेरे शक्तिभूत काल की शक्तियां बनकर कार्य करो। इसके अतिरिक्त, जिस तरह तुम जोष्ट्री की पुत्रियां थीं, उसी तरह ब्रह्मा के लिए ब्रह्मांड में भी निवास करो। इस प्रकार मेरी इच्छा से तुम तीन रूपों में रहकर सेवा करो। यह त्रिविध रूप से प्राप्त सेवा ही पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की द्वादशी (१२) के व्रत का शाश्वत फल है।

ऐसा कहकर पुरुषोत्तमनारायण ने उनके तीन-तीन रूप किए और महाकाल तथा ब्रह्माजी को उनकी शक्तियां प्रदान कीं, फिर वे उन सभी को अपने साथ अपने परमधाम ले गए। हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तमनारायण पारावार कृपा करने वाले है, वह (पुरुषोत्तम मास में) अल्प व्रत का भी अपनी करुणा से अनंत फल देते है। जो कोई भी इस कथा को सुनेगा, पढ़ेगा या दूसरों को सुनाएगा, उसे भी निश्चित रूप से इस व्रत का वैसा ही पुण्य प्राप्त होगा।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की द्वादशी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक सत्ताईसवां (३१९) अध्याय समाप्त।

अध्याय-२८

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! सुनो, राधिका को श्रेष्ठ पुत्री वाली देखकर श्री (महालक्ष्मी) ने भी परमेश्वर श्रीकृष्ण से कहा कि हे कांत! हे हरि! जिस प्रकार राधा पुत्रीवती होकर सुशोभित हो रही है और सभी पुत्रीवती स्त्रियों में सम्मान प्राप्त कर रही है, वैसी पुत्री वाली मैं कब बनूंगी? हे पुरुषोत्तम! कृपा करके मुझे एक ऐसी पुत्री दीजिए, जो समस्त शुभ गुणों का आश्रय हो। जब श्री ने ऐसी प्रार्थना की, तब श्रीकृष्ण नारायण ने 'तथास्तु' कहकर उनके साथ लीला पूर्वक रमण किया। भगवान श्रीकृष्णनारायण के मात्र दृष्टि प्रसाद से श्री से एक ऐसी दिव्य कन्या प्रकट हुई, जो रूप में श्रीकृष्ण के समान और सौंदर्य में श्री के समान थी। वह उत्पन्न होते ही युवती (युवावस्था प्राप्त) थी। अपने गुणों के कारण वह कामधेनु (इच्छा पूर्ण करने वाली) के समान थी, इसलिए उसका नाम 'सुदुधा' रखा गया और श्रीकृष्ण तथा श्री ने उसे सुदुघा कहकर पुकारा। जन्म से ही सुदुघा को गायों को दुहने और उनके पालन-पोषण के कार्यों में बहुत रुचि थी, इसलिए वह 'गोप्रिया' कहलाई।

जब वह प्रकट हुई, तब श्रीकृष्ण और श्री के निवास स्थान पर भव्य उत्सव मनाया गया, जिसमें अप्सराएं और देवियां नृत्य करने लगीं, गंधर्व गायन-वादन करने लगे, मुनि आशीर्वाद देने लगे और गोप-गोपियों के समूह बधाई तथा पुष्पों की अंजलि अर्पित करने लगे। दूध के समान श्वेत कांति वाली उस कन्या को देखकर सखियां अत्यंत आनंदित हुईं और उसके साथ बार-बार खेलने लगीं। इसी बीच सुदुधा के मन में बार-बार यह जिज्ञासा हुई कि उसे क्या कार्य करना है?

तब उसका योगबल जानकर पिता श्रीकृष्ण ने आदेश दिया कि - हे पुत्री ऊर्जाहूति! तुम दूध के माध्यम से इंद्र की वृद्धि करो। ऐसी आज्ञा पाकर सुदुघा ने अपने माता-पिता को प्रणाम किया और इंद्र की वृद्धि तथा पुष्टि के लिए चिंतन करने लगी। ब्रह्मांड में जहां-जहां महेंद्र पद और स्वर्ग में देव साम्राज्य है, उन सभी पदों और राज्यों

का हृदय में ध्यान धरकर वह उनकी शाश्वत पुष्टि का साधन विचारने लगी कि 'मैं श्री-पुत्री सुदुघा दूध का रूप धारण करती हूं, देवताओं को दुग्ध रूपी अमृत देकर स्वर्ग में निवास करती हूं, महर आदि लोकों में पुण्य आत्माओं के लिए अमृत रूप होकर रहती हूं और पितरों को तर्पण, पिंड तथा खीर आदि अर्पित करती हूं; साथ ही भुवर्लोक में भी पशुओं, मनुष्यों और वृक्षों को रसात्मक दूध रूपी अमृत देकर उनका पोषण करती हूं, जल में स्नेह (चिकनाहट) रूपी अमृत बनकर पोषण करने वाली बनती हूं, अग्नि को पाक-मधुरता और पाचन रूपी अमृत अर्पित करती हूं और आत्मा को देह में निवास के लिए विषय रूपी अमृत प्रदान करती हूं क्योंकि आत्मा ही इंद्र है और आत्मा की शक्तियां विषयों के आश्रित रहती है , इसलिए इंद्रियों द्वारा विषय रूपी अमृत का भोग करने वाला वह आत्मा ही है; तथा मैं मक्खन और घी के स्वरूप में भी सभी के लिए अमृत तुल्य हूं।

इस प्रकार, मैं अनेक स्वरूपों वाली कार्यात्मिका बनती हूं। इंद्र को सुख प्राप्त हो, इसके लिए मैं 'सुदुघा' शक्तिरूप बनकर उनमें निवास करती हूं। यज्ञ में ऊर्जाहूति बनकर मैं ही पोषण करती हूं। इंद्र की रक्षा जिस-जिस प्रकार से संभव हो, वैसे-वैसे रूप धारण कर मैं आज ही सर्वत्र प्रवेश करती हूं - ऐसा विचार कर उस सुदुघा ने अनेक रूप लेकर दृश्य और अदृश्य भाव से सब में प्रवेश किया, तब से इंद्र का सुंदर स्वर्ग सुख-समृद्धि से वृद्धि को प्राप्त होने लगा, सभी अमृतमय दूध अत्यंत वेग से वृद्धि को प्राप्त होने लगे और समस्त लोकों में श्रीमयी भूमि धन-धान्य और संपदा से मनोहर हो गई। देव और देवियां पहले से भी अधिक शोभायमान होने लगे और सुदुघा के प्रवेश के प्रभाव से सारी संपत्तियां उपभोग करने के बाद भी लेशमात्र भी क्षीण नहीं होती थी; इस प्रकार चारों ओर ऐसी आनंदमयी संपन्नता छा गई जो पहले न कभी देखी गई थी न सुनी गई थी। समय बीतने के साथ जब प्रथम सतयुग का शुभ काल व्यतीत हुआ, तब ऋषियों में अत्यंत श्रेष्ठ और मेधावी नाम के एक महान याज्ञिक ऋषि हुए, जो विधि-विधान से यज्ञ करते थे और वर्षा, पुत्र, सुख, स्वर्ग एवं पुण्यों की प्राप्ति के लिए यज्ञ करवाते थे। उन्होंने पुत्र-पुत्री की प्राप्ति हेतु 'पुत्रेष्टि यज्ञ' किया, जिसमें

स्वयं श्रीकृष्णनारायण अग्नि में प्रकट हुए और अपने हाथों से मेधावी ऋषि द्वारा अर्पित पुरोडाश (हविष्य) ग्रहण कर कहा कि - मैं प्रसन्न हूं, अपनी इच्छानुसार वरदान मांगो। तब मेधावी ऋषि ने पुत्र की कामना व्यक्त की, जिस पर श्रीहरि ने बताया कि तुम्हारे प्रारब्ध में सात जन्मों तक पुत्र नहीं है; यदि यज्ञ के प्रभाव से पुत्र होगा भी तो उसकी आयु संशय में रहेगी, जिससे जन्म की खुशी के बाद उसकी मृत्यु गहरा दुख देगी, इसलिए हे विप्र! उचित हो कि तुम पुत्री मांगो क्योंकि तुम्हारी पत्नी भालरेखा की भी यही इच्छा है और वह पुत्री कीर्ति तथा सेवा में पुत्र से भी बढ़कर होगी। तब पत्नी की सहमति लेकर मेधावी ऋषि ने श्रीहरि के वचनों को स्वीकार किया और भगवान द्वारा दिया गया प्रसाद ग्रहण कर उनसे निवेदन किया कि - मुझे श्री के समान, सुख देने वाली, शांत, कामनाओं को पूर्ण करने वाली, कामदुघा समान और समस्त प्राणियों को अमृतपान कराने वाली शक्ति स्वरूपा पुत्री प्रदान करें।

तब तथास्तु कहकर श्रीहरि ने सुदुघा को मेधावी की पुत्री बनने की आज्ञा दी, जिसके फलस्वरूप वह भालरेखा के शयनकक्ष में प्रकट हुई। (उसका नाम मेधावती रखा गया) जन्म से ही वह युवती रूप, सौंदर्य और चतुराई जैसे गुणों से संपन्न थी और वह सर्व गुण संपन्न सुंदरी अपने पिता को अत्यंत प्रिय थी। मेधावी उसका पालन-पोषण पुत्र के समान करते थे; नीति और साहित्य में निपुण तथा आत्मतत्व की ज्ञाता वह कन्या सदैव अपने माता-पिता की सेवा में लगी रहती थी, जिससे वे अत्यंत संतुष्ट थे। हे लक्ष्मी! समय बीतने पर उसकी माता का निधन हो गया। यद्यपि मेधावती एक योगिनी के समान विरक्त थी, फिर भी अपनी सखियों के गृहस्थ सुख को देखकर वह सोचने लगी कि मुझे ऐसा सुख कैसे प्राप्त हो? उसे चिंता से व्याकुल जानकर उसके पिता उसके योग्य वर की खोज में पूरी पृथ्वी पर घूमे, परंतु कहीं भी योग्य वर न मिलने से निराश होकर मेधावी तीव्र ज्वर (बुखार) से पीड़ित हो गए। घर लौटते समय श्री कृष्णनारायण का स्मरण करते हुए मेधावी अपने घर के आंगन में ही गिर पड़े, तभी श्रीकृष्ण के दूत आए और उन मुनि को श्री कृष्ण के धाम ले गए। मेधावती अपने पिता के देह को गोद में लेकर विलाप करते हुए रोने लगी कि - "हे तात! मुझे अनाथ करके

आप कहां चले गए? मेरी न माता है, न भाई है, न बंधु है और न ही कोई रक्षक है; अब मैं कैसे जीवित रहूंगी? इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं भी मर जाऊंगी। उसका ऐसा रुदन सुनकर वहां कई तपस्वी आए और उन्होंने मृत मेधावी ऋषि को देखा, जिसके बाद उन्होंने शोकपूर्ण हृदय से उनका अग्नि-संस्कार किया और कन्या को सांत्वना देकर वे सभी अपने-अपने स्थान पर चले गए।

हे लक्ष्मी! समय बीतने पर भाग्यवश मेधावती के घर दुर्वासा मुनि पधारे। ऋषि को आते देख मेधावती ने उनके चरणों में वंदन किया और आदरपूर्वक उनकी पूजा करके कहा कि - हे अत्रिपुत्र! आपको नमस्कार है; आप इस समय कहां से पधार रहे है? आज मेरा जन्म, मेरा व्रत और मेरा पुण्य सब सफल हो गया जो मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए। यह सुनकर दुर्वासा ऋषि ने कहा कि - हे पुत्री! तुम्हारा कल्याण हो; मैं कैलाश से आ रहा हूं और बद्रिकाश्रम में भगवान नारायण के दर्शन करने जा रहा हूं, यदि तुम्हें कोई काम हो तो बताओ। तब मेधावती ने कहा कि - आपके दर्शन और कृपा से मेरा भविष्य शुभ होगा, किंतु मेरे न तो माता-पिता है, न भाई और न ही कोई रक्षक है; कोई भी मुझसे विवाह करने की इच्छा नहीं रखता, अब मैं क्या करूं? हे ब्रह्मन्! मेरा हित कीजिए; यह सुनकर उसका उपाय सोचते हुए दुर्वासा ने मेधावती से कहा कि - अब से तीसरा महीना पुरुषोत्तम मास है।

[1] इस पुरुषोत्तम मास (अधिकमास) में जो मनुष्य तीर्थ स्नान करता है, वह ब्रह्म-हत्या के पाप से भी मुक्त हो जाता है और निश्चित रूप से सभी महीनों में इसके समान उत्तम अन्य कोई मास नहीं है। सभी महीने, पक्ष, पर्व और ऋतुएं इस अधिक मास की सोलहवीं कला (एक छोटे अंश) के बराबर भी नहीं है । समस्त साधन और हजारों बार गंगा-गोदावरी आदि पवित्र नदियों में स्नान करना भी इस महीने की सोलहवीं कला की तुलना नहीं कर सकते। यह महीना श्रीकृष्ण को अत्यंत प्रिय है और इसीलिए इसका नाम पुरुषोत्तम मास है। इस मास का व्रत और पूजन करने से सभी मनोकामनाएं सिद्ध होती है । हे पुत्री! मैं स्वयं भी सदा पुरुषोत्तम भगवान की तरह इस

1. तत्र स्नाता जनस्तीर्थे मुच्यते ब्रह्महत्यया । एतत्तुल्यो न कोऽप्यन्यो मासोत्तमो हि विद्यते ॥ ७३ ॥ सर्वे मासास्तथा पक्षाः पर्वाणि ऋतवस्तथा । पुरुषोत्तममासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ७४ ॥ साधनानि समस्तानि गंगागोदाऽऽप्लवानि च । सहस्राण्यधिमासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ७५ ॥ श्रीकृष्णवल्लभो मासो नाम्ना च पुरुषोत्तमः । तस्मिन् संसेविते बाले ! सर्वे सिद्ध्यति वाञ्छितम् ॥ ७६ ॥

अनुक्रमणिका

मास का सेवन (व्रत) करता हूं; यदि तुम्हें अपने इष्ट की प्राप्ति करनी है, तो यह व्रत अवश्य करो। अब मैं बद्रिकाश्रम जा रहा हूं - ऐसा कहकर दुर्वासा ऋषि ने वहां से प्रस्थान किया।

उसके बाद पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) की प्रतीक्षा करती हुई मेधावती ने तत्काल फल देने वाले भगवान शिव को अपने हृदय में धारण कर कठिन तपस्या की। वह दिन में पंचाग्नि के बीच रहती थी और रात्रि में शीतल जल में स्थित रहती थी; वह बिना आहार ग्रहण किए समाधि की भांति शिव के ध्यान में लीन रहती थी। उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर भगवान पार्वतीपति ने उसे दर्शन दिए। जब उसने भक्तिभाव से वंदना, पूजा और स्तुति की, तब सदाशिव ने कहा कि मैं प्रसन्न हूं, तुम्हारा कल्याण हो; तुम वरदान मांगो, मैं तुम्हें दूंगा। यह सुनकर मेधावती ने कहा कि हे दया के सागर! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो - पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि पतिं पतिम्

[1] तब महादेव ने कहा कि तुमने मुझसे पांच बार पति मांगा है, इसलिए तुम्हें धार्मिक, यज्ञ करने वाले, सत्यवान और राजा के समान पांच पतियों की प्राप्ति होगी। वर्तमान में जो पांच भूतपूर्व इंद्र सत्यलोक में निवास करते है, वे ही तुम्हारे पति बनेंगे। मेरी कृपा से इस देह में ही दिव्यता प्राप्त कर मेरे साथ सत्यलोक चलो; ऐसा कहकर शंकर ने उसे साथ लेकर सत्यलोक की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मेधावती ने दुंदुभि की घोषणा सुनी कि - पुरुषोत्तमनारायण कह रहे है कि - अधिक मास (पुरुषोत्तम मास) के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (१३) का व्रत करो, क्योंकि केवल इस एक व्रत से ही पति की प्राप्ति अथवा मेरी (परमात्मा की) प्राप्ति होगी। यह सुनकर मेधावती ने शंकर से पूछा कि मुझे कृष्णनारायण कैसे मिल सकते है ? तब शंकर ने कहा कि कृष्ण प्राप्ति की तुम्हारी इच्छा जानकर मैं अत्यंत प्रसन्न हूं; राज्य, स्वर्ग, ब्रह्मा का पद या ईश्वर पद, यह सब श्रीकृष्ण पुरुषोत्तमनारायण के बिना स्वादहीन है । वे पुरुषोत्तमनारायण केवल भक्ति से ही प्राप्त होते है, इसलिए जैसा दुंदुभि ने कहा है, वैसे ही तुम पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (१३) का व्रत करो। उपवास या फलाहार करके षोडशोपचार (सोलह उपचारों) से परमात्मा का

अनुक्रमणिका

पूजन करना, नैवेद्य अर्पित करना और रात्रि में जागरण करना, जिससे संतुष्ट होकर परमेश्वर तुम्हारी सभी इच्छाएं पूरी करेंगे।

यह कहकर महादेव ने सत्यलोक में पांच पूर्व इंद्रों को पति के रूप में मेधावती को सौंपते हुए कहा कि - जब तुम मनुष्य देह धारण करोगी, तब पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (१३) के व्रत के प्रभाव से श्रीहरि तुम्हें प्राप्त होंगे। वहां अपने तपोबल से तुम अयोनिजा (बिना जन्म के प्रकट होने वाली) होगी और धर्म, वायु, इंद्र तथा अश्विनीकुमारों के अंश से उत्पन्न ये पांचों तुम्हारे पति बनेंगे। उस समय लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण रक्षक के रूप में तुम्हें मिलेंगे और पति सुख भोगने के पश्चात तुम परम सुख (मोक्ष) प्राप्त करोगी। पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वाले भक्त पुत्र, पौत्र और धन-धान्य से युक्त होकर इस लोक और परलोक की सिद्धियां प्राप्त करते आए है और भविष्य में भी करेंगे; हम सभी देवता भी पुरुषोत्तम मास के सेवक है। इतना कहकर सदाशिव अंतर्धान हो गए। तदनंतर, मेधावती ने शंकर जी के उपदेशानुसार अपने पतियों की आज्ञा लेकर पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी का व्रत, उपवास और जागरण सहित किया। उसने षोडशोपचार विधि से पुरुषोत्तम भगवान की पूजा की और प्रार्थना करते हुए कहा कि - हे तात! मुझे दर्शन दें और मेरी सहायता करें। तभी भगवान पुरुषोत्तम गरुड़ पर सवार होकर वहां पधारे और कहा कि हे पुत्री! मैं तुम्हारे इस त्रयोदशी के व्रत से अत्यंत संतुष्ट हूं, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा और सदैव तुम्हारे साथ रहूंगा। तब मेधावती ने पुनः कहा कि - अंत समय में मेरा मोक्ष हो, तब भगवान ने 'तथास्तु' कहा और विशेष रूप से बताया कि - हे पुत्री! सुनो, द्वापर युग के अंत में जब मैं स्वयं पृथ्वी का भार हरण करने के लिए श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लूंगा, तब तुम यज्ञसेन (द्रुपद) नामक राजा के यज्ञकुंड के मध्य से प्रकट होगी और याज्ञसेनी (द्रौपदी), विराटी तथा कृष्णा जैसे नामों से विख्यात होगी। उसी समय ये पांचों इंद्र देवताओं के अंश रूप में अत्यंत पराक्रमी होकर तुम्हारे पति बनेंगे। उनके माध्यम से असुरों और दैत्यों का नाश करवाकर जब मैं अपने धाम वापस जाऊंगा, तब तुम्हें भी तुम्हारा कार्य पूर्ण करवाकर

अपने साथ ले जाऊंगा, जिससे तुम पुनः उसी गोलोक धाम को प्राप्त करोगी जहां से तुम प्रकट हुई थी। हे पुत्री सुदुघा! तब मैं तुम्हें ब्राह्मी तनु (दिव्य देह) से सर्वोच्च अक्षरधाम और अपने चरणों के सुख को प्रदान करूंगा; इस प्रकार मैंने तुम्हारे भविष्य की कथा कह दी है, अब तुम सत्यलोक में सुखपूर्वक निवास करो, मैं अपने धाम की ओर प्रस्थान करता हूं। इतना कहकर पुरुषोत्तमनारायण अदृश्य हो गए। वही श्रीकृष्ण की पुत्री आगे चलकर याज्ञसेनी (द्रौपदी) बनेगी और पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (१३) के व्रत तथा पुरुषोत्तमनारायण के वचनों के प्रभाव से परमधाम को प्राप्त करेंगी। हे लक्ष्मी! यह मैंने तुम्हें श्रीपुत्री का वृत्तांत सुनाया है; वे सभी मनुष्य धन्य, पूजनीय और पवित्र है जिन्होंने विभिन्न नियमों के साथ पुरुषोत्तम मास का व्रत किया है, इस कथा के श्रवण या पठन मात्र से भी इस व्रत का फल प्राप्त होता है और भगवान श्रीकृष्ण की सहायता के साथ-साथ भुक्ति (सांसारिक सुख) और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक अठ्ठाईसवां (३२०) अध्याय समाप्त ।

अध्याय-२९

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्री नारायण ने कहा – हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का व्रत करने से राजा चित्रधर्म के पुत्र दृढ़धन्वा को राज्य, पुत्र, पौत्र, पतिव्रता स्त्री और अंत में योगियों के लिए भी दुर्लभ भगवान के परमधाम की प्राप्ति हुई, वह कथा मैं तुम्हें सुनाता हूं। अपने पुत्र को सभी सद्गुणों से संपन्न, वेदों के रहस्यों का ज्ञाता और प्रजा का रक्षक जानकर राजा चित्रधर्म ने दृढ़धन्वा का राज्याभिषेक कर दिया और फिर वे विचार करने लगे कि – अब मुझे भगवान श्रीकृष्णनारायण की आराधना करनी चाहिए, जिसके लिए वन की भूमि ही सर्वथा उचित है। ध्रुव और अंबरीष जैसे अनेक राजाओं ने कल्प-कल्पांतरों में सुख-सुविधाओं से समृद्ध अपने राज्यों का त्याग किया और वन में जाकर इस नश्वर शरीर से तपस्या करते हुए अविनाशी पुरुषोत्तमनारायण को प्राप्त किया, इसलिए मुझे भी स्त्री, पुत्र और गृह आदि के मोह और वासना के बंधन को छोड़कर श्रीहरि की भक्ति के लिए वन की ओर प्रस्थान करना चाहिए। मन में ऐसा निश्चय करके राजा चित्रधर्म वन में चले गए और पुलहाश्रम पहुंचकर निरंतर श्रीहरि का स्मरण करते हुए कठिन तप करने लगे, जिससे वे पूर्णत: शुद्ध हो गए और देह त्याग के पश्चात दिव्य शरीर धारण कर श्रीहरि के परम धाम को प्राप्त हुए।

दृढ़धन्वा ने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात उनकी अंत्येष्टि और सभी और्ध्वदैहिक कार्य संपन्न किए, उसके बाद उन्होंने पुष्करावर्त नगर को अपनी राजधानी बनाया और अपनी पत्नी वैदर्भी तथा चित्रवाक, चित्रवाट, चित्रकुंडल और मणिकुंडल नामक अपने चार पुत्रों के साथ संपूर्ण पृथ्वी पर शासन करने लगे। एक रात सोते समय राजा दृढ़धन्वा के मन में विचार आया कि – मैंने जीवन में कभी दान, तप, जप या होम आदि कोई सत्कर्म नहीं किया है, फिर भी किस पुण्य कर्म के फल स्वरूप मुझे यह अत्यंत वैभवशाली राज्य प्राप्त हुआ होगा? अगले दिन ब्राह्ममुहूर्त में

उठकर राजा मृगया (शिकार) करने के लिए घोड़े पर सवार होकर जंगल में एक सरोवर के किनारे पहुंचे, वहां उन्होंने देखा कि मनुष्य की वाणी में बोलने वाला एक तोता बार-बार एक ही श्लोक दोहरा रहा था, जिसका अर्थ था -

[1] सुख देने वाले देह और वैभवशाली राज्य के होने पर भी यदि लक्ष्मीपति नारायण का चिंतन नहीं किया, तो इस संसार का पार कैसे पाओगे? भवसागर से तारने वाले तोते के ऐसे वचनों को सुनकर राजा अत्यंत आनंदित हुआ और मृगया (शिकार) के दौरान सुने हुए उन वाक्यों पर विचार करते हुए घर वापस आया, तभी उसके घर महर्षि वाल्मीकि पधारे। राजा ने उनकी पूजा-अर्चना की और पूछा कि हे मुनिवर! वह तोता कौन था? वह क्या कह रहा था? और क्यों कह रहा था?

राजा के वचन सुनकर वाल्मीकिजी ने क्षण भर ध्यान लगाया और कहा कि हे राजन! मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तांत जैसा है वैसा ही कहता हूं, उसे सुनो; ताम्रपर्णी नदी के किनारे द्रविड़ देश में तुम सुदेव नाम के ब्राह्मण थे और गौतमी तुम्हारी पत्नी थी, जिसने संतान न होने के कारण दुखी होकर अपने पति से कहा था कि - शुद्ध वंश में उत्पन्न होने वाली संतान ही इस लोक और परलोक में कल्याणकारी होती है और ऐसे पुत्र को पाए बिना जीवन निष्फल है, इसलिए सत्पुत्र की प्राप्ति के लिए हमें तप के द्वारा निरंतर परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए।

अपनी धर्मपत्नी की बात मानकर वह दंपति ताम्रपर्णी नदी के किनारे हर पांचवें दिन सूखे पत्ते और जल का आहार करते हुए चौदह हजार वर्षों तक तपस्या करते रहे, उनके परम तप से (स्वर्गादिक) लोक कांपने लगे तब गरुड़ पर सवार श्रीहरि प्रकट होकर कहने लगे कि- हे सुदेव और हे गौतमी! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अधिक तप मत करो। श्रीहरि के ऐसे वचन सुनकर दंपति ने उन्हें नमस्कार किया और कहा 'हे माधव! आपकी जय हो' और सुदेव ने कहा कि हे प्रभु! हमें पुत्र प्रदान करें, तब श्रीहरि ने कहा कि- मैंने तुम्हारे ललाट की सभी रेखाएं देखी है जिनमें सात जन्मों तक पुत्र सुख नहीं है, परंतु यह सुनकर गौतमी ने तर्क दिया कि - क्या भाग्य के सामने

1. सत्यपि वैभवे राज्ये देहादौ सुखदे तथा । न चिन्तयसि लक्ष्मीशं कथं पारं समेष्यसि ॥ १७ ॥

लक्ष्मीपति भी असमर्थ हो जाएंगे? और यदि भाग्य का ही सहारा लेना हो तो आपसे क्या प्रयोजन? उनकी यह व्यथा सुनकर गरुड़जी ने भी श्रीकृष्ण से कहा कि हे भक्त वत्सल! आप अपने इस नाम को सार्थक करें क्योंकि आपकी आराधना कभी विफल नहीं जाती, नहीं ही जाती और आप कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथाकर्तुम् (कुछ भी करने, न करने या बदलने) रूप अपनी शक्ति को व्यर्थ न होने दें। गरुड़ का आग्रह देखकर श्रीहरि ने 'तथास्तु' तो कह दिया लेकिन यह भी बताया कि - इस पुत्र से दंपति को निश्चित ही दुःख होगा और ऐसा कहकर वे पुनः गोलोक चले गए। समय बीतने पर सुदेव की पत्नी ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया, जो धीरे-धीरे बड़ा होने लगा, उसका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और उसे वेदों की शिक्षा दी जाने लगी, तभी एक दिन वहां पापों का नाश करने वाले देवल ऋषि पधारे जिन्होंने बालक के हाथ में छत्र, पद्म, यव और चामर जैसे शुभ चिह्न तो देखे लेकिन आयु की रेखा टूटी हुई पाकर सिर हिलाते हुए कहा कि - हे सुदेव! तुम्हारा यह पुत्र बारहवें वर्ष में, जल में डूबने से मृत्यु को प्राप्त होगा, इसलिए तुम इसका शोक मत करना।

यह सुनकर वे दंपति बहुत दुखी हुए और देवल ऋषि वहां से चले गए। बारहवां वर्ष शुरू होते ही अनिष्ट समय आने पर सुदेव का पुत्र बावड़ी के पास गया और उसके गहरे पानी में डूबने से उसकी मृत्यु हो गई। मित्रों के मुख से पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर दंपति वहां पहुंचे और पुत्र के शव को लेकर विलाप करने लगे। पुत्रशोक के कारण उन्होंने अन्न-जल का भी त्याग कर दिया। वह समय अधिक मास का था, इसलिए अनजाने में ही दंपति से उपवास हो गया, जिससे अत्यंत प्रसन्न होकर श्रीहरि स्वयं वहां प्रकट हुए तब पत्नी सहित सुदेव ने उन्हें दंडवत प्रणाम किया। श्रीहरि ने कहा कि - हे सुदेव! अब तुम भाग्यवान हो, मैंने तुम्हारे इस पुत्र की आयु बारह हजार वर्ष कर दी है और पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के व्रत से प्रसन्न होकर मैं इसे दीर्घायु दे रहा हूं जो तुम्हें सुख प्रदान करेगा। तुम पुत्र के साथ गृहस्थाश्रम का सुख भोगकर ब्रह्मलोक जाओगे और वहां हजार वर्षों तक दिव्य सुख भोगने के बाद पृथ्वी पर दृढधन्वा नामक राजा बनोगे तथा दस हजार वर्षों तक राज्य करोगे और यह गौतमी

अनुक्रमणिका

तुम्हारी पत्नी बनेगी। तुम्हारे चार पुत्र और एक कन्या होगी, और जब तुम मुझ कृष्णनारायण को भूल जाओगे, तब तुम्हारा यही पुत्र तोता बनकर वन में तुम्हें भक्ति बोधक उपदेश देगा, जिसकी संपूर्ण कथा वाल्मीकि तुम्हें विस्तार से सुनाएंगे; तत्पश्चात परम वैराग्य धारण कर तुम अपनी पत्नी सहित मेरी पराभक्ति करके मोक्ष प्राप्त करोगे। जब श्रीहरि यह कह रहे थे, तभी सुदेव का पुत्र शुकदेव जीवित होकर खड़ा हो गया, जिसे देख दंपति अत्यंत आनंदित हुए और शुकदेव ने भी श्रीहरि एवं अपने माता-पिता के चरण स्पर्श किए। तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि - अधिक मास का अनजाने में पालन करने से भी पुत्र, पत्नी, राज्य आदि सुख प्राप्त होते है, इसमें कोई संदेह नहीं है, तो फिर मृत पुत्र जीवित क्यों नहीं हो सकता?

[1] जो पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में एक उपवास भी करता है, वह अपने अनंत पापों को जलाकर और अक्षय पुण्य निधि प्राप्त करके (मृत्यु के पश्चात) दिव्य देह धारण करता है और देवताओं के विमान में बैठकर वैकुंठ जाता है; स्वयं ब्रह्माजी ने जब एक ओर सभी पुण्यों को और दूसरी ओर पुरुषोत्तम मास को रखकर तोला था, तब पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) ही भारी सिद्ध हुआ था क्योंकि जीव सृष्टि, ईश्वर सृष्टि और ब्रह्म सृष्टि में भी सर्वत्र स्वयं पुरुषोत्तम मास ही महान माना गया है और इसका व्रत करने से ही आपकी विजय होगी। ऐसा कहकर श्रीहरि ने अपने धाम के प्रति प्रस्थान किया, जिसके बाद पत्नी सहित सुदेव ने भी अधिक मास का व्रत किया और एक हजार वर्ष तक सभी सुखों का उपभोग करने के बाद वह दंपति ब्रह्मलोक गए, जहां के सुख भोगने के बाद आप ही पृथ्वी पर वही दृढधन्वा राजा हुए और आपकी पत्नी गौतमी ही यह महारानी वैदर्भी हुई। आपका पुत्र शुकदेव, जिसे श्रीहरि ने जीवित किया था, वह बारह हजार वर्ष की आयु भोगकर वैकुंठ गया और वही तोता बनकर आपको श्रीहरि की स्मृति का बोध करा रहा था।

पुम नामक नरक से तारने वाले को पुत्र कहा जाता है, इसलिए आपका पुत्र

1. एकमप्युपवासं यः करोति पुरुषोत्तमे । दग्ध्वाऽनन्तान्यनिष्टानि लब्ध्वा पुण्यनिधीन् स तु ॥ ५५ ॥ सुरयानं समारुह्य वैकुण्ठं याति देहवान् । एकतः सर्वपुण्यानि त्वेकतः पुरुषोत्तमम् ॥ ५६ ॥ तोलयामास वेधोऽभूद् गुरुर्वै पुरुषोत्तमः । ईशसृष्टौ जीवसृष्टौ ब्रह्मसृष्टावपि स्वयम् ॥ ५७ ॥ पुरुषोत्तममासस्तु सर्वत्र वर्तते महान् । तस्य वै पालनेनाऽत्र विजयस्ते भविष्यति ॥ ५८ ॥

सार्थक नाम वाला हुआ। हे राजन! यह आपका पूर्व वृत्तांत मैंने आपको जैसा था वैसा ही कहा। फिर राजा दृढधन्वा ने मुनि से व्रत की पूजा विधि पूछी, तब मुनि ने राजा को विस्तारपूर्वक वह विधि बताई कि – ब्राह्म मुहूर्त में उठकर परब्रह्म का चिंतन करना चाहिए। तत्पश्चात शौच क्रिया के लिए नैऋत्य दिशा में जाना चाहिए। कान पर यज्ञोपवीत धारण कर मलमूत्र का त्याग करना चाहिए, उसके बाद जल से दोनों इंद्रियों का प्रक्षालन कर मिट्टी और जल से हाथ-पैर की शुद्धि करनी चाहिए और अनेक बार कुल्ला करके दंतशुद्धि करने के पश्चात तीर्थ जल में स्नान करना चाहिए। जो प्रतिदिन स्नान करता है उसकी आयु, बल, यश, वर्चस्व, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान, प्रज्ञा और मेधा की वृद्धि होती है। इसके बाद शुद्ध वस्त्र धारण कर, पूर्व दिशा की ओर मुख करके आसन पर बैठना चाहिए और शिखा बंधन कर पवित्र हाथों से आचमन करना चाहिए। फिर चंदन से चंद्रक के साथ ऊर्ध्वपुंड्र तिलक करना चाहिए तथा बाहुओं में शंख-चक्र आदि के चिन्ह और तुलसी की कंठी धारण करनी चाहिए। इसके बाद प्राणायाम, संध्या वंदन और गायत्री जप करना चाहिए। फिर गाय के गोबर से लेपकर पवित्र किए गए स्थान पर चावल आदि से सर्वतोभद्र मंडल बनाकर उसके मध्य में जल से पूर्ण कलश की स्थापना करनी चाहिए। कलश के मुख में विष्णु और कंठ में रुद्र सदैव स्थित है, इसके मूल में ब्रह्मा, मध्य भाग में मातृगण, कुक्षि में भू-द्वीप सहित सात सागर और अंगों सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद स्थित है। इस कलश के जल में पापों का नाश करने वाली गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी और गोदावरी स्थित हों। मैं चंदन, अक्षत और पुष्प समर्पित करता हूं; 'ॐ नमः' ऐसा बोलकर कलश में चंदन, अक्षत और फूल चढ़ाने चाहिए। फिर 'नैवेद्यं फलताम्बूले समर्पयामि ॐ नमः' बोलकर कलश को नैवेद्य, फल तथा तांबूल (मीठा पान) अर्पित करना चाहिए। इस प्रकार कलश पूजन हो जाने के बाद शंख और घंटा की सुंदर कुमकुम, अक्षत और पुष्प आदि से पूजा करनी चाहिए। इसके बाद उस कलश पर तिल और शक्कर से भरा हुआ पात्र रखना चाहिए और उसमें सुवर्ण से

निर्मित, पुरुषोत्तम मास के देवता, पीतांबर धारण करने वाले राधा सहित श्रीहरि की स्थापना कर पूजन और प्रतिष्ठा करनी चाहिए। अनलोत्तारण कर प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए, जिसमें दाहिने हाथ से श्रीहरि के दोनों गालों का स्पर्श कर हृदय प्रदेश में अंगूठा रखकर वहां प्राणों को धारण करने की भावना करते हुए कहना चाहिए कि - इन नारायण में प्राण स्थित हों। "अस्यै देवत्वयुक्तायै स्वाहा नारायणाय" ऐसा बोलकर प्राण-प्रतिष्ठा करके उन श्रीहरि का ध्यान करें, बाद मे हृदय में स्थित उन श्रीहरि का, 'राधिका सहित श्रीपुरुषोत्तम का मैं आवाहन करता हूं' ऐसा कहकर आवाहन करें। उन धनुर्धारी श्रीकृष्ण को मैं आसन अर्पित करता हूं, ऐसा कहकर आसन अर्पित करें। उनके चरण पखारने के लिए जल अर्पित करता हूं, ऐसा कहकर पाद्य अर्पित करें। उन परमात्मा को फलों से युक्त अर्घ्य समर्पित करता हूं, ऐसा कहकर अर्घ्य अर्पित करें। हे राधिकापति! आपको जलपान के लिए तीर्थ का जल अर्पित करता हूं, ऐसा कहकर जल अर्पित करें । दूध, दही, घी, शहद और शक्कर रूपी पंचामृत से स्नान तथा जल से स्नान कराता हूं, ऐसा कहकर पंचामृत से तथा जल से स्नान अर्पित करें । हे केशव! आपको पीतांबर तथा उत्तरीय वस्त्र अर्पित करता हूं, ऐसा कहकर पीतांबर तथा उत्तरीय वस्त्र अर्पित करें । हे प्रभु! आपको जनेऊ , कौस्तुभ तथा अलंकार समर्पित करता हूं, ऐसा कहकर यज्ञोपवीत और अलंकार अर्पित करें। सुगंधित तेल (इत्र), चंदन, कुमकुम, अक्षत (चावल) और पुष्प समर्पित करता हूं, उन्हें स्वीकार करें, ऐसा कहकर क्रमशः इत्र, चंदन, कुमकुम, अक्षत (चावल) और पुष्प समर्पित करें। हे प्रभु! वनस्पतियों के दिव्य रसों से युक्त धूप मैं अर्पित करता हूं, ऐसा कहकर धूप अर्पित करें। हे प्रभु! घी का उज्ज्वल दीप आपको अर्पित करता हूं, ऐसा कहकर दीप अर्पित करें। हे माधव! उत्तम नैवेद्य, जलपान, फल, तांबूल तथा करोद्वर्तन आपको समर्पित करता हूं, ऐसा कहकर भोग लगाकर प्रेम पूर्वक भगवान को भोजन करवाकर जल अर्पित करें, फिर फल और मीठा पान दें, फिर हस्त प्रक्षालन के लिए चन्दन युक्त सुगन्धित जल अर्पित करें । हे केशव! स्वर्ण दक्षिणा, हार और अक्षत

समर्पित करता हूं, ऐसा कहकर दक्षिणा, हार और अक्षत अर्पित करें । हे देवेश! मैं आरती और प्रदक्षिणा करता हूं, पुष्पांजलि अर्पित करता हूं और नमस्कार करता हूं, ऐसा कहकर आरती करके प्रदक्षिणा करें फिर पुष्पांजलि देकर बार बार नमस्कार करें। उसके बाद, 'हे पुरुषोत्तम! आपके पूजन में यदि कोई कमी रह गई हो तो क्षमा करें' इस प्रकार क्षमा याचना करें। इसके अलावा, पुरुषोत्तमनारायण की प्रसन्नता और सभी कार्यों की फल सिद्धि के लिए घी का अखंड दीपक जलाना चाहिए और होम करना चाहिए। इस प्रकार, पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वाले को नित्य श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए। शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए, सत्पात्रों को भोजन कराना चाहिए, वृद्धों के चरणों में नमस्कार करना चाहिए और श्रीहरि के प्रसाद रूप हविष्यान्न का भोजन करना चाहिए। गेहूं, चावल, मूंग, जौ, तिल, शक्कर, कंगु (एक प्रकार का अनाज), खजूर, मोरियां, द्राक्ष, कंद, मूल, ककड़ी, सब्जियां, पत्ते (भाजी), खाने योग्य फूल, केला, दूध, दही, छाछ, अदरक, सोंठ, आम, कटहल, हरड़, पीपल, जीरा, आंवला, तथा इमली आदि से बने सभी भोज्य पदार्थ व्रत करने वाले का सात्विक भोजन है।

व्रत करने वाले को राजमा आदि रजोगुणी, मांस आदि तमोगुणी, द्विदल (दालों) आदि वायु करने वाले और दूसरों के अन्न आदि का त्याग करना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए भूमि पर शयन करना चाहिए, पत्तल में भोजन करना चाहिए, दिन में केवल एक बार ही भोजन करना चाहिए और निंदा मात्र (किसी की भी निंदा) का त्याग करना चाहिए। उपवास करके, केवल दूध पीकर, दही खाकर, घी का सेवन करके, जल पीकर, भाजी खाकर या फल खाकर भी अधिक मास का व्रत करना चाहिए।

एक लाख तुलसीदल से पूजन करने से अनंत पुण्य की प्राप्ति होती है और पुरुषोत्तम मास में ऐसा व्रत करने वाला चतुर्भुज रूप धारण कर वैकुण्ठ में शाश्वत निवास करता है।

पुरुषोत्तम मास में अखंड दीप का दान करना चाहिए। (अब इसका माहात्म्य कहते है) प्राचीन काल में सौभाग्य नगर में चित्रबाहु नाम का राजा था। उसकी चंद्रकला नाम की पत्नी थी। वे दोनों अत्यंत धार्मिक थे। एक बार अगस्त्य मुनि उनके भवन पधारे; उनकी पूजा कर विनयपूर्वक चित्रबाहु ने कहा कि आज मेरा घर, साम्राज्य और जन्म वास्तव में सफल हो गए हैं क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण के प्रिय आप मेरे घर पधारे हैं। हे वैष्णव! मैं आज आपको अपना सर्वस्व अर्पण करता हूं। यदि आपको थोड़ा भी अर्पण किया जाए तो उसका फल मेरु पर्वत के समान होता है। जिस दिन विष्णु या विष्णु भक्त को कुछ अर्पित नहीं किया जाता, वह दिन व्यर्थ है।

वैष्णव मन, वाणी और कर्म से सेवा करने योग्य हैं। वे धन्य हैं जिनके घर वैष्णव भक्त हैं। मनुष्य को वैष्णव देश में रहना चाहिए; जो राष्ट्र वैष्णव हीन है, वह अमंगलकारी है। भगवान श्री कृष्ण के भक्त का राज्य निरंतर वृद्धि प्राप्त करता है। हे मुनि! मुझे यह निष्कंटक राज्य, विपुल लक्ष्मी और पतिव्रता स्त्री किस पुण्य से प्राप्त हुए हैं?

यह सुनकर अगस्त्य मुनि ने कहा कि – मेरी आज्ञा से तुम ही निति पूर्वक यह राज्य संभालो, अब में तुम्हारा पूर्व जन्मका वृतांत कहता हूं। पूर्व जन्म में चमत्कारपुर में तुम मणिग्रीव नामक शूद्र थे। तुम महा नास्तिक और अत्यंत पापी थे, परंतु तुम्हारी यह पत्नी सद्भावना वाली और पतिभक्ता थी। राजा द्वारा देश निकाला दिए जाने पर तुम जंगल में चले गए और शिकार करके जीवन व्यतीत करने लगे। एक बार वन में तुमने प्यास से अत्यंत व्याकुल और मृत्यु के मुख में स्थित एक मुनि को देखा, तब तुमने तुरंत उन्हें जल और फल देकर आनंदित किया।

संतुष्ट होकर मुनि ने कहा, "हे मणिग्रीव! तुम सुखी हो। तुमने मुझे जीवनदान दिया है, मैं तुम्हें क्या दूं?" तब मणिग्रीव ने कहा कि – मेरी दरिद्रता का नाश हो, मुझे अतुलित वैभव प्राप्त हो और मेरे मनोरथ पूर्ण हों, ऐसी मेरी इच्छा है। तब मुनि ने कहा कि – आने वाले परम पवित्र पुरुषोत्तम मास में भगवान पुरुषोत्तम की प्रसन्नता के लिए

तुम्हें मंदिर में दीप दान करना चाहिए, इससे तुम्हारी तीव्र दरिद्रता का समूल नाश हो जाएगा।

उस मास में प्रतिदिन स्नान करके देव को नमस्कार करना और तिल के तेल का, घी का या इंगुदी (माल कांगनि) के तेल का दीपक प्रज्वलित करना; इससे तुम पृथ्वी पर महान राज्य प्राप्त करोगे। यज्ञ आदि कर्म, चांद्रायण आदि व्रत, वेद-पाठ, गया में किया गया श्राद्ध, तीर्थ यात्रा, सभी प्रकार के दान और समस्त धर्म कार्य भी पुरुषोत्तम मास में किए गए दीप दान की सोलहवीं कला (एक छोटे अंश) के समान भी नहीं हैं। अधिक मास का व्रत श्रेष्ठ तथा इच्छित मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। इस प्रकार तुमने उस वन में पुरुषोत्तम मास में श्री हरि को दीपदान किया था, उसी पुण्य से तुम्हें यह महान राज्य, विपुल लक्ष्मी और पतिव्रता पत्नी प्राप्त हुई है। ऐसा कहकर ऋषिराज अगस्त्य ने प्रयाग क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया और राजा ने भी पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) आने पर विधिपूर्वक दीप दान किया, जिससे वे मोक्ष गति को प्राप्त हुए।

यह कथा कहकर और पूजा स्वीकार कर वाल्मीकि ऋषि ने प्रस्थान किया। इसके बाद सभी महीनों में श्रेष्ठ पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को प्रातःकाल में राजा दृढधन्वा ने दुंदुभि (श्रीकृष्ण के पार्षद) द्वारा की गई श्रीकृष्ण की घोषणा सुनी कि - आज जागरण और दीप दान के साथ पुरुषोत्तम मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का व्रत करो और उस व्रत के पुण्य तथा मेरे वरदान से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करो। यह सुनकर राजा दृढधन्वा ने व्रत की संपूर्ण विधि का स्मरण कर परिवार सहित निराहार व्रत किया और साथ ही दीपदान तथा जागरण किया। उन्होंने महान उत्सव मनाया और अनेक प्रकार की गायों तथा भूमि का दान दिया। रात्रि के समय स्वयं पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण परिवार सहित राजा को गरुड़ पर बैठाकर ब्रह्मलोक ले जाने के लिए पधारे। हे महालक्ष्मी! अधिक मास की महिमा का क्या वर्णन करें? जिसके कर्ता, धर्ता, उद्धारकर्ता, पोषणकर्ता, संतुष्ट होने वाले, भोक्ता और इष्ट फल

प्रदान करने वाले स्वयं श्रीपुरुषोत्तम है। हे लक्ष्मी! जो इस कथा को सुनेगा या पढ़ेगा, वह भी अधिक मास के फल को प्राप्त कर अवश्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करेगा। सकाम भक्त पारमेष्ठ्य (ब्रह्मा का) पद, महेश आदि का पद अथवा स्वर्ग प्राप्त कर अंत में ब्रह्मलोक में ही जाएगा।

[1] जिसने पुरुषोत्तम मास का व्रत किया है, उसने मानो सभी व्रत पूर्ण कर लिए है। इस व्रत के प्रभाव से सब कुछ प्राप्त होता है और स्वयं श्री पुरुषोत्तमनारायण की प्राप्ति होती है। जिसने इस पुरुषोत्तम मास को व्रत किए बिना ही व्यर्थ जाने दिया, उसकी संपत्ति निष्फल है और उसका किया हुआ सारा पुण्य भी निष्फल है, इसमें कोई संदेह नहीं है। हे लक्ष्मी! देवता, दानव या मानव, जो कोई भी सुखी है, वह सब पुरुषोत्तम मास का ही फल है, अन्य कुछ नहीं।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक उन्नतीसवां (३२१) अध्याय समाप्त।

1. यैस्तु संपूजितो मासः सर्वं तैरभिपूजितम्। सर्वं प्राप्तं भवेत् तेन प्राप्तः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ १३८ ॥ येन नीतोऽधिमासोऽयं वन्ध्यस्तस्य तु सम्पदः। वन्ध्याः पुण्यं कृतं सर्वे वन्ध्यं स्यान्नात्र संशयः ॥ १३९ ॥ ये केचित् सुखिनः सन्ति सुरमानवदानवाः। पुरुषोत्तममासस्य फलं लक्ष्मि ! न चेतरत् ॥ १४० ॥

अध्याय-३०

यह अध्याय सुननेके लिए यहां क्लिक करे

श्रीनारायण ने कहा - हे लक्ष्मी! सुनिए, पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) के अंतिम दिन अक्षरधाम में पुरुषोत्तमनारायण के महल में सभी ने मिलकर उद्यापन किया। उसमें गोलोक से राधा-कृष्ण आदि सभी पधारे। अपने मुक्तों के साथ वासुदेव आदि व्यूह भी पधारे। महावैकुंठ लोक में स्थित हम नारायण आपकी (लक्ष्मी की) और वैकुंठ लोक के मुक्तों के साथ अक्षरधाम में गए थे। अव्याकृत ऐसे अमृतधाम से अपनी पत्नीयों के साथ भूमापुरुष तथा अन्य न्याय करने वाले सभी ईश्वर आनंदपूर्वक वहां आए थे। महाविष्णु तक की हिरण्यगर्भ सृष्टियां, और महाविराट आदि ईश्वर भी अक्षरधाम में पधारे। जलावरण में स्थित विष्णु के वैकुंठ से, सदाशिव के धाम से मुक्त गण तथा महामाया की प्रजा भी वहां आई।

इस प्रकार, उन ईश्वरों मुक्तों और अवतारों ने सर्वश्रेष्ठ अक्षरधाम में जाकर वहां पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) का उद्यापन किया। साथ ही सभी ऋषि, मुनि, मातृगण, पितर, देवता, दिव्य मनुष्य, तीर्थ, देवि, दिशा, तत्व, नदी, समुद्र, पर्वत, खाड़ि, द्वीप, खंड, ग्रह, तारे, नक्षत्रमंडल, वृक्ष-बेल, दिव्य भक्तवर्य दैत्य, दानव, राक्षस, औषधि, सर्प, नाग, पक्षी, जलचर, भूचर, खेचर, पातालवासी, बिलों में रहने वाले, दिव्य तथा अदिव्य ऐसे सभी व्रतकर्ता तथा व्रतियों के साथी पुरुषोत्तम मास का उद्यापन करने के लिए सत्यलोक में पितामह ब्रह्मा के पास आदरपूर्वक गए। इसके अतिरिक्त रुद्र, गंधर्व, किन्नर, सूत, देवता, मानव, भट्ट, चारण, भृत्य तथा अन्य सभी भी व्रत के पूर्ण फल के लिए उस उद्यापन के उत्सव में गए और उन सभी ने मिलकर सर्व इष्टसिद्धि देने वाले तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाले पुरुषोत्तम मास का उद्यापन, द्रव्यों का दान देकर किया। उन्होंने जो पुरुषोत्तम मास का उद्यापन किया, वह मैं आपको सुनाता हूं जैसा कि स्वयं श्रीहरि ने कहा है। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों की चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी, नवमी, अष्टमी या जिस तिथि को

अनुकूलता हो, उस तिथि को व्रत की संपूर्णता के लिए उद्यापन करना चाहिए। दुंदुभि भी स्थान-स्थान पर जाकर यह घोषणा करते है कि - पुरुषोत्तम मास का शुभ उद्यापन करो, जिससे पुरुषोत्तम मास का संपूर्ण फल प्राप्त होगा। इस घोषणा को सुनकर अन्य लोगों ने घर में भी उद्यापन किया। उन सभी ने रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पृथ्वी पर शयन किया और प्रातःकाल उठकर श्रीहरि का ध्यान किया। तत्पश्चात शौचादि सभी दैहिक क्रियाएं करके शरीर की शक्ति के अनुसार स्नानादिक किया। फिर अपने लोक और अपने शरीर के सामर्थ्य के अनुसार जप-होम-संध्या-स्वाध्याय-तर्पणादि करके, नित्य पूजा तथा वृद्ध पूजा करके, पूजनीयों का सत्कारादि कर, आचमन करके, विशाल स्थान को स्वच्छ (संस्कृत) कर वहां बहुस्तंभ वाला मंडप बनाया।

उस मण्डप को रत्नों और हीरों के हार, आम और अशोक के पत्तों के तोरण, केले के स्तंभ और पत्तों, कल्पलताओं, कल्पवृक्ष के फलों, रंगोली और सुनहरे कलशों आदि से सजाकर, विभिन्न प्रकार के दीपों से सुशोभित कर और सुगंधित द्रव्यों से महकाकर, उस मण्डप के मध्य में पंचधान्य या सप्तधान्य से सर्वतोभद्र मण्डल बनाया गया। इसके बाद पत्नी सहित विष्णु भक्तों को यथाशक्ति आमंत्रित कर, सर्वतोभद्र मण्डल की चारों दिशाओं में सुंदर वस्त्र, श्रीफल, सुपारी और नाग बेल के पत्तों से युक्त चार कलश स्थापित किए गए। उनमें शर्करा मिश्रित जल भरकर और अक्षत (चावल) अर्पित कर, ईशान कोण से क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की स्थापना की गई तथा मध्य में फल, वस्त्र, सुपारी, स्वर्ण मुद्रा, अक्षत और पंचरत्न आदि से युक्त जल भरे कलश के ऊपर, राधा-लक्ष्मी आदि से युक्त दिव्य रूपधारी श्री पुरुषोत्तम की सुवर्ण मूर्ति विराजमान की गई। इस प्रकार व्रत करने वाले सभी लोगों ने श्रीहरि की स्थापना की, तभी वहां पूजा कराने के लिए आचार्य और गुरु पधारे। उन्होंने यजमान की देह-शुद्धि करवाई, जिसके पश्चात पुरुषोत्तमनारायण का आवाहन कर उन्हें आसन प्रदान किया गया। चरण प्रक्षालन के लिए तीर्थ जल अर्पित किया गया और चारों दिशाओं में सुगंधित दीप प्रज्वलित किए गए। यजमान दंपति ने

फल आदि से युक्त अर्घ्य समर्पित किया और इष्टदेव को आचमन के लिए तीर्थ जल दिया। साथ ही दूध, दही, घी, शहद और शक्कर रूपी पंचामृत तथा निर्मल जल से अभिषेक किया गया। वस्त्र से मार्जन कर इष्टदेव को वस्त्रों और आभूषणों से विभूषित किया गया तथा कुमकुम, काजल एवं चंदन आदि के चूर्ण से सुशोभित किया गया। मणि, हीरा और मोती आदि के हार तथा यज्ञोपवीत धारण कराए गए और मुकुट, कुंडल, छत्र, चंवर, पलंग एवं दर्पण इत्यादि अर्पित किए गए। चंद्रक सहित ऊर्ध्वपुंड्र तिलक लगाकर उन्हें पुष्पों और तुलसी दल से सजाया गया। तत्पश्चात उस मण्डप में तांबे के यज्ञकुंड में 'चतुर्थ्यंत' नाम मंत्रों से एक सौ आठ आहुतियों द्वारा तिल, घी और उत्तम फलों के साथ होम किया गया। इसके बाद देवता, पितर और पुरुषोत्तमनारायण तृप्त हों, ऐसा कहकर तर्पण किया गया।

फिर अनेक ज्योतियों से महाआरती करके नमस्कार, दंडवत, स्तुति, प्रदक्षिणा, ध्यान और क्षमा-याचना आदि करके श्रीहरि को पुष्पांजलि अर्पित की गई। इसके पश्चात इष्टदेव को मिष्ठान्न का भोग लगाकर मधुर जल, फल और तांबूल (पान) अर्पित किए गए। करोद्वर्तन कर पुरुषोत्तम भगवान को विश्राम के लिए शयन कराया गया और उनकी चरण-सेवा की गई। इस प्रकार सभी के द्वारा पूजित होने पर भगवान पुरुषोत्तमनारायण साक्षात प्रकट हुए और सभी को अनंत फल प्रदान किए। तत्पश्चात यजमानों ने आचार्य को दक्षिणा में स्वर्ण मुद्राएं, स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित गायें, घी, वस्त्र, तिल से भरे पात्र, पुरुषोत्तमनारायण की पूजित प्रतिमा तथा संहिता शास्त्र दान में दिए। साथ ही, तीस-तीस मालपुओं से भरे हुए संपुटात्मक (एक अर्धगोल पात्र के ऊपर दूसरा अर्धगोल पात्र ढककर बनाये गये ब्रह्माण्ड के आकर वाले) कांसे के तीस पात्र दान में दिए गए।

[1] हे लक्ष्मी! पुरुषोत्तम मास (अधिक मास) में इसे ब्रह्मांड दान कहा गया है। इस दान को करने वाला व्यक्ति प्रत्येक मालपुए में जितने छिद्र होते है , उतने हजार वर्षों तक वैकुंठ में निवास करता है। उसके पश्चात वह गोलोक में वास करता है और फिर

1. एतद्ब्रह्माण्डदानं वै कल्पितं पुरुषोत्तमे । प्रत्यपूपं तु यावन्ति छिद्राणि सन्ति पद्मजे ॥ ५४॥ तावद्वर्षसहस्त्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् । ततो वसतिर्गोलोके ततो धाम्न्यक्षरे परे ॥ ५५ ॥

अनुक्रमणिका

सर्वोपरी अक्षरधाम में निवास प्राप्त करता है। अथवा (जो ऐसा करने में समर्थ न हों, उन्हें) मालपुए की कच्ची भोजन सामग्री (सीधा) ब्राह्मण को देनी चाहिए। इसके बाद यजमानों ने भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य – इन चार प्रकार के भोजनों, अमृत तुल्य मिष्ठान, व्यंजन, खीर, रस, दूध, शक्कर और इलायची मिश्रित जल आदि से ब्राह्मणों, संतों, साध्वियों और बालकों को भोजन कराया।

इसके पश्चात मुख शुद्धि के लिए जल और तांबूल अर्पित किए गए। साथ ही गुरुओं को, देवियों और देवताओं को दक्षिणा, उत्तम वस्त्र और आभूषण प्रदान किए गए। साथ ही, उस लोक में दान करने योग्य जो भी वस्तुएं और पदार्थ थे, उन्हें दान में दिया गया। तत्पश्चात व्रतियों ने अपने स्वजनों के साथ आदरपूर्वक व्रत का भंग न करने वाले योग्य फलाहार आदि का भोजन किया। साथ ही मध्याह्न के समय और सायंकाल में भी इसी प्रकार किया गया तथा रात्रि में जागरण करते हुए पुरुषोत्तमनारायण का पूजन किया, नैवेद्य अर्पित किया गया एवं नृत्य के साथ पुण्यमय कीर्तन और भजन किए गए। प्रातःकाल स्नान करके पुरुषोत्तमनारायण का पूजन, क्षमा-याचना और विसर्जन किया गया तथा वह मूर्ति रूप परमेश्वर आचार्य को दक्षिणा में प्रदान किए गए। इस प्रकार उद्यापन करके सभी अपने-अपने निवास स्थान को गए। इस प्रकार पुरुषोत्तमनारायण और पुरुषोत्तम मास की सेवा से उन सब ने अनंत फल प्राप्त किया। हे लक्ष्मी! इसलिए यथाशक्ति पुरुषोत्तम मास का व्रत करना चाहिए। इससे दुःख, दरिद्रता और दुर्भाग्य का नाश होता है। उद्यापन के बाद व्रतियों को, लिए गए नियमों के अनुसार दान देकर नियम का परित्याग करना चाहिए (उसमें जो विशेष है, वह अब कहते है)। मध्यभोजी अर्थात् केवल दोपहर के समय भोजन करने के नियम वाले तथा नक्तभोजी अर्थात् केवल संध्याकाल के बाद भोजन करने के नियम वाले व्रती, ब्राह्मणों को भोजन कराएं। बिना मांगे जो प्राप्त हो, केवल वही भोजन करने के नियम वाले व्रती, स्वर्ण दान करें। मास-उपवास करने वालों को दक्षिणा सहित दूध देने वाली गाय दान में देनी चाहिए। धात्री व्रत करने वालों को दूध, दही और शक्कर का दान देना चाहिए।

हे लक्ष्मी! फलाहार के नियम में फल दान करना चाहिए। तेल न खाने के नियम वाले व्रतियों को घी का दान करना चाहिए। घी न खाने के नियम वाले व्रती को दूध का दान करना चाहिए। जो-जो धान्य न खाने के नियम वाले व्रती हों, उन्हें उसी धान्य का दान करना चाहिए। आभूषण न धारण करने के नियम वाले व्रती को छप्पर-पलंग आदि दान में देने चाहिए। मात्र फल या शाक-पान खाने के नियम वाले व्रती को वही वस्तुएं ब्राह्मण को दान में देनी चाहिए। हे लक्ष्मी! मौन व्रत का नियम रखने वाले व्रती को देव को घंटी, शंख, नगाड़े आदि वाद्यों का दान करना चाहिए। नख-केश धारण करने के नियम वाले व्रती को दर्पण और कंघी का दान करना चाहिए। जूते न पहनने का नियम रखने वाले व्रती को जूतों का दान करना चाहिए। नमक न खाने के नियम वाले व्रती को रसों का दान करना चाहिए। दीप दान करने का नियम रखने वाले व्रती को दीपों का दान करना चाहिए। राजाओं को जो भी समृद्धियां प्रिय हों, वे सभी यथाशक्ति और यथाधन दान में देनी चाहिए।

पुरुषोत्तम मास के दौरान मात्र एक अन्न के आहार का नियम रखने वाला व्रती चतुर्भुज रूप होकर परमगति को प्राप्त करता है। एक समय भोजन करने वाले या उपवास करने वाले की सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती है।

[1] पूर्वाह्न अर्थात् दोपहर से पहले देवता भोजन करते है , मध्याह्न अर्थात् दोपहर में मुनि भोजन करते है तथा अपराह्न अर्थात् दोपहर के बाद पितृगण भोजन करते है और मनुष्य नक्त भोजी अर्थात् सायंकाल के बाद भोजन करने वाला होता है। जो मनुष्य केवल सायंकाल के बाद ही भोजन करता है, वह दिन-प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। पुरुषोत्तम मास की द्वादशी (१२) का व्रत करने वाला व्यक्ति गरुड़ पर सवार होकर श्रीहरि के परम पद को प्राप्त करता है।

[2] पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वाले ने जिस-जिस वस्तु के त्याग या ग्रहण का नियम रखा हो, उसी का दान करना चाहिए, जिससे व्रत पूर्ण होता है और वह दान ब्रह्मलोक प्रदान करने वाला बनता है। हे लक्ष्मी! इस अनित्य शरीर के द्वारा सदा मोक्ष

1. पूर्वाह्ने भुंजते देवा मध्याह्ने मुनयस्तथा । अपराह्ने पितृगणा नक्तभोजी नरो भवेत् ॥ ७६ ॥ दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं नक्तादनो लभेत् । द्वादशीव्रतकृद् याति गरुडेन हरेः पदम् ॥ ७७ ॥

2. यस्य यस्य नियमः स्यात्तत्तद्दाने नियोजयेत् । तेन पूर्णं व्रतं स्याच्च ब्रह्मलोकप्रदं भवेत् ॥ ७८ ॥

सिद्ध कर लेना चाहिए। तीनों लोकों में अधिक मास के समान दूसरा कोई व्रत नहीं है।

[1] इस लोक में हजारों वर्षों तक तप करने से भी जो फल प्राप्त नहीं होता, वह फल पुरुषोत्तम मास का सेवन करने से प्राप्त होता है। इसी पुरुषोत्तम मास में मात्र तीन रात्रि स्नान करने से एक वानर अक्षरधाम गया था।(अब मैं वह कथा कहता हूं)

केरल देश में एक अत्यंत धन का लोभी ब्राह्मण रहता था, लोभ के कारण वह मनुष्यों में 'कदर्य' नाम से विख्यात हुआ। उसने कभी अच्छे अन्न या वस्त्र का उपभोग नहीं किया था और न ही कभी स्वाहा-स्वधा रूपी सत्कर्म किए थे। वह अपना धन पृथ्वी में गाड़कर रखता था, परंतु उसने उस धन से कभी कोई धर्म-कार्य, उत्सव या व्रत नहीं किया। वह अत्यंत दीन मनुष्य की तरह बार-बार पैसों की भीख मांगता था। एक बार वह माली की वाटिका में गया और बार-बार रोकर अपना दुख कहने लगा, जिस पर दया करके माली ने उसे अपने पास रख लिया और वाटिका का रखवाला बना दिया। माली के गांव जाने के बाद वह कदर्य पके हुए फल खाता और उन्हें बेच देता था; इस प्रकार चोरी करते हुए कई वर्ष बीत गए। अंततः कदर्य की उस वन में मृत्यु हो गई और उसे अग्नि संस्कार भी प्राप्त नहीं हुआ। जब यमदूत उसे प्रताड़ित करते हुए यमपुरी के मार्ग पर ले जा रहे थे, तब वह कह रहा था कि आज मुझे अपने दुष्कर्मों का फल प्राप्त हुआ है। मनुष्य जन्म पाकर भी मैंने कोई पुण्य नहीं किया और चोरी आदि से एकत्रित किया हुआ धन भूमि में निरर्थक ही पड़ा रहा। न तो उस धन का उपयोग किया, न उसे भोगा, न उससे कोई पुण्य किया, न ही कुटुंब का पोषण किया और अपनी पत्नी को भी कष्ट में ही रखा। इस प्रकार विलाप करता हुआ कदर्य यमपुरी पहुंचा। चित्रगुप्त ने उसके विषय में यमराज से कहा कि - इसके फल चोरी और विश्वासघात रूपी दो पाप अत्यंत उग्र है । यह सुनकर यमराज ने दूतों से कहा कि इसे प्रेत बनाओ, जिसके पश्चात वह वानर बनकर बार-बार नरक की यातनाएं भोगेगा।

इस प्रकार यमदूतों के कहने पर निर्जल वन में उसे प्रेत बनाया गया, जिसके पश्चात वह कालिंजर नामक भयंकर पर्वत पर वानर बना। उस पर्वत पर पूर्व समय में

1. सहस्त्रजन्मतप्तेन तपसाऽपि न गम्यते । यत्फलं गम्यते लोके पुरुषोत्तमसेवया ॥ ८० ॥

इंद्र ने मृगतीर्थ नामक कुंड बनाया था और पूर्व जन्म के अल्प पुण्य के कारण वह उसी स्थान पर वानर के रूप में उत्पन्न हुआ। हे लक्ष्मी! उसने पूर्व जन्म में पुरुषोत्तम मास की प्रशंसा करने का जो पुण्य किया था, उसे सुनो। पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वाला चित्रकुंडल नामक एक वैश्य था, जो अत्यंत दानी था; अतः कदर्य उसके पास भिक्षा मांगने गया और धन के लोभ में उस वैश्य की प्रशंसा करते हुए कहा कि - जिस प्रकार तुमने विधिपूर्वक पुरुषोत्तम मास का व्रत किया है, वैसा इस पृथ्वी पर किसी ने नहीं किया है। तुम कृतार्थ हो क्योंकि तुमने पुरुषोत्तम मास का सेवन किया है और यह पुरुषोत्तम मास धन्यता तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है, इसलिए मुझे कुछ धन दो, इस प्रकार उसने अधिक मास की जो प्रशंसा की थी, उसी पुण्य से वह इस मृगतीर्थ में वानर हुआ। जन्म लेते ही उसके शरीर में घाव की पीड़ा थी, बार बार गिरने के कारण उसके दांत गिर गए थे और वह भूख तथा ज्वर से पीड़ित होकर कुंड में गिर पड़ा। पुरुषोत्तम मास की दशमी से अमावस्या तक के पांच दिनों तक वह उस कुंड के जल में रहा, जिसके प्रभाव से उसने दिव्य शरीर धारण किया और वह चतुर्भुज रूप में दिव्य देवियों एवं पार्षदों द्वारा सेवित हुआ। पांच दिन तक स्नान करने और उस तीर्थ में मृत्यु प्राप्त करने से उसे यह स्थिति प्राप्त हुई; यदि अज्ञानता में भी अधिक मास का व्रत करने से ऐसी गति प्राप्त होती है, तो विधिपूर्वक व्रत करने के फल के विषय में तो कहना ही क्या?

[1] वे सदा सौभाग्यशाली और पुण्यवान है और उनका जीवन सफल है, जिनका पुरुषोत्तम मास स्नान, दान, जप इत्यादि के माध्यम से व्यतीत हुआ है। पुरुषोत्तम मास में किए गए दान, जप आदि सत्कर्म कोटि गुना फल प्रदान करने वाले होते है । श्रेष्ठ विमान में बैठकर वानर गोलोक धाम में गया; इस प्रकार चोर और वानर होने के बावजूद वह पुरुषोत्तम मास के योग से गोलोक को प्राप्त हुआ।

[2] पुरुषोत्तम मास की कथा का श्रवण करने से भी मासोपवास तथा श्रीहरि के

1. ते सदा सुभगाः पुण्यास्तेषां च सफलो भवः । येषां पुमुत्तमो मासः स्नानदानजपैर्गतः ॥ १०४ ॥ तानि कोटिगुणान्येव कृतानि पुरुषोत्तमे ।
2. पुरुषोत्तममासस्य कथायाः श्रवणादपि । मासोपोषणपूजादिफलं पूर्णमवाप्यते ॥ १०७ ॥

पूजन इत्यादि का संपूर्ण फल प्राप्त होता है। यह कथा सुनने से धर्म का ज्ञान होता है, पापों का नाश होता है, मोह की निवृत्ति होती है और ज्ञानरूपी अमृत की प्राप्ति होती है।

[1] अधिक मास का व्रत करने वाला व्यक्ति 'लक्ष्मीनारायण संहिता' नामक वेद का पठन या श्रवण करें, क्योंकि यह संहिता पुरुषोत्तम मास में निश्चित रूप से मोक्ष प्रदान करने वाली है। जिस स्त्री ने स्वयं पुरुषोत्तम मास का व्रत नहीं किया है, किंतु उसके पति ने यह व्रत किया हो, तो उसे भी इसका श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। जो नारी सदा पतिव्रत धर्म परायण रहती है, उसके लिए श्रीपुरुषोत्तम मास स्वयं पति स्वरूप है। सती स्त्री के लिए उसका पति चाहे कुरूप, दुराचारी, स्वभाव से बुरा, व्यसनी, रोगी, क्रोधी, जड़, मूक, अंधा, बहरा, भयानक, दीन, अत्यंत लोभी, दरिद्र, डरपोक, विषयी या लंपट ही क्यों न हो, वह सदैव देवता के समान पूजनीय है। साध्वी स्त्रियों, कन्याओं और विधवाओं के पति सदा श्रीहरि ही है, इसलिए उनके लिए श्रीहरि ही सेवा, पूजा, ध्यान और आश्रय के योग्य है। सती स्त्री को मन, वाणी, कर्म, देह या भावना से भी पति के प्रतिकूल कार्य नहीं करना चाहिए। ईश्वर रूपी पति को कभी उद्वेग (कष्ट) न दें तथा बालिका, युवती या वृद्धा, प्रत्येक अवस्था में पत्नी को पति के अधीन और उसकी प्रिया बनकर रहना चाहिए। काम, लोभ, बल, दीनता, रूप, संपत्ति, धन, तृष्णा, इंद्रिय सुख, अच्छे वस्त्र, वाहन, आभूषण, करोड़ों हीरे-रत्न, नृत्य या विभिन्न सुख-साधनों के मोह में आकर भी श्रेष्ठ लक्षणों वाली सती स्त्री अपने पति को त्यागकर अन्य पुरुष को नहीं भजती। जो दूसरों को दिखाने के लिए श्रृंगार नहीं करती और अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष का चिंतन नहीं करती, वही सती है। तरुण, अत्यंत रूपवान और स्त्रीयों के प्रिय पुरुष को देखकर भी जो विकार को प्राप्त नहीं होती, उसे महासती जानना चाहिए। जो पति के भोजन करने के बाद भोजन करें, पति के दुःख से दुखी और सुख से सुखी हो, पति के सोने के बाद सोए और उनके जागने से पहले जागे, वृद्धों की सेवा करने वाली, पति के कार्यों में अनुकूल रहने वाली, अधिक खर्च न करने वाली, घर आए पति को उठकर आसन और जल देने वाली, प्रसन्न मुख वाली

1. लक्ष्मिनारायणसंहिताख्यं वेदं पठेद् व्रती । श्रृणुयाच्छ्रीपुरुषोत्तममासे मोक्षदा हि सा ॥ १०९ ॥

और समय पर भोजन कराने वाली हो, वही सती स्त्री है; वह भोजन करते समय पति को अप्रिय वचन न कहे और उन्हें शांति प्रदान करें। वह सर्वदा सेवा के लिए तत्पर, प्रेमिका और घर की रक्षिका बनकर रहे तथा पति की प्रसन्नता के लिए श्रृंगार एवं आभूषण धारण करें।

त्रेतायुग के प्रारंभ से ही स्त्रियों को रजस्वला (मासिक) धर्म प्राप्त हुआ है जो एक अपवित्र अवस्था है, अतः इस अवस्था में चार दिनों तक गृहकार्य का स्पर्श न करें और पांचवें दिन स्नान करके पति, कृष्ण तथा सूर्य के दर्शन कर पुनः कार्यों में प्रवृत्त हो। यदि पुत्र की कामना हो तो रजस्वला होने के बाद सम संख्या वाली रात्रियों में और पुत्री की इच्छा हो तो विषम संख्या वाली रात्रियों में पति का सेवन करें। रजस्वला होने के बाद केवल १६ रात्रियों तक ही गर्भ धारण करने की शक्ति रहती है, उसके पश्चात गर्भ-कमल का द्वार बंद हो जाता है। सती स्त्री कभी वीभत्स या कठोर वाणी न बोले। वह कष्टदायक या वायु (गैस) उत्पन्न करने वाला आहार न ले और आंगन में न बैठे। साथ ही, घर के मुख्य द्वार, चूल्हे या चक्की पर न बैठे। भारी, अत्यंत गर्म या अपच करने वाले भोजन का त्याग करें, जिससे वह उत्तम संतान वाली होती है, अन्यथा गर्भ का नाश हो जाता है।

सौतन ईर्ष्या का स्थान है, परंतु सती स्त्री ईर्ष्या का त्याग करें। वह घर में सर्वथा क्लेश न होने दे और घर की रक्षा करें। पति पर क्रोध न करें, पति का तिरस्कार या अपमान न करें और सदा रति क्रिया द्वारा पति को सुख प्रदान करें तथा पति की आज्ञा से ही देव-दर्शन आदि के लिए घर से बाहर जाए। जब पति देशांतर (परदेश) में हो, तब सती स्त्री शरीर और वस्त्रों से मलिन न रहे बल्कि शुद्ध रहे। अपने पति के भोजन करने के पश्चात शेष रहे प्रसाद रूपी अन्न तथा जल को भाव से ग्रहण करें, निर्वस्त्र होकर स्नान न करें और कभी नग्न न हो। ओखली, मूसल, पनिहारा (पानी रखने का स्थान) या अन्य किसी यंत्र आदि पर सती स्त्री कभी न बैठे। सती स्त्री तीर्थ का फल प्रदान करने वाले अपने पति के चरणामृत का प्रेमपूर्वक पान करें और पति की आज्ञा का उल्लंघन कर कभी व्रत, उपवास या नियम धारण न करें। सती को सदा पति के

अनुक्रमणिका

चरणों की पूजा करके ही भोजन करना चाहिए। पति पर आक्षेप करने वाली स्त्री कुतिया, पति को दिए बिना स्वयं अकेले खाने वाली उल्लू, पति को छोड़कर अन्य के पास जाने वाली सूअरी, चोरी-छिपे खाने वाली चमगादड़, पति का अपमान करने वाली गूंगी, सौतन से ईर्ष्या करने वाली सौभाग्य हीन तथा पति को कष्ट देने वाली नारी कुरूपा और रोगी होती है।

[1] पति ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गुरु, तीर्थ, व्रत, जप, शुद्धि, स्वर्ग और शुभ दान है, इसलिए पति की भली-भांति सेवा करनी चाहिए। जैसे जीव के बिना देह अपवित्र हो जाती है, वैसे ही पति के बिना सती अपवित्र होती है; पतिव्रता सती अपने पति को स्वर्ग ले जाती है और ऐसी स्त्री को देखकर यमदूत दूर से ही पलायन कर जाते है । अपने शरीर में जितने रोम (रुएं) होते है , उतने करोड़ वर्षों तक पतिव्रता स्त्री अपने पति के साथ स्वर्ग का सुख भोगती है। विधवाएं अपने पति का स्मरण करते हुए नित्य कुश और तिल मिश्रित जल से, पके हुए फलों से अथवा गो ग्रास (गाय को चारा देने) से तर्पण करें और अन्य दान कार्यों के द्वारा पुण्य अर्जित करें।

पुरुषोत्तम मास के अंत में सती स्त्री कांसे के दो पात्रों को लेकर संपुट आकारवाला ब्रह्मांड बनाए, अर्थात एक कांसे के पात्र में तीस मालपुए रखकर दूसरा कांसे का पात्र उस पर ढंक दे, फिर उसे कलावा (नाड़ाछड़ी) से लपेटकर चावल, फूल, कुमकुम इत्यादि से पूजन कर उसका दान करें।

इसी प्रकार पुरुष भी पत्नी-परायण और पत्नीव्रती बने; वह अपने देह, प्राण, क्षेत्र और शांति के स्थान स्वरूप अपनी शुभा पत्नी का सम्मान करें। उसे सदैव मधुर दृष्टि से देखे, स्वादिष्ट भोजन दे, प्रेम भाव से बात करें और उस पर आक्षेप, तिरस्कार या प्रहार न करें। अपनी प्रिया को वस्त्र, आभूषण, अलंकार, चंदन, पुष्प, तेल, कंघी, काजल इत्यादि के द्वारा सदा संतुष्ट रखे। पति अपनी पत्नी को उद्वेग (कष्ट) न पहुंचाए, पत्नी के साथ जबरदस्ती करके भोजन न करें, उसे अनुचित रूप से न रोके और दुष्कर्मों या भूख-प्यास से पत्नी को दुखी न करें; पति मानहीन अपनी पत्नी की

1. भर्ता ब्रह्मा हरो विष्णुर्गुरुस्तीर्थं व्रतं जपः । शुद्धिः स्वर्गं शुभं दानं तस्मात्पतिं सुसेवयेत् ॥ १४१ ॥

अवहेलना न करें। वंश देने वाली, रति सुख देने वाली और बेल की भांति आश्रित रहने वाली पत्नी का सदा पोषण करें। जब पत्नी किसी वस्तु की इच्छा प्रकट करें, तब पति 'ना' न कहे और अपनी सहमति दर्शाते हुए उसे अपेक्षित धन आदि वस्तुएं प्रदान करें। भोजन, गृहकार्य, रतिक्रीड़ा, शारीरिक क्रिया, पति के कार्यों या अन्य कार्यों को करती हुई अपनी पत्नी को पति सदा आनंदित रखे। यदि पति स्वर्ग की इच्छा रखता हो, तो वह अपनी लक्ष्मी स्वरूपा स्त्री को छोड़कर किसी अन्य नारी को न देखे। अन्य स्त्री का प्रिय न बने, अन्य स्त्री को पुष्टि प्रदान न करें, अन्य स्त्री के साथ रमण न करें तथा वाहन आदि में या उत्सवादिक सामाजिक कार्यों में अन्य स्त्री-परायण न हो; इस प्रकार इस लोक में धर्मपरायण रहने वाले दंपति मोक्षभागी होते है।

इंद्रद्युम्न, शतद्युम्न, यौवनाश्व, भगीरथ तथा कल्पों के अंतराल में हुए अन्य वैष्णव राजा पुरुषोत्तम मास की आराधना करके भगवान के सामीप्य को प्राप्त हुए है। दुंदुभि की पुरुषोत्तम मास की घोषणा जिसने भी सुनी, उसने सर्वत्र उत्सव किए और स्वयं नारायण ने भी दुंदुभि की पूजा की। जब-जब भी अधिक मास आएगा, तब-तब वह दुंदुभि श्रीहरि की आज्ञा से उद्घोषणा करेंगें। उस दुंदुभि को श्रीपुरुषोत्तम कृष्णनारायण ने अक्षरधाम में सदा अपने पास रखा है। प्रत्येक अधिक मास में राधा, श्री, लक्ष्मी, पार्वती, प्रभा, माणिकी, जया तथा रमा सहित पुरुषोत्तमनारायण को ध्यान, पूजन, सेवा और नैवेद्य आदि अर्पित करना चाहिए। साथ ही पुरुषोत्तम मास के माहात्म्य का पूर्ण अध्याय या श्लोक सुनना चाहिए, जिससे गंगा आदि समस्त तीर्थों के सेवन का फल प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है। इस अधिक मास की कथा के श्रवण से पृथ्वी की परिक्रमा करने का पुण्य, ब्रह्मांड उद्धार का पुण्य तथा मुक्ति प्राप्त होती है। अधिक मास के सेवन से सभी वर्ण और आश्रम श्रेष्ठता को प्राप्त हुए है। इस पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य सुनकर पशु समान आचरण वाले मनुष्य भी मुक्ति प्राप्त करते है।

[1] इस पुरुषोत्तम मास के माहात्म्य की कथा को लिखवाकर और दृढ़ बंधन वाली

1. पुरुषोत्तममाहात्म्यं लेखयित्वा सबन्धनम्। दद्यादस्य फलं वंशत्रयं गोलोकगं भवेत्॥ १६८॥ महात्म्यपुस्तकाधारे गृहे तीर्थानि सर्वशः। वसन्ति देवताश्चापि वर्तते पुरुषोत्तमः॥ १६९॥ श्रोता वक्ता श्रावयिता वर्णयिता प्रशंसकः। रक्षको व्रतकृद् दाता सर्वे ते पुरुषोत्तमाः॥ १७०॥

पुस्तक बनवाकर दान करने के फल स्वरूप तीन पीढ़ियां गोलोक में निवास प्राप्त करती है। इस पुरुषोत्तम मास के माहात्म्य की पुस्तक के आधार पर घर में सभी तीर्थ, देवता तथा पुरुषोत्तमनारायण निवास करते है। इस माहात्म्य के श्रोता, वक्ता, कथा कराने वाले, वर्णन करने वाले, प्रशंसा करने वाले, रक्षा करने वाले, अधिक मास का व्रत करने वाले और व्रत के निमित्त दान करने वाले सभी पुरुषोत्तम रूप है।

[1] इस मास में लक्ष्मीनारायण संहिता के उपदेष्टा अनादिश्रीकृष्णनारायण का विशेष रूप से पूजन करना चाहिए।

यह सुनकर अत्यंत तृप्त हुई लक्ष्मीजी ने अपने पति श्रीकृष्णनारायण का पूजन किया और कहा कि – आपके मुख से निकले हुए अमृत वचनों के पान से मैं कृतार्थ हुई हूं; ऐसा कहकर उन्होंने पति स्वरूप व्यास की पूजा की और नमस्कार किया। तब नारायण ने कहा कि – मैं नारायण वक्ता हूं और तुम मेरी लक्ष्मी श्रोता हो, तुम्हारी की हुई पूजा मैं ग्रहण करता हूं।

इति श्रीलक्ष्मीनारायण संहिता के कृतयुग संतान में, पुरुषोत्तम मास माहात्म्य में, अमावस्या तिथि का व्रत विधि निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन नामक तीसवां (३२२) अध्याय समाप्त।

1. कृष्णनारायणोऽनादिश्रीहरिः पुरुषोत्तमः । संहितोपसमादेष्टा पूजनीयो विशेषतः ॥ १७१ ॥

अन्यमासकृतात्पुण्याज्जपाद्धोमात्प्रदानकात् ।
अनन्तगुणकं त्वत्र कृतं भवति सर्वथा ॥२४ ॥

ल.स.कृ.सं.अ.२९३

अन्य मासों में किए गए पुण्य, जप, होम और दान आदि की तुलना में इस अधिक मास में किए गए वे कर्म सर्वथा अनंत गुना पुण्य फल देने वाले होते हैं।

पुरुषोत्तममासस्य व्रतिनां भवनानि वै ।
सर्वस्मृद्धिप्रपूर्णानि कुरु लक्ष्मि ! ममाऽऽग्रहात् ॥ ११७॥

ल.स.कृ.सं.अ.२९३

हे लक्ष्मी ! आप मेरे आग्रह से पुरुषोत्तम मास का व्रत करने वालों के घरों को सभी समृद्धियों से परिपूर्ण करें।

सहज आरोग्यम एवं मानव अभ्युदय संस्थान

वडोदरा